मासूम चाँदनी :
क्षितिज के स्वर

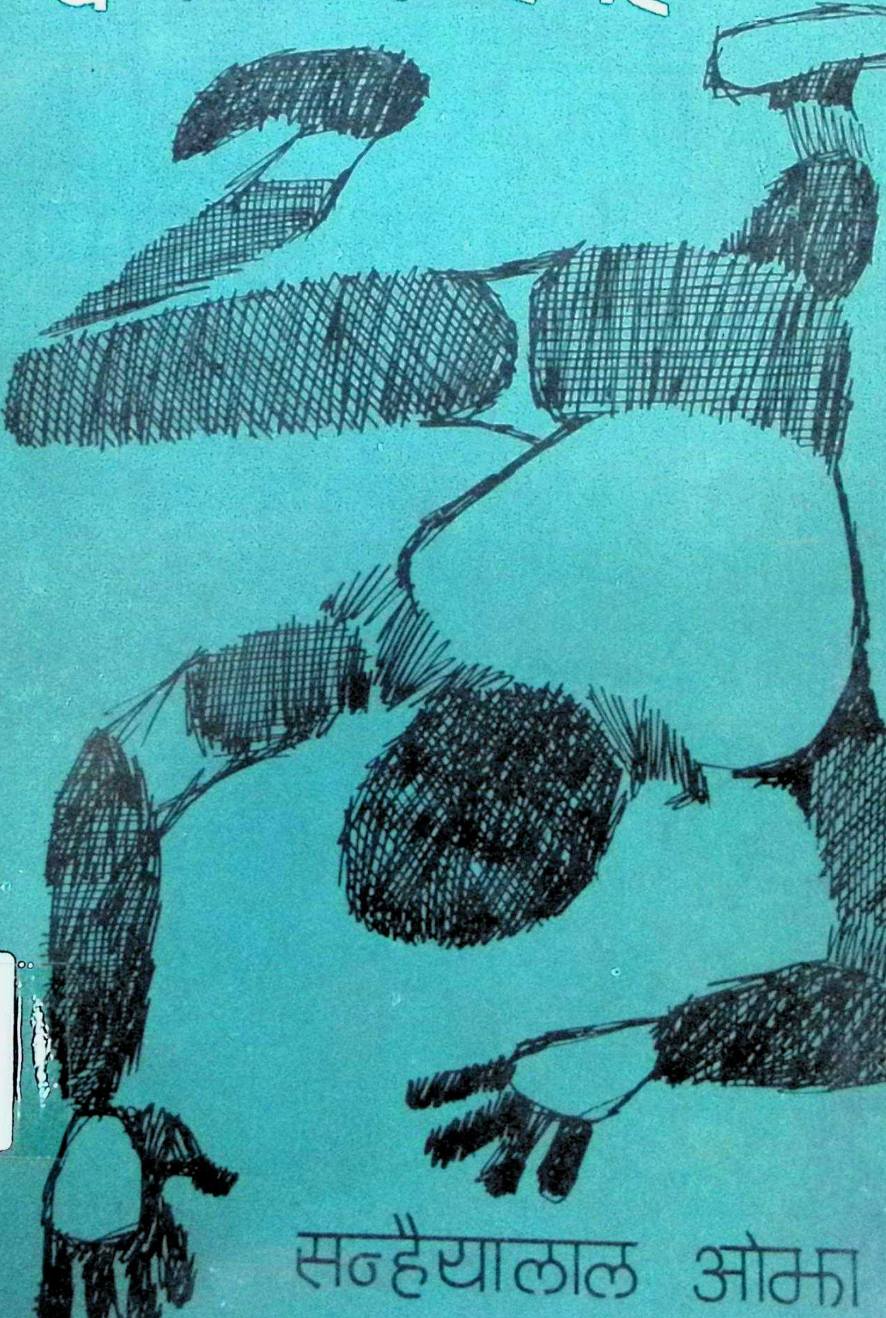

22
मा

कन्हैयालाल ओझा

मासूम चाँदनी : क्षितिज के स्वर

मासूम चाँदनी : क्षितिज के स्वर

सन्हैयालाल ओझा

हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी

लेखक की अन्य रचनाएँ

तुलसीदास	(खण्ड काव्य)
पाप की प्यास	(नाटक)
संघर्ष और समर्पण	(उपन्यास)
मनुष्य का मूल्य	,,
अर्थान्तर	,,
मकड़ी का जाला	,,
धर्म के नाम पर	,,
सिन्धु-सीमान्त	,,
सर्वनाम	,,
तृतीय पुरुष	,,
सम्भवामि (दो पर्व)	,,

डा. डिल्ली एसण रेश्मी
कल्याणी रेश्मी स्मारक
पुस्तकालय
9567
158432
ओ 2 आ

Price Rs. 25·00

© Sanhaiyalal Ojha

MASSOM CHANDNI :
KSHITIJ KE SWAR
(A Psychological Novel) 1983
Publisher
Vijay Prakash Beri of
HINDI PRACHARAK
SANSTHAN
Pishachmochan
Varanasi - 221001

प्रथम संस्करण
१९८३
मुद्रक :
शिवशंकर प्रसाद
दीपक प्रेस,
एस० १७/२७२, नदेसर, वाराणसी।

मूल्य : २५·०० मात्र

मासूम चाँदनी : क्षितिज के स्वर

अनुक्रम

लेखकीय

मासूम चाँदनी

चाँदनी की टीस
मंजिलों का निमंत्रण
क्षितिज के संकेत

क्षितिज

चुम्बकों के अयन
खिसकती मरीचिकाएँ
पुष्पकारोह
धूमकेतु के सेतु
उल्काओं के पत्तन

क्षितिज के स्वर

अति-परवलयक चक्र
ब्रह्माण्ड रश्मि
अस्तित्व या प्रत्यस्तित्व ?
कण-कण विकीरण
कृष्ण कोटरों के विवर्त
अनस्तित्व का अस्तित्व
प्रतिकर्षण-प्ररोध
धरती की गंध

लेखकीय.

इस समस्त सृष्टि की नियति है चलना, चलते रहना, चरैवेति। मनुष्य की नियति भी भिन्न नहीं हो सकती। साहित्य ने आरंभ से ही इस तथ्य को ग्रहण किया है और अपने चिंतन में उतारा है। महाकवि होमर ने अपने अमर काव्य ईलियड और ओडेसी द्वारा इन्हीं महायात्राओं की प्रतीति दी है। भारतीय साहित्यका जायसीकृत पदमावत भी इसी पथका यात्री है।—ये यात्राएँ स्थूल मानव के रूपक से उसी गहन-अज्ञात परमतत्व के खोज की यात्राएँ हैं। गहन-अज्ञात का पथ तब महासमुद्र का अछोर-अगत विस्तार था, जिसमें भटक कर नायकको अपने लक्ष्य तक पहुँचना होता था, स्थूल समुद्र में जिस तरह कोलंबस की यात्रा थी। सूक्ष्म मन की भी ऐसी यात्राएँ होती हैं इसकी प्रतीति इस युग में प्रसिद्ध आयरिश लेखक जेम्स जॉयस ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास यूलिसिस में दी है। यात्राओं के इस राजमार्ग पर जहाँ ये मूर्धन्य ग्रंथ चल रहे हैं, उसी राजमार्ग पर यह अकिंचन उपन्यास भी कदम रखना चाहता है।

गहन-अज्ञात की साहसिक यात्रा का पथ अब समुद्र की छाती पर नहीं रह गया। इस युग में है वह अन्तरिक्ष के असीम अंतर में। और यह यात्रा स्थूल मनुष्य, या सूक्ष्म मन की ही नहीं, अणेरणीयान निरायाम जीव की, आत्मा की भी है विकास के मार्ग पर, चिद्‌विकास की यात्रा। स्थूल मानव अभी तक चन्द्रमा तक ही पहुँच पाया है। कितना महतो महीयान असीम विस्तार पड़ा है उसके सामने ? सीमित मानव के लिए इस बाहरी असीम को पाना असंभव हो, पर उसके भीतर भी तो एक असीम अंतरिक्ष है ! यात्राओं के ये पड़ाव बाहर ही नहीं, भीतर भी हैं।—-यह कहानी एक ऐसी ही निरायाम मासूम चाँदनी की है—, जो असीम-अनन्त क्षितिज के स्वरों में भटकती हुई अपने अलक्ष्य-लक्ष्यपर पहुँचने का प्रयत्न कर रही है। महायात्रा के इन शिविरों का संकेत तीन विश्रामों के प्रत्येक परिच्छेद में निहित है, जो परिच्छेद के शीर्ष पर दिया गया है। कथा तो है ही, पाठक यदि इन शीर्षकों का संकेत ग्रहण करके पढ़े तो उसे इस महायात्राकी भी कुछ प्रतीति हो सकेगी। बस, यही निवेदन है।

—कन्हैयालाल ओझा

८/ए, नन्दन रोड, भवानीपुर,
कलकत्ता—७०००२५;

मासूम चाँदनी

चाँदनी की टीस

भय सत्यप्रकाश पर बाहर से ही छाता जा रहा था। उजले पाख की रात थी, पर चाँदनी गली में लुकछिप कर ही आ पायी थी और दुबकी-सहमी-सी इधर-उधर जगह खोज रही थी। सत्यप्रकाश जब गली में मुड़ा तो दरवाजे का अंधकार शरीर पर ही नहीं, उसके मन पर भी छा गया था। ठेलते ही जब दरवाजा खुल गया तो आश्चर्य के साथ उसे भय भी कम नहीं हुआ। भीतर मशीन के सामने कन्दील की धुँधली रोशनी में, बाहर से भाग आयी मानो चाँदनी ही तमसा बन कर बड़ी मासूमियत में डूबी उसी का मुँह जोह रही थी। बोली 'इतनी देर कहाँ लगा दी रे ? तीन बार तो सड़क तक जाकर देख आयी हूँ।'

भय इसी प्रश्न का तो था। और जवाब भी कुछ अच्छा-सा सोच चुका था, पर अकस्मात वह मन से गायब हो गया। उसके मुँह से केवल निकला, 'आज तो अच्छे पैसे मिल गए माँ।'

'राह में पड़े मिल गए क्या ?'

'राह में तो नहीं माँ। एक अठन्नी तो एक मेम ने ही दी, टिगट पाने की उसे इत्ती खुशी हुई–'

'फिर तू 'इत्ती' बोला—बोलना चाहिए 'इतनी'। कितनी बार समझाया तुझे !—और ये अखबार क्यों नहीं लौटाए—कितने, तीन हैं या चार—इनके आठ छह आने कहाँ से आएँगे ?'

माँ को अपनी ही ओर देखते देखकर झिझकते हुए सत्यप्रकाश बोला, 'सिनेमाघर में देर हो गई थी माँ, और आठ बजे अखबारवाला अपनी दुकान बन्द करके चल दिया !'

'सो ही तो पूछ रही हूँ ! इतनी देर हुई कहाँ ? खेल तो साढ़े छह बजे शुरू हो जाता है न !'

'देर से आई थी न मेम, तभी तो उसने इनाम में अठन्नी दी !' और माँ से दृष्टि चुराकर बगल के अखबार उसने कोने में रखी किताबों पर पटक दिए। माँ निर्वाक उसकी ओर देखती ही रही। सामने घुटनों के बल बैठकर सत्यप्रकाश नीकर की जेब से पैसे निकाल कर गिनने लगा। आँख उठाकर माँ की ओर देखने का जैसे उसमें साहस नहीं रह गया था।

'आठ बजे आयी थी वह मेम ?' माँ ने पूछा ।

'हाँ ! एक टिगट बच रहा था, मैंने सोचा, लौटाने के पहले कुछ राह ही देख लूं !'

'पर क्यों रे सप्पू, खेल साढ़े छह बजे शुरू हो तो कोई आठ बजे आकर क्या देखेगा !' माँ गुस्सा होती है तो बुलाती है 'सप्पू' कह कर, वरना उसका सहज सम्बोधन है 'सत्य' !

'पर तब अखबारवाले ने आज दुकान क्यूं जल्दी वन्द कर दी ?—कल पूछूंगा !—अच्छा माँ, खाना तो नहीं खाया न ?—जल्दी परस दे । बड़ी भूख लगी है !'

माँ ने जैसे सुना नहीं । पूछा, 'और यह क्या पान खा रखा है तूने ?'

'पान ?—कहाँ ?—नहीं तो !' और घबरा कर छिपाने के लिए उसने जीभ ओठों पर फिराई, मानो जीभ उनकी लाली पी जायेगी । पर तभी वह समझ गया कि सारा प्रयत्न व्यर्थ है । बिखरे हुए पैसों को समेटते हुए बोला, 'दीनू है न वह ?— पान की दुकान वहीं तो है उसके भाई की ? दीनू को नहीं जानती ? मेरी कक्षा में ही तो पढ़ता है । उसने जबर्दस्ती ही मुँह में ठूंस दिया !—ये पैसे अलग से रख दे माँ, सबेरे इन बचे-खुचे अखबारों के साथ दे आऊँगा !'

कतरन के एक कपड़े में पैसे लपेट कर तमसा ने गाँठ बाँधी और मशीन की दराज में रख दिया ।

खाने बैठा तो सत्यप्रकाश ने पूछा, 'और तू नहीं खाएगी ?'

'मुझे भूख नहीं है !'

'क्यूं ?'

'तू कमा कर बहुत लाया है न ! पेट यूं ही भर गया !' सत्यप्रकाश का निवाला हाथ का हाथ ही में रह गया तो तमसा ने पूछा, 'खाता क्यों नहीं ?'

'मुझसे नाराज है माँ ?'

'तो तेरा क्या ?—इतना कमा कर तो लाया है !'

'तो मैं भी नहीं खाता !' और उसने थाली एक ओर सरका दी ।

'एक तो तू झूठ बोलता है और ऊपर से फिर यह नखरेवाजी ?' माँ ने भी गुस्से में कहा ।

सत्यप्रकाश का मन भी क्षुब्ध हो उठा : झूठ बोला हो, पर पैसे भी तो कमा कर लाया है । अगर कुछ वैसा बोल ही गया तो कौन सा आसमान सिर पर फट पड़ा । आँखें तरेर कर देखा, अरे ! माँ की तो आँखें बह रही हैं । वह और अपने-

आपको जब्त नहीं कर सका। उठा और माँ के गले में हाथ गूँथ कर पीठ पर झूलते हुए तड़पड़ाए स्वर में बोला, 'माँ' !

'नहीं बोलती ! कमा कर लाया इसलिए समझता है कि झूठ का अधिकार पा गया है ?'

'नहीं माँ ! अब झूठ नहीं बोलूंगा······मेरी अच्छी माँ !–सच कहूँ ? वह जो सरकारी स्कूल है न, महाराजा हाई स्कूल, माँ, उसका एक टीचर था। वही जबर्दस्ती मुझे सिनेमा दिखाने खींच ले गया। पान भी उसी ने खिलाया था। उसके पास दो टिगट थे और उसका दूसरा साथी आया ही नहीं। सच माँ मैंने तो बहुत मना की–मैं क्या इत्ता भी नहीं समझता ? वही बोले कि बिना बिके अखबार भी वे ले लेंगे। पर घर आने की मुझे ही इत्ती-इतनी जल्दी थी कि याद ही नहीं रहा। गलती हुई माँ, पर इस बार बिलकुल सच बोला हूँ माँ !–माफ कर दिया न ?– बोलती क्यूं नहीं ?–क्या अब भी नाराज हो ?'

हाथ तब भी माँ के गले में गुंथे हुए थे। एक बार जो मिथ्या की बाधा हट गई तो सम्पूर्ण सत्य सपाटे के साथ उसके मुँह से निकल गया। पर माँ तब भी चुप क्यों है ? उसका उत्साह क्षीण होने लगा। क्या माँ माफ नहीं करेगी ? धीरे-धीरे उसका बाहुपाश आप ही ढीला होने लगा। सामने आकर उसने कहा, 'नहीं बोलोगी माँ ?'

'क्या बोलूं ?'

'अब तो मैं सब सच बोला हूँ माँ !' रुआँसा होकर सत्यप्रकाश ने कहा।

'पहले तू झूठ क्यों बोला ?'

'तू नाराज हो जाएगी इसलिए डर गया था माँ !'

'झूठ बोलने से क्या मैं नाराज नहीं होती ?'

'अब मैं झूठ नहीं बोलूंगा। पर—तू रो रही है माँ ?—अब तो मैंने झूठ नहीं बोला···' रुदन का कम्प उसकी वाणी में भी थिरक उठा, 'अब झूठ नहीं बोलूंगा माँ, जो गलती हो गई उसकी सजा सह लूंगा, पर तू नहीं बोलेगी तो···' और माँ की गोद में उसका सिर छिप गया तो माँ के मुँह से बोल नहीं निकले। सीने से लगाकर ही उसने अपनी छाती जुड़ाई।

भोजन से निपटकर नित्यनियमानुसार जब सत्यप्रकाश अपनी किताबें लेकर बैठने लगा तो माँ ने कहा, 'अब पढ़ेगा ? कितनी रात गई है ? चल, सो जा ! कल इतवार भी तो है ? कल पढ़ लेना !'

'तो देर तुझे भी तो हो रही है ! तू भी सो जा न !'

'मुझे देर कहाँ हुई पगले ? फिर मुझे छुट्टी कहाँ है कल ? रामचरण बाबू की यह कमीज कल दे देनी है। न हो सबेरे, पर दुपहर को तो जरूर उसकी घरवाली सिर पर आ चढ़ेगी। बस, अब आस्तीनें ही तो तुरपनी रह गई हैं। काच-बटन तो सवेरे भी कर लूंगी। तू सो जा मुन्ने !'

बन्द आँखों में रामचरण बाबू की घरवाली का प्रकरण दिप उठा। सुसरी अपने कपड़ों के लिए इतनी उतावली है, पर मजदूरी देते समय सौ बहाने करेगी, अभी हाथ खाली नहीं है····कोई भागे नहीं जाती हूँ !–जैसे भागे तो हम ही जा रहे हैं ! अगर ऐसे नखरे हैं तो क्यूं सिलवाती है कपड़े यहाँ ? बाजार में जिसका सवा रुपया लगता है, माँ सिर्फ बारह आने लेती है। एक गिरह कपड़ा भी बच जाए तो कतरन के साथ वापस कर देती है। दरजी परसों देने को कह कर महीनों टरका दे सो मंजूर···पर न सिएँ तो चलेगा कैसे ? नवमी में जाएगा अब, सौ एक की तो कितावें ही लग जाएँगी। जूते इसबार खरीदने ही पड़ेंगे। बरसात में छाता भी खरीदना पड़ेगा, स्कूल जाते समय उमके बिना कितावें नहीं भींग जाएँगी ?—ठंड के पहले दो-एक कमीज, दो हाफपैंट···और माँ का ओढ़ना भी तो तार-तार हो रहा है !–आँखें खोलकर देखा उसने, मशीन की घरघराहट में तल्लीन माँ···ओढ़ना नीचे खिसक आया है, पीठ पर फटे हुए ब्लाउज के छेद से गोरी-चिकनी पीठ हलके अँधेरे में भी दिप उठी है।···ओढ़ना ही नहीं ब्लाउज भी चाहिएगा। कमर के नीचे सिमटे ओढ़ने के छेद भीतर का काला अँधेरा उड़ेले जा रहे हैं, और सामने दीवार पर माँ की इस दरिद्रता की दीर्घ छाया माँ के प्रयत्नों का मजाक फैला रही है !···नहीं, माँ अगर सीना-पिरोना बन्द कर दे तो उनकी गाड़ी चलेगी कैसे ? खुद अभी कमा ही कितना-सा सकता है ? लेट रहा है वह, जबकि माँ काम कर रही है, जाने कब तक करती रहेगी ? क्या माँ का हाथ नहीं बँटा सकता वह ? लेटे-लेटे ही उसने कहा, 'अच्छा माँ, काच-बटन करना सिखा दे न मुझे ?'

एकाएक आवाज सुनकर तमसा चौंक उठी, हड़बड़ाकर हाथ फैलाए और खिसके हुए ओढ़ने को सिर पर खींचा कि चर्रर की आवाज हुई।···'तू सोया नहीं अब तक ?' के साथ ही उसके मुँह से फट पड़ा, 'यह तो और भी फट गई !'

सत्यप्रकाश बोला, 'जूतों के लिए बचाए रुपये रखे हैं न माँ, कल देना। बुधमलजी के यहाँ अखबार पहुँचाता हूँ। मुझसे लिहाज करके नफा नहीं लेगा !'

'मेरी चिन्ता में जाग रहा है रे ! सो क्यों नही जाता ?–सवेरे जल्दी नहीं उठना है ?'

'नींद नहीं आती माँ !' कहते-कहते बिस्तर से उठ आकर सत्यप्रकाश माँ की जाँघ पर सिर टिका कर वहीं लेट गया। उसके गाल पर प्यार की चपत लगा-

कर सहलाते हुए माँ बोली, 'और यहाँ तुझे नींद आ जाएगी ?–शैतान कहीं का !' और उसने उसका मुँह भी चूम लिया।

'यूँ अच्छा लगता है माँ !' और आँखें मूँद कर उसने माँ की कमर को बाहुपाश में घेर लिया। छुटपन की स्मृति जाग गई। छोटा था तब इसी तरह सुलाती थी न माँ !

'अब चुपचाप सो जा ! बातें करने से तो सारी रात नींद नहीं आने की।' और आस्तीन के कफ को मोड़ कर मशीन में क्या अटकाया, उसका मन ही सत्य-प्रकाश के बचपन में भटक गया। तब उसे मजदूरी के लिए दूसरों का अनाज भी पीस देना पड़ता था। घर में चक्की थी। हर घर में चक्की हुआ करती थी तब। सेरभर पिसाई का एक पैसा—पाँच सेर अनाज के लिए सबेरे चार बजे उठना पड़ता। माँ के बदन से लिपट कर सोने वाले छोटे बच्चे भी उठ जाते और तब चक्की चलाती माँ की दुलकती-फुलकती पृथुल जाँघ पर सिर रखकर सोये बिना उन्हें नींद नहीं आती। तन का स्वास्थ्य ही नहीं, माँ के मन को भी स्नेह की चिकनाई मिलती ! चक्की की लय-ताल के साथ कंठ के स्वर भी आ मिलते। कितना सुख था तब माँ और सन्तान के लिए उस नित्यकर्म में ?

'माँ, अगर उनके इस्कूल में भरती हो जाऊँ तो वे फीस भी माफ करवा देंगे !'

'वे कौन ?'

'वही जो सिनेमा दिखाने खींच ले गये थे। महाराजा हाईस्कूल में टीचर हैं न ! बड़े अच्छे हैं। कहते थे, भरती भी करवा देंगे। जान-पहचान नहीं थी, तब भी पान खिलाया, चाय पिलाई...'

'और सिनेमा भी दिखाया !' माँ ने सत्यप्रकाश की बात पूरी की।

'पर इसी से तो कोई बुरा आदमी नहीं हो जाता माँ !' सत्यप्रकाश ने साहस किया।

'पूछा नहीं, दूसरा टिकिट किसके लिए खरीद रखा था उन्होंने ?'

'कोई साथिन थी उनकी ! और माँ, जिस मेम ने मुझसे टिगट लिया था न, वह भी उनकी जान-पहचान ही की थी कोई। ओठ इतने लाल थे उसके कि क्या बताऊँ माँ', और उत्साह में जाँघ पर से सिर उठाकर बैठते हुए बोला, 'बस लाल ही लाल थे। बड़ी-बड़ी काली आँखें। मुझे घूरने लगी तो पूछा, 'मेम साब, टिगट चाहिए ?' 'हाथ का बटुआ नचाते हुए उसने आँखें मटका दीं और जब मैंने

टिगट थमाया तो झट से बटुए में से एक रुपया और एक अठन्नी निकाल कर पकड़ा दी !' उसने देखा कि माँ उसी की ओर देख रही है तो बोला, 'माँ !'

'क्या है रे ?'

सत्यप्रकाश समझ नहीं पाया कि क्या कहे तो बोला, 'कमीज हो गया तो चल, सो जाएँ !'

'नहीं, अभी नहीं हुआ। तू अपने टीचर की बात कह रहा था न !'

'पर तू तो···मुझे सिनेमा दिखाने ले गए इसलिए नाराज है न ?'

एक चोट-सी लगी माँ के दिल पर। खुश न हुई हो वह, पर सत्यप्रकाश तो खुश हुआ था। क्या बेटे की खुशी माँ के लिए कुछ नहीं ? सत्यप्रकाश ने जब फिर दुहराया, 'है न माँ ?' तो बुझे स्वर में कहना पड़ा उसे, 'हाँ सत्य !–तेरा वह टीचर भला आदमी नहीं लगता !'

भला आदमी नहीं लगता ?–उसे तो खूब भला लगा है वह ! सुन्दर, गोरी-चिट्टी देह, आँखों पर ऐनक, हाथ में सिगरेट और ओठों से फकाफक निकलता हुआ धुआँ ! देखते ही रह जाओ।

'कल भी आने के लिए कहा है न उसने तुझे ?' माँ ने पूछा।

'तूने कैसे जान लिया माँ ? उन्होंने कहा था न, कि बाकी के सब अखबार भी खरीद लूँगा !' कल जाकर दे आऊँगा और अपने पैसे ले आऊँगा। अखबार वाला तो कल वापस शायद नहीं ले।'

'और वे क्या करेंगे कल इन बासी अखबारों का ?'

'सो क्या मालूम माँ !–पर मुझे इससे क्या। मुझे तो अपने पैसों से मतलब है !'

'नहीं सत्य ! इन्हें दे आने की अब जरूरत नहीं है। तू अब उनसे नहीं मिलेगा। तू नहीं समझता, वे भले आदमी नहीं हैं। चल सो, मैं भी उठती हूँ।'

सत्यप्रकाश उठकर बिस्तर पर लेट गया। माँ के स्वर में दृढ़ता ही नहीं, शासन भी है। पर सत्यप्रकाश क्या करे ? वह खुद तो उस टीचर से मिलने गया नहीं था। सिनेमाघर जाना तो उसे रोज होता है। साथियों से मिलना तो होता ही है वहाँ, टिगट-बाबू को बंधी का अखबार भी तो देना पड़ता है। हर सनीचर को जब नया खेल लगता है तो भीड़ में उसके अखबार भी तो बिक जाते हैं। सबसे बढ़िया सिनेमाघर है वह शहर में। गद्दीदार कुर्सियाँ जिन पर नंबर लगे हुए, टिगट चाहो तो दो दिन पहले खरीद लो। और सिनेमाघरों की तरह धक्कमधक्का

नहीं। इतवार को भी तो खूब भीड़ होती है। —भला आदमी नहीं है। क्यूँ ? मेम को टिगट बेचते हुए देख लिया था, तभी तो अखबार नहीं, टिगट माँगा था उससे। —कुछ न कुछ झूठ बोलना ही पड़ता है। ब्लैक तो है ही, इनाम कह लो उसे भले ही। एक रुपए की टिगट का डेढ़ रुपया और सीधे ही सच सच कैसे कह दे कि अखबार नहीं, टिगट बेच रहा है वह ? माँ क्या इत्ता भी नहीं समझती ? दया करके पाँच टिगट ही तो देता है टिगटबाबू। टिगट पीछे एक चवन्नी से ज्यादा वह लेता भी कहाँ है ? सवा रुपया, यह हफ्ते में दो दिन, सनीचर और इतवार को, और बाकी दिन तो वही अखबार पीछे एक पैसा, बारह आने रोज। कभी कभी तो सब पचास अखबार रोज बिकते भी नहीं। —सरकारी इस्कूल में कैसे पढ़े ?—फीस जो लगती है वहाँ। पढ़ाई अच्छी होती हो वहाँ। धर्मार्थ पाठशाला में तो यूँ ही चलता है।—वादा किया है तो क्या झूठमूठ का ही ?—फीस माफ करवा दें तो क्या बात है ? —महाराजा हाई स्कूल, वहाँ सब पढ़ाई भी तो अंग्रेजी में होती है। वहाँ भरती होने पर अंग्रेजी यूँ ही सुधर जायेगी। माँ थोड़ा बहुत पढ़ा देती है, पर उसे ही कहाँ फ़ुरसत रहती है। माँ अलग से पढ़ा देती है इसलिए क्लास में सबसे तेज है वह, पर महाराजा स्कूल के लड़कों से नम्बर लाए तब है !

—सिनेमा खुद कहाँ देखना चाहता था वह ? कहा भी तो था उसने कि सिनेमा भले लड़के नहीं देखते। टिगट उसके पास तो नहीं बचा था, पर उसके पास जो अलहदा टिगट था एक। जो मेम उससे टिगट खरीद ले गई थी, उसके लिए ही तो खरीद रखा था उन्होंने पहले से। आई तब दिखाई ही नहीं दिए वे उसे, नहीं तो क्या पता उसका टिगट अनबिका ही रह जाता ? पर नहीं, खरीददार तो बहुत थे टिगटों के। ज्यादा से ज्यादा अठन्नी की जगह चवन्नी से ही उसे सन्तोष करना पड़ता। सिनेमाघर में जरूर उस मेम की हरकतें उसे पसन्द नहीं आई थीं उसने जब सरजी के कंधे पर हाथ रखा था, इस ओर बैठे उसके गाल से भी तो छू गया था और उस अँधेरे में सरजी ने शायद उसे चूम भी तो लिया था। क्या माँ इसलिए उन्हें भला आदमी नहीं कहती ? —पर उसे क्या मालूम ? उसने तो यह बात बताई ही नहीं। माँ को कैसे मालूम पड़ जाता है सब कुछ ? कल उन्होंने फिर आने को कहा है, यह उसे कैसे मालूम हुआ ? जाना तो उसे है ही। इतवार की भीड़ में भी उसे पाँच टिगट बेचने को मिल जाते हैं। उनसे कहा भी था उसने लेकिन तब भी उन्होंने उसे आने को कहा है। क्या काम हो सकता है उससे उनका ? उसके लिए पैसे खरच किए उन्होंने, पर अखबार तक तो खरीदा नहीं।

सिगरेट भी तो पीते हैं। सिगरेट पीना भी तो अच्छा नहीं है। बड़ी उबकाहट हुई थी उसे, जब एक बार उसकी ओर मुँह करके धुआँ छोड़ा था उन्होंने पर वह मेम तो बड़ी खुश होती थी जब उसके मुँह पर ही वे धुआँ छोड़ते थे। क्या मालूम वह खुद भी सिगरेट पीती हो। भली वह मेम भी तो नहीं है। पराए मर्द के साथ सिनेमा देखना···सुन्दर बहुत है तो क्या हुआ····उसकी माँ कितनी सुन्दर है। हजारों में एक भी कोई बता दे उससे बढ़कर। सत्यप्रकाश ने अनायास आँखें खोलकर देखा, सामने आले में रखी बालकृष्ण की मूर्ति के सामने माँ हाथ जोड़े प्रार्थना की भंगिमा में खड़ी है। सचमुच कौन है उसकी माँ के समान रूप और गुण में ? अब शायद वह पोथी खोल कर पढ़ेगी कुछ समय तक। संस्कृत वह नहीं जानता। माँ को नानाजी ने पढ़ाया था। वही कहती है–वे बड़े विद्वान थे। पर, ऐं ? आज क्या पढ़ेगी नहीं ?–चुपके से आकर लेट गई है उससे सटकर, सत्यप्रकाश और भी सिमिट आया और दोनों हाथों से माँ की गर्दन समाविष्ट कर माँ की कमर पर टाँग फैला दी और इस तरह लिपट गया मानो कहीं उसका अलग अस्तित्व ही नहीं है। माँ भी उसे छाती से सटा कर निश्चेष्ट हो गई।

★

मंजिलों का निमंत्रण

यूँ तो गर्मियों का अवकाश है, पर वैसे भी महेश्वर की संध्याएँ खासकर शनिवार और इतवार की संध्याएँ, नगर के भव्य सिनेमाघर एक्सेलशियर में या उसके इर्द-गिर्द ही बीतती हैं। सिनेमाघर के विस्तृत बरामदे में ही एक रेस्त्राँ है। इर्द-गिर्द और भी कई उपाहार गृह, होटल, पान-सिगरेट की दूकानें और फिल्मी कितावों के स्टॉल हैं। भीड़ भी खूब जुटती है। न देखने वाले भी महज आवारा-गर्दी के लिए आ जमा होते हैं। हॉकरों का भी जमघट लग जाता है। अखबार के हॉकर भी अपने अखबारों की खासा बिक्री कर लेते हैं। गए शनिवार को यहीं पर सत्यप्रकाश से मुलाकात हुई थी। दूसरे दिन भी उसे आने को कहा था पर उसके वाद से ही वह दिखाई नहीं दिया। बात क्या है? टिकिट-बावू से पूछा था उसने। आजकल अखवार कोई दूसरा ही लड़का पटक जाता है।

रेस्त्रां में बैठे अब तक कॉफी के दो दौर खत्म कर चुका है वह। सिगरेट तो ओठों से लगी ही रहती है। आज फिर शनिवार है। भीड़ तो नए खेल के दिन यूँ ही बढ़ जाती है। गए बुध को यूँ ही घूमते घामते धर्मार्थ पाठशाला के कार्यालय पहुँच गया था। कितनी प्रशंसा कर रहा था वह अध्यापक! पढ़ने-लिखने में बड़ा तेज! किसी गरीब विधवा का लड़का है। माँ कहीं खाना पकाने का काम और रात को दूसरों का सीना-पिरोना तथा बेटा शाम को अखबार बेचकर अपना गुजर-बसर करते हैं। अगर कुछ और परिश्रम करे और अच्छा निर्देशन हो तो सारे वोर्ड में अव्वल आ सकता है। पाठशाला अधिक से अधिक फीस ही तो माफ कर सकती है। माँ बेचारी भी और करे तो क्या? लड़का जहीन है, पहले ही परिचय में यह तो स्पष्ट हो गया था। इसीलिए तो महेश्वर उससे परिचय बढ़ाना चाहता है। यदि कुछ उसकी सहायता कर सके तो लड़के का भाग्य वन जाएगा। गरीबी का यह भार प्रतिभा को किस तरह नष्ट कर देता है, यह महेश्वर से छिपा हुआ नहीं है। आज शनिवार है, नया खेल लगा है। आज तो उसे आना ही चाहिए। पर अभी तक आया क्यों नहीं? उस दिन टरेसा जो उसके साथ थी उसकी वजह से तो नहीं भड़क गया? टरेसा भी तो तबसे दिखाई नहीं दी। उसमें तो खैर अस्वाभाविक कुछ नहीं है। वह खुद भी तो तबसे ब्यूटी पार्लर की दिशा में गया नहीं। टरेसा कोई हिन्दू पत्नी है कि एक की वनी रहकर जीवन ही विता दे?

मुँह से सिगरेट के धुएँ के छल्ले फेंकते हुए उसका ध्यान चला गया उस लड़के की ओर जो पोस्टर के पास खड़ा भीड़ को ललचाई दृष्टि से देख रहा है। किसी ने जाकर उसे चुपके से पैसे पकड़ाए हैं और बदले में उसी तरह आहिस्ता से उसने उसे टिकिट थमा दिया है ! तो क्या उसी सत्य प्रकाश के दल का लड़का है ? सत्यप्रकाश और दल ? पर उसने तो कहा था कि पाँच टिकिट वह सीधे टिक्टि बाबू से ले लेता है और पाँच से अधिक नहीं बेचता। क्या वह झूठ बोला उससे ? ऐसा लड़का लगा तो नहीं था वह ! कुछ सोच कर महेश्वर उठा। काउंटर पर जाकर बिल के पैसे चुकाए और उस लड़के की दिशा में आगे बढ़ गया। पास आकर कहा, 'एक टिकिट हमें भी दो न।'

लड़के ने महेश्वर को सिर से पाँव तक देखा और बोला 'टिगिट ?– मेरे पास ?'

'अभी तुमने उस आदमी को दिया न ! ऊपर का वाजिब पैसा ले लो !'

'आठ चवन्नियाँ हों तो एक रुपये का टिगिट ला दूँगा ! हो तो निकालो !'

'आठ चवन्नियाँ ? अरे, छह चवन्नियों में तो उससे ऊँची क्लास का टिकिट मिलता है !'

'तो ले आओ न ! मना कौन करता है ?'

'तुम्हारा वह साथी नहीं है, जो पाँच चवन्नियों में एक रुपए का टिकिट बेचता है ?'

'यह मुँह और मसूर की दाल !' कहकर लड़का आगे बढ़ गया। सत्यप्रकाश से उसे क्या मतलब ? और ऐसे मामलों में कहीं ज्यादा बातचीत की जाती है ? –अभी पुलिस की वर्दी पहने कोई सिपाही देख ले तो ? नहीं आसपास कहीं सत्यप्रकाश दिखाई नहीं दे रहा। होता तो जरूर एक बार पोर्च में आता।

सामने भीड़ बढ़ती जा रही है। खेल शुरू होने में अभी देर है। और इस तरह परेशान होने की जरूरत ही क्या है ? मिल जाता तो उसी का भला होता। उसे क्या–यहाँ से चलकर आज शाम टरेसा के ब्यूटी पार्लर ही में बिताई जाए तो कैसा हो–अगर टरेसा भी वहाँ न हो–कहीं बीमार तो नहीं हो गया सत्यप्रकाश ?– घर का पता भी तो मालूम नहीं है। अगर अनायास उसके घर पहुँच जाएँ तो कैसा लगेगा उसे–? उसकी माँ एक विधवा है दूसरों का खाना पकाना और दूसरों का सीना–पिरोना करके पेट पालती है। साहस तो खूब है उसका। देखे तो वह भी। पर घर ही किसे मालूम है ? एक बार मिले तो वह लड़का !

जेब में से सिगरेट केस निकाला पर वह खाली है। उधर वह दूकान है

तो, पान भी ले लेगा बस, वहीं से चल देगा ब्यूटी पार्लर। यहाँ अब समय बरबाद करने में कोई तुक नहीं है।

पान को गाल में दबाकर सिगरेट जलाते हुए महेश्वर ने लक्ष्य किया कि उधर कुछ भीड़ इकट्ठा हो गई है। क्या बात है? सिपाही भी तो भीतर घुस रहा है—क्या करेगा वह जाकर वहाँ किसकी बला किसके सिर? लेकिन अनायास उसके पैर उधर ही मुड़ गए। आगे बढ़कर देखा कि एक सिपाही उसी लड़के को पकड़े हुए है, जिसने उससे आठ चवन्नियाँ माँगी थीं। महेश्वर से नहीं रहा गया बोला, 'कहो बच्चू, चवन्नियों के चक्कर में फँस गए?'

सिपाही ने पूछा, 'आप जानते हैं इसे?'

'इतना ही कि चार चवन्नियों के टिकिट को आठ चवन्नियों में बेच रहा था!'

'मैं–? मैं नहीं जनाब, बल्कि तो जोरू का गुलाम साला वो भड़वा कर रहा था!' वो और उसके फैलाए हाथ का अनुसरण करके महेश्वर ने देखा कि एक और लड़का औंधे मुँह जमीन पर पड़ा है और कुछ आदमी झुके हुए उसका उपचार कर रहे हैं। शायद आहत हो गया है, अचेत भी हो गया हो–'वह भी तुम्हारा साथी है क्या?'

'मैं क्या जानूँ कौन है वह–जमादारजी, सच कहता हूँ मैं बिलकुल बेकसूर हूँ। मुझे छोड़ दो।'

'अबे बेकसूर के बच्चे!' और सिपाही ने उसे एक धौल मारा और कहा, 'साला, उस लड़के को मार क्यों रहा था?'

'वोई तो टिकिट का बिलेक कर रहा था। मुझे टिकिट चाहिए था। उस्से माँगा तो साला बोला कि चार चवन्नी के टिगिट का आठ चवन्नी हो तो निकाल। मैंने कहा, छै ले ले। इसने गाली दी। मैंने कहा, गाली देगा तो ठीक नहीं होगा। बस, इसी पर इसने मुझे ठोकर मार दी, तब मैंने इस पर हाथ उठाया और तभी लोगों ने हमें छुड़ा दिया। गिरा तो ये अपने आप ही।'

'टिकिट लिया तुमने इससे फिर?' महेश्वर ने पूछा।

'दिया ही कहाँ इसने?–छै चवन्नी तो लेना ही नहीं चाहता था……'

महेश्वर ने किसी को कहते सुना, 'सरजी, आप……' महेश्वर ने स्वर की दिशा में देखा कि फर्श पर पड़े लड़के के पास भीड़ छँट गई है और अब लड़के को अच्छी तरह देखा जा सकता है……अरे!–सत्यप्रकाश कपड़े धूल में सने हुए, ओठों से निकला खून नीचे गाल पर बहकर सूख गया है। आगे बढ़कर सहारे से सत्यप्रकाश को बैठाया और पूछा 'तुम?–इसने मारा है तुम्हें?'

हाथ जोड़कर माथे से लगाते हुए सत्यप्रकाश ने कहा, 'यही नहीं, इसके और साथी भी थे सरजी ! मैं जानता हूँ सबको। मिसरी और जमना को तो खूब अच्छी तरह देखा था ! बोल न मँगरु, और कौन-कौन थे ?'

'आप जानते हैं इसे ?' सिपाही ने कहा, 'तो आपको भी थाने चलना होगा। आपकी गवाही की जरूरत होगी !'

'मुझे एतराज नहीं। पर पहले इस बदमाश के जेब की तलाशी तो ले लो। जरूर इसकी जेब से और भी टिकिट निकल आएँगे। अभी पता लग जाता है कि कौन किससे टिकिट खरीदना चाहता था।'

'तो इसके जेब की तलाशी भी लो न !' मँगरु नाम के बदमाश लड़के ने कहा।

सत्यप्रकाश उठ खड़ा हुआ था। जेबें उलटकर उसने कहा, 'लो देख लो ... अरे मेरे पैसे क्या हुए ?'

'पैसे ?' हँसकर मँगरु बोला, 'है न चोर ?—नहीं तो पैसे कहाँ से आते ?'

'अखबार जो बेचता हूँ। देखता नहीं ? अभी भी इतने अखबार पड़े हैं !' और उसने पास बिखरे हुए अखबार दिखा दिए। रुआँसे स्वर में उसने सिपाही से चिरौरी की 'देखिए दीवानजी मारपीट में इन लोगों ने मेरी जेब से पैसे भी हथिया लिए हैं। मैं गरीब लड़का हूँ। हाय, अखबारों का पैसा मैं कैसे भरुँगा ?' सचमुच मारपीट से अधिक खेद उसे पैसे छिन जाने का था।

सिपाही तब तक मँगरु की जेब की तलाशी ले रहा था। उसमें न केवल एक-एक रुपए की तीन टिकटें बरामद हुईं, बल्कि पाँच रुपए और कई छुट्टे पैसे भी निकले। सिपाही ने उसे एक तमाचा जड़ते हुए भद्दी-सी गाली दी और कहा, 'झूठ बोलता है साले पुलिस ही से ? खुद जब टिकट खरीद रहा था तो ये तीन-तीन टिकट कहाँ से आ गए ?'

'मैं क्या जानूँ ?—कहीं इसी ने जेब मैं ठूंस दिए होंगे ?'

महेश्वर ने कहा, 'और ये पाँच रुपए और पैसे भी इसने तुम्हारी जेब में ठूंस दिए ?'

'ये तो मैं घर से ही लेकर चला था !' सुनकर सिपाही ने दूसरे गाल पर भी तमाचा जड़ दिया।

महेश्वर ने कहा, 'दीवानजी थाने चलने से पहले मैं इस लड़के को अस्पताल लिए जाता हूँ मरहम-पट्टी की इसे बहुत जरूरत है। डॉक्टर का सर्टिफिकिट भी

मैं लेता आऊँगा ! वहाँ से इसे लेकर मैं सीधा थाने चला आऊँगा। इस बदमाश को आप थाने ले जाइए !–और हाँ अगर इस गरीब के पैसे यहीं दिलवा दें तो…'

'सो तो कैसे हो सकता है जनाब ?—पहले तो डायरी लिखनी होगी, बयान होगा जाँच होगी, जुर्म दफा लगाकर अदालत में मामला जाएगा तब पैसा तो जज के हुकुम से मिलेगा। अस्पताल होकर आइए न आप थाने पर ! वहाँ थानेदार साहब से खुद पूछ लीजिएगा !'

'अच्छा !' कहकर महेश्वर ने सत्यप्रकाश की ओर मुँह किया 'अस्तपाल तक तो पैदल चल सकते हो न ?—या इक्का कर लें ?'

'पैर को तो कुछ नहीं हुआ सर' नीची दृष्टि किए सत्यप्रकाश ने कहा 'और अब तो खून भी बन्द हो गया है !' थोड़ा आगे बढ़ गए तो आहिस्ता से कहा, 'और अस्पताल चलकर क्या होगा सर ? इससे तो अच्छा होता कि सिपाही के साथ थाने पर चलकर पैसे ले लेने का उपाय करते।'

महेश्वर मुस्कराया, 'हवालात की हवा खाने का इरादा है क्या ?'

'क्यूं–मैंने तो किसी को नहीं मारा सर !'

'लेकिन टिकिट की कालाबाजारी तो तुमने भी की है न ! हो सकता है कि खाली पाँच ही टिकिट बेचते हो और उनमें भी टिकिट पीछे एक चवन्नी ही लेते हो, पर कालावाजारी तो वह है ही !'

'तो फिर क्या होगा ?' और उसने महेश्वर की ओर देखा। यद्यपि उसकी आँखें सहज फैल गई थीं, पर उनमें प्रकाश नहीं था। सूर्यास्त के बाद आकाश की शुभ्र नीलिमा में दिप उठने वाले किसी तालाब के किनारे जिस तरह वृक्षों की छाया सघन हो उठती है, उन आँखों में किसी भय की वैसी ही छाया फैल गई ! और आँखों की भाषा की महेश्वर खूब समझता है।

महेश्वर ने कहा, 'थाने न जाने से भी काम चल जाएगा। वह सिपाही खुश ही होगा, इससे उसे वे पैसे मार लेने की सहूलियत हो जाएगी जो उस लड़के के पास मिले हैं।'

'तो वे पैसे मुझे नहीं मिलेंगे ? तो फिर कल अखबारवाले का पैसा…' आगे वह बोल न सका।

'एक उपाय है भई, वह रुपया तुम्हें अगर मैं दे दूं ?'

'आप ?–आप क्यूं देंगे सर ?'

'तुम्हें जरूरत है न ! अखबारवाले को, टिकिट बाबू को...'

'पर माँ क्या कहेगी ?' अकस्मात सत्यप्रकाश के मुँह से निकल पड़ा।

'माँ !–माँ से मत कहना !–क्या बहुत डरते हो माँ से ?'

'माँ से नहीं डरना चाहिए ?' और सत्यप्रकाश को वह रात स्मरण हो आई जब माँ ने सर जी के साथ सिनेमा देखने पर रोष प्रकट किया था।

'डरने की बात हो तो जरूर डरना चाहिए। लेकिन तुम चोरी करके तो यह पैसा नहीं ले रहे।'

'चोरी ?' और सत्यप्रकाश हँस दिया। चोरी की कल्पना भी उसके लिए असम्भव है !–किन्तु तब इस समस्या का हल कहाँ है ? सर कहते हैं कि पुलिस से रुपया मिलने की कोई सम्भावना नहीं है और उसे कल ही अखबारवाले के पैसे और पाँच टिकट के दाम चुकाने हैं ! किताबें और जूते बाद में भी खरीदे जा सकते हैं, किन्तु अभी तो उसे जल्दी ही माँ के लिए साड़ी और ब्लाउज का कपड़ा खरीदना है। सर पैसा दे रहे हैं, पर वह ले तो कैसे ?–किस अधिकार से ?

'अच्छा सर जी, रुपया मैं ले लूंगा आपसे, पर यह मुझ पर उधार रहेगा। थोड़ा-थोड़ा करके मैं आप को चुका दूंगा !' सत्यप्रकाश ने और कुछ उपाय न देखकर कहा।

महेश्वर ने मुस्कराकर कहा, 'ब्याज नहीं दोगे ऊपर से ? अच्छा ठीक है। उधार ही सही।'

'माँ बेचारी अकेली करे भी तो क्या सर ?–अब तो मुझे किताबें भी तो बहुत लगेंगी न ! कुछ तो इस साल खरीदनी ही पड़ेगी। मैट्रिक का कोर्स जो है !'

'अरे हाँ, तुम महाराजा हाई स्कूल में भरती होना चाहते हो न ! चेष्टा कर फीस माफ हो जाएगी, और फण्ड से कुछ किताबों की व्यवस्था भी की जा सकेगी !'

'सच सर ?' उल्लास के साथ वह बोला, 'अगर यह हो जाए सर, तो मैं ही क्या, माँ भी बहुत खुश होगी। हम हमेशा आपका गुण गाएँगे सर !'

'ठीक है, मैं कोशिश करूँगा—लो अस्पताल तो आ गया !'

चोट विशेष न थी पर अस्पताल में कुछ समय तो लग ही गया। दाहिना जबड़ा भीतर से छिल गया था और अब बाहर भी सूजन उभर आई थी। हाथ-पैरों में जगह-जगह रगड़ के निशान थे, उन पर टिंचर आइडिन लगा दिया गया। बाएँ पैर का घुटना कुछ अधिक छिल गया था, घाव साफ करके दवा छिड़क कर उस पर पट्टी बाँध दी गई। चोटों का एक प्रमाणपत्र भी ले लिया गया ताकि आव-

श्यकतानुसार उपयोग में लाया जा सके। और आठ बजे के लगभग दोनों एक इक्के में सवार होकर अस्पताल से निकले।

महेश्वर ने समझा दिया था कि सत्यप्रकाश को अभी थाने पर जाने की जरूरत नहीं है। दूसरे दिन वह खुद ही चला जाएगा और सब कुछ ठीक कर देगा। पैसा तो अभी वहाँ से मिलने से रहा। अतः इक्का शहर की ओर ही चल पड़ा। दोनों आमने-सामने वैठे थे। इक्का चल पड़ा तो महेश्वर ने जेब से सिगरेट निकाल कर सुलगा ली।

'आप सिगरेट क्यूँ पीते हैं सर? यह तो अच्छी आदत नहीं है न?' सत्यप्रकाश ने साहस से पूछा।

'अच्छी आदत नहीं है, यह किसने कहा तुमसे?' धुआँ फेंकते हुए महेश्वर ने प्रतिप्रश्न किया।

'सभी कहते हैं!—माँ भी कहती है। इस्कूल में कोई कहाँ पीता है?'

'आदत तो यों भी हर चीज की बुरी होती है, तुमने कभी पी है?—चोरी-छिपे भी नहीं?'

'बहुत बचपन में पी थी। वड़ी कड़वी थी सर, और जी भी घबराने लगा था!—फिर कभी पीने का मन ही नहीं किया!'

'अच्छा हुआ कि मन नहीं किया! आदत पड़ जाती तो छूटती नहीं! मैंने भी कब शुरू किया यह याद नहीं पड़ता, पर शायद यह जो धुआँ फेंकने की कला है न?'—और उसने एक कश खींचकर मुँह बनाते हुए ढेर सारा धुआँ सत्यप्रकाश के सामने फेंका जो क्षण भर में छल्ले बनाता हुआ भागते हुए इक्के की दौड़ में पीछे छूटता गया। महेश्वर कह रहा था, 'बहुतेरे लड़के इसी की जादू में फँस कर शुरू कर देते हैं। तुम्हारे स्कूल में कोई सिगरेट पीता है?'

'क्लास में तो नहीं सर, लेकिन बाहर निकल कर दो-तीन सरजी पीते हैं। दो-एक लड़के भी छिप-छिप कर बीड़ी पीते हैं। माँ कहती है, ऐसे लड़कों की कभी संगति नहीं करनी चाहिए।'

'माँ से बहुत डरते हो न सत्यप्रकाश?'

'नहीं डरना चाहिए क्या?—आप नहीं डरते?'

'मेरी माँ है ही नहीं!' महेश्वर ने कहा, 'क्या तुम्हारी माँ तुम्हें पीटती भी हैं?'

'नहीं सर, पीटने क्यूँ लगी, वह तो प्यार करती है, बहुत प्यार!'

'बहुत प्यार ?–तब प्यार करने वालों से कहीं डरा जाता है ?'

'बुरी आदत हो तो कभी-कभी डाँट भी पड़ जाती है। बड़ों का कहना भी तो मानना चाहिए ! नहीं सर ?'

महेश्वर ने हाथ की सिगरेट को इक्के के मडगार्ड से रगड़ कर बुझाते हुए फेंक दिया और कहा, 'शायद इसीलिए तुम्हारी माँ ने मुझसे मिलने के लिए मना किया होगा !–है न ?–और तब भी अनजाने ही फिर मेरा साथ हो गया ! अगर माँ देख ले तो नाराज होगी न ?'

सत्यप्रकाश को उत्तर नहीं सूझा, बात सही भी है, और नहीं भी। सर इतने बुरे कहाँ हैं ? इतनी सहानुभूति उसके स्कूल का तो कोई टीचर नहीं दिखाता, लेकिन तब भी स्पष्ट ही तो उसने कह दिया कि सिगरेट पीने वाले का साथ नहीं करना चाहिए ! मन ही मन डर भी तो रहा है। पर उसे बहुत काम लेना है इनसे। अगर रुपये उसे अभी उधार न मिले तो मुसीबत ही हो जाएगी।–महाराजा हाई स्कूल में अगर उसे भरती करवा दें और फीस भी माफ हो जाए तो उसे और क्या चाहिए ?–माँ को फिर शिकायत का मौका ही क्या रहे ?–तब तो वह शाम को समय निकाल कर कुछ इनसे पढ़ भी ले सकता है। तब वह फर्स्ट क्यूँ नहीं आ जाएगा ?

'माँ जाने कब देखेगी पर अभी तो तुम खुद ही नाराज हो गए हो।–है न ?'

'नहीं-नहीं सर ! बल्कि मैं तो माँ की ही बात सोच रहा था कि वह सब सुनेगी तो कितनी खुश होगी !–आज ही आप नहीं होते तो मेरी पुलिस वाले क्या दुर्गति करते और अस्पताल ले जाकर दवा-पट्टी का इन्तजाम तो माँ भी नहीं कर पाती ! वह मेरी बहुत चिन्ता करती है सर ! पिता तो, मैं डेढ़-दो साल का था, तभी चल बसे थे। तब से माँ कहो तो और बाप तो, वही सब कुछ है। घर खर्च ही नहीं, घर का सब कामकाज भी उसे ही करना पड़ता है। कितनी मेहनत करनी पड़ती है उसे ?' और उसका सिर छाती पर लटक आया। स्वर भारी हो उठे।

उसका सिर सहलाते हुए महेश्वर ने पूछा, 'कितनी मेहनत करनी पड़ती है भाई ?'

'क्या बताऊँ सरजी, सबेरे-शाम दोनों समय एक सेठ के यहाँ खाना बनाने जाना, दिन को मिले थोड़े-बहुत समय में एक सिन्धी दुकानदार के लिए अगरबत्तियाँ बनाना और रात को खाने-पीने से निपटकर बाहर वालों के कपड़े सिलाई करना। सोती कब है यह मुझे मालूम ही नहीं पड़ पाता। सबेरे जब चार बजे मुझे उठाती है तो देखता हूं कि घर झाड़-बुहार कर और खुद नहा-धोकर चूल्हा लगा चुकती है।

हाथ-मुँह धोकर मैं पढ़ने-लिखने बैठ जाता हूँ और इस बीच सात बजते-बजते अपने यहाँ खाना पकाकर सेठ के यहाँ खाना पकाने पहुँच जाती है। गनीमत है कि जैन होने से वे लोग शाम को सूरज छिपने से पहले ही खाने-पीने से निपट लेते हैं इसलिए वहाँ से माँ को सात बजे तक छुट्टी मिल ही जाती है। अखबार बेच-बुचाकर आठ बजे तक मैं घर लौट आता हूँ तो खाना बन रहा होता है या बन चुका होता है। रात का खाना दोनों साथ ही खाते हैं। जब तक वह बर्तन मलती है, मैं कुछ पढ़ लेता हूँ। वह मशीन लेकर बैठती है तब तक मुझे तो नींद भी आने लग जाती है!—नहीं है यह कड़ी मेहनत सर?'

'सच ही कड़ी मेहनत है भई! अच्छा, कपड़े मर्दाने भी सीती हैं या महिलाओं के ही?'

'मर्दों के कमीज-कुर्ते-पजामे भी सीं लेती है सर!'

'काम तो काफी मिल जाता होगा?'

'काफी कहाँ मिलता सर?—पास-पड़ोस में जो जानते हैं, वे ही दे जाते हैं। यूँ पैसे भी बहुत कम दे जाते हैं। काम नहीं होता तो मेरे साथ ही पढ़ने भी बैठ जाती हैं। बल्कि पढ़ती तो रोज ही है सर! कहती है थोड़ा-बहुत पढ़े बिना उसे नींद ही नहीं आती!'

'अच्छा! तो पढ़ी-लिखी भी हैं! कहाँ तक पढ़ी हुई हैं?'

'यह तो नहीं जानता सर! वह जो संस्कृत के पोथे पढ़ती है, वे तो मुझसे पढ़े भी नहीं जाते। पढ़ा किसी स्कूल में नहीं है सर! कहती है, जो कुछ पढ़ा घर पर ही पढ़ा है। मेरे पिता भी तो स्कूल में टीचर ही थे। पर माँ कहती है, मेरे नानाजी एक बड़े विद्वान् पण्डित थे, कविता करते थे।'

'अच्छा', आश्चर्य व्यक्त करके ही महेश्वर चुप हो गया तो सत्यप्रकाश बोला, "पर बेचारी को फुरसत ही कहाँ मिलती है। सींने-पिरोने का काम न हो और कोई दूसरा काम ले बैठती है, नहीं तो घर खर्च कैसे चले?—जहाँ खाना बनाने जाती है वहाँ सवेरे का खाना और बीस रुपये माहवार मिलते हैं, उसमें से आठ रुपया तो मकान किराया ही दे देना पड़ता है!'

'अच्छा सत्यप्रकाश, अपने मित्रों से कहकर उनके कुछ कपड़े सिलवाने की व्यवस्था करूँ तो?'

'यह तो आपका बड़ा अहसान होगा सर!—और आपने कहा था न! अगर आप मुझे महाराजा हाई स्कूल में भरती करवा दें तो कितना अच्छा हो!'

'फीस भी तो माफ करवाने को कहा था। वहाँ छात्र-कोष से जरूरतमन्द छात्रों को किताबें भी दी जाती हैं। मैं कोशिश करूँगा तुम्हारे लिए। अभी तो डेढ़-

दो महीने हैं स्कूल खुलने में ! और मित्रों के कपड़ों की भी व्यवस्था कर दूंगा। इसमें अहसान की क्या बात है। मुझसे मिलते रहा करो !'

'कहाँ मिलता रहूँ सर ? अभी तो स्कूल बन्द है न !'

'मेरा नाम महेश्वर है ! घर पर बहुत कम मिलता हूँ। मेरे तो घर पर कोई माँ है नहीं न ! बस, एक छोकरा रख छोड़ा है, जो सब काम कर देता है। शाम को अक्सर इसी एक्सेलशियर सिनेमा के कॉफी हाउस में मिल जाता हूँ !'

इक्केवाले ने पूछा, 'नयापुरा तो आ गया हुजूर, कहाँ उतरिएगा ?'

'बस उस इमली के पेड़ के नीचे !' महेश्वर ने जेब से एक दस रुपये का नोट निकाल कर सत्यप्रकाश की ओर बढ़ाया तो सत्यप्रकाश बोला, 'पर इसे तो बारह आने ही देना है न !'

'वह मैं दे दूंगा। मुझे तो अभी घर पहुँचना है न।'

'मेरे घर नहीं चलेंगे सर ?' झिझकते हुए सत्यप्रकाश बोला।

'मैं क्या अच्छा आदमी हूँ ?' मुस्कराकर महेश्वर बोला, 'तुम्हारी माताजी खुश नहीं होंगी न।'

झुंझलाहट हुई तो सत्यप्रकाश ने कहा—'सब बात सच कहकर समझा देने से भी न माने ऐसी जिद माँ की नहीं है सर ! बल्कि आपका अहसान ही मानेगी।'

इक्का इमली के पेड़ के नीचे रुक चुका था। महेश्वर ने कहा, 'अभी नहीं सत्यप्रकाश। सब जान कर अगर किसी दिन कहेंगी तो आऊँगा।' और उसने सत्यप्रकाश के हाथ में नोट थमा दिया, कहा, 'अगर और भी जरूरत हो तो संकोच मत करना।'

नीचे उतर कर सत्यप्रकाश ने कहा, 'पता नहीं, रुपए देखकर माँ खुश होगी कि नहीं। बल्कि अभी रख ही लीजिए न सर। —माँ से पूछ लूंगा। कहेंगी तो कल ले लूंगा।'

हँसकर महेश्वर ने कहा, 'कहना, दान नहीं उधार लाया हूँ; दोगे तो ब्याज भी ले लूंगा तब भी अगर नाराज हों तो कल लौटा देना। कल मिलोगे तो ?'

'कल ?'

'वहीं कॉफीहाउस में। शायद थाने से कुछ भी खबर पा लूंगा। —किस मकान में रहते हो ?'

'यह जो बडा-सा दरवाजा है न सर आगे जाने पर सीधे एक कतार में ऊपर नीचे मिला कर पचासेक खोलियाँ बनी हुई हैं। ऊपर बाहर-भीतर दो खोलियाँ हैं, नीचे एक-एक ही। ऊपर किराया है दूना। हम उधर से नीचे चौथी खोली में रहते हैं।

'अच्छा ! तो कल मिलेंगे । इक्का मोड़ लो भाई ।'

जब तक दिखाई दिया सत्यप्रकाश विभोर आँखों से जाते हुए इक्के को देखता रहा ।

बिजली की बत्तियों से घबरा कर सारे शहर का अँधेरा निष्कपाट दरवाजे के भीतर ही आ छिपा है, किन्तु सत्यप्रकाश से उसका परिचय है, बल्कि उसके गहरे आँचल में वह एक शान्ति और सुरक्षा भी अनुभव करता है । सधे कदमों से वह दरवाजे के पार हो गया । घुटने पर बँधी हुई पट्टी ही कुछ कष्ट दे रही थी । आगे बरामदे के सामने बैलगाड़ी चली जाए इतनी चौड़ी खुली जमीन है, जिसपर खुले आसमान के नीचे गरमी से बचने के लिए खाट बिछाए किराएदार लेटे हुए हैं । बरामदे में कुछ दिखाई नहीं देता । शायद महिलाएँ अपनी कथरियाँ बिछाकर बच्चों-कच्चों को लिए अपनी-अपनी खोलियों के सामने सोई हुई हों । मजा तो ऊपर आता है । बरामदे के ऊपर खुली गैलरी है और उसी में किराएदार गरमी से बचने के लिए बिस्तर फ़ैलाकर सोए रहते हैं । रात को देर-सवेर लोग आते-जाते ही रहते हैं । बिस्तरों को बचाकर अपनी कोठरी तक पहुँचने या कोठरी से निकल कर सीढ़ियों तक पहुँचने के लिए जिस तरह उन्हें उछल-कूद करनी पड़ती है वह देखने लायक ही होती है । नीचे ऐसी नौबत नहीं आती । सामने ठीक बरामदे से अपनी कोठरी में घुसा जा सकता है ।

सिरे पर पहुँच कर सत्यप्रकाश ने गिना । वह केवल जानता ही नहीं, उसे अपनी कोठरी की गंध भी परिचित है, पर तब भी गिन लेना अच्छा होता है । कई बार ऐसी भयानक या मजेदार गलतियाँ लोगों से हो गई हैं कि बस । उसकी कोठरी उधर से चौथे नम्बर पर है ।

दरवाजे पर हाथ रख कर उसने आहिस्ता से पुकारा 'माँ ।'

'कौन सत्य ? —आई बेटे ।' और कुछ ही लहमों में चरमर करता हुआ कोठरी का दरवाजा मानो भीतर से प्रकाश की लम्बी छड़ के बहाने आँखें खोलता हुआ झाँकने लगा । सत्यप्रकाश ने खुले पल्ले को हाथ पकड़ कर चौड़ा किया और भीतर घुसकर दरवाजा बन्द कर दिया ।

दिए की रोशनी मद्धिम ही थी, पर चेष्टा करके भी वह टाँग के लँगड़ेपन को माँ की तीक्ष्ण दृष्टि से छिपा नहीं सका, —'क्या हुआ रे ? —अरे, यह पट्टी ? …हे भगवान, तेरा तो गाल भी सूजा पड़ा है,' —और नाक सिकोड़कर सूँघती हुई बोली, 'दवा की गंध…गिर पड़ा कहीं, या मारपीट…'

माँ के स्वर में एक साथ ही आतंक, आशंका और कम्प अनुभव करके सत्यप्रकाश ने कहा, 'जरा सुस्ता तो लेने दे माँ, सब कहता हूँ, घबराने की बात नहीं है, आज जरा झगड़ा हो गया था ।'

'किससे ?—लगी कहाँ-कहाँ है ?—बहुत लगी है न ? अस्पताल तक तो हो आया है।' और नीचे झुककर वह सत्यप्रकाश की पट्टी बँधी टाँग को सहलाने लगी।

'वह मँगरू है न, टालवाले रहमत चाचा का लड़का। अब तक तो वह दूसरे-दूसरे सिनेमाघरों में ही धंधा करता था। आज मेरे सिनेमा घर भी आ धमका, नया खेल लगा था न। दो-चार चमचे लेकर लाइन में कुछ टिगट कबाड़ लिए होंगे। जब मैं एक ग्राहक से बात कर रहा था तो मुझसे ही उलझ पड़ा, अकेला होता तो चखाता उसे मजा, पर उसके सभी चमचों ने घेर लिया। वे इतने सारे मैं अकेला क्या करता भला ?'

'और कोई बीच-बचाव करने वाला वहाँ था नहीं ?'

'तभी तो ज्यादा चोट नहीं लगी !—और तो सब भाग गए पर वह मँगरुआ तो पकड़ा भी गया।'

'तो पुलिस तक पहुँच गई बात ?—हाय राम !—और कहाँ लगी रे ?—सारा गाल सूज रहा है। यह लाल-लाल क्या दवा है ?—इतना वड़ा वह मँगरू, शरम नहीं आई उसे तुझ पर हाथ उठाते ?'

'यह दवा लगाई है माँ !—अस्पताल ले गए न वे ! तू चिन्ता मत कर माँ !—पर, सालों ने पैसे सब झटक लिए !' पर माँ ने शायद इस पर ध्यान नहीं दिया, सारे बदन पर हाथ फिराकर वह चोटों ही की जाँच कर रही थी। पूछा, 'सच कह, चोट ज्यादा तो नहीं है ?'

'जरा खरोंच आ गई है बस ! पट्टी खोलकर बता दूं ?' और उत्तर की राह न देखकर उसने बदन पर से कमीज उतार कर पास की खूंटी से लटका दिया। फिर माँ की जाँच की उपेक्षा करके मोरी पर पहुँच कर हाथ-पैर धोने लगा। माँ ने कहा, 'घाव पर पानी न लगने पाए···यह अस्पताल जाने की अकल तुझमें कहाँ से आ गई रे ?'

महेश्वर का नाम ले या न ले, इस दुविधा से बच कर उसने कहा, 'वहाँ से सर्टिफिकेट भी तो लाया हूँ माँ !'

'सर्टिफिकेट कैसा रे ?'

'डाक्टर का क्या-क्या चोट लगी इसका ! देख न !'—पर जैसे ही उसने जेब में हाथ डाला, भीतर ही भीतर दस रुपए का नोट भी हाथ का दबाव पाकर चरमरा उठा। अब ?—क्या पता बाहर हाथ में वह नोट होगा या डॉक्टर का सर्टिफिकेट ? कुछ क्षण दुविधा में बिताकर उसने दोनों ही कागज मुट्ठी में दवाए इस तरह निकाले कि माँ देख न सके, और उसका ध्यान बटाने के लिए कहता गया, 'पुलिस में गवाही तो इसी सर्टिफिकेट की चलती है न !' किन्तु तमसा की सजग दृष्टि ने सहज ही उस नोट को देख लिया और पूछा, 'यह क्या है रे ?'

सत्यप्रकाश ने हकलाते हुए कहा, 'यह···यह माँ, दस्···दस रुपए का नोट माँ···'और मुट्ठी खोल कर दोनों कागज माँ के सामने फैला दिए। आँखें नीची करके सत्यप्रकाश बोला, 'उधार लाया हूँ माँ, कल अखबार वाले को और टिगट-बाबू के टिगटों के पैसे तो चुकाने होंगे न !'

'तो उधार भी ले आया !—लाया किससे रे ?—देख, झूठ न बोलना। याद है न उस दिन की बात ? मैं अभी घर छोड़कर चली जाऊँगी और रेलगाड़ी के नीचे कट मरूँगी।'

'नहीं माँ, नहीं ! झूठ नहीं बोलूँगा। यह नोट मुझे उन्हीं टीचर ने दिया है।'

'उसी टीचर ने ?—और कह रहा है उधार लाया है ?'

'उधार ही लिया है माँ। सच, चाहे सौगन्ध ले ले !'

'सौगन्ध का क्या ? मैं मर जाऊँ तो तुझे छुट्टी मिले। कमाने लग गया है न ! बाहर मन चाहा उधार तक मिल जाता है। अब क्या है ?'

'झूठ नहीं बोलता माँ, उन्हीं से पुछवा दूँगा। मैंने कहा कि धीरे-धीरे सब चुका दूँगा और वे राजी हो गए। बोले कि चाहो तो ब्याज भी दे देना !'

'ब्याज भी ले लेगा। बड़ा धन्ना सेठ है न ! पर मैंने तो मना किया था न उससे मिलने से ?'

'मैं कहाँ गया उनसे मिलने ? भीड़ में कब किसने मुझे उन गुण्डों से छुड़ाया मुझे क्या होश था ? और होश आया तो क्या कह देता कि मुझे क्यूँ बचाया ?' उसकी निश्छल आँखों में बेबसी छलक पड़ी !

अनायास पास आकर तमसा ने उसे छाती से लगा लिया और कहा, 'अस्पताल भी वही ले गया न तुझे ?—'माँ के स्वर में स्पष्ट ही परिवर्तन था 'देख बेटा, तू नहीं जानता, पर मैंने दुनियाँ देखी है। गरीबी से बढ़कर कोई मजबूरी नहीं होती। संतान की मजबूरी भी उससे बड़ी नहीं है ! चल उठ, खाना परोस दूँ। देर हो रही है !' और एक लम्बी साँस उसके मुँह से निकल गई।

'माँ···तू रो रही है ?'

'जीवन भर रोती रही हूँ ! इससे बुरा भाग्य माँ का और क्या होगा कि अपनी गरीबी की अनुभूति अपने बच्चे से भी नहीं बचा सके !' और उसका कंठा-वरोध हो गया तो वह उठ गई।

'तुझे ठीक न लगा हो तो जाकर कल उनके रुपए लौटा दूँगा।'

उत्तर में तमसा केवल मटके में से गिलास में पानी भर कर खाना परोसने लगी।

उस दिन की तरह आज माँ ने खाने से सत्याग्रह नहीं किया। इच्छा जताकर यदि रुठने जैसी मनोस्थिति उसकी होती तो सत्यप्रकाश उसे मनाकर कुछ सन्तोष प्राप्त कर सकता। दोनों ने चुपचाप भोजन शेष कर लिया।

साहस करके सत्यप्रकाश ने कहा, 'माँ, नाराज न हो तो एक बात पूछूँ ?··· उन टीचर को तू जानती है ?'

'मैं ?–मैंने क्या कभी उन्हें देखा है ?–सुना ही तेरे मुँह से है !'

'सच क्या वे इतने बुरे हैं माँ ?'

'जो कुछ तू बताता है उससे भला तो नहीं लगता !'

'क्या पान खाता है और···सिगरेट पीता है इसलिए ?'

'अच्छा, सिगरेट भी पीता है वह ?' सत्यप्रकाश और सकपका गया ! माँ ने कहा, 'घर पर वच्चे माँ-बाप का अनुकरण करते हैं, और स्कूल में अपने टीचर का ! अगर टीचर सिगरेट पीता हो तो क्या उसके विद्यार्थी खुद सिगरेट पीना नहीं सीख लेंगे ?–अच्छा, तू सिनेमा रोज क्यों जाता है ?'

'एक तो अखवार की बंधी है, और भीड़ मे खुदरा अखबार भी बिक जाते हैं !'

'तेरा यह टीचर भी रोज वहाँ जाता है न !–रोज क्यों जाता है ?'

'कहते थे, वहाँ कॉफी हाउस में कॉफी अच्छी मिलती है !'

'शहर में और कई जगह कॉफी मिलती होगी बेटे। जो रोज बेमतलव सिनेमाघरों का चक्कर लगाते हैं, वे आवारा और गुन्डे ही होते हैं, वहाँ आने-जाने वाली महिलाओं को ताकने और छेडने वाले, या फिर चोर-गिरहकट, मँगरू-जैसे निठल्ले लोग !–भले लोग अगर कभी उधर जाते हैं तो खेल देखा और सीधे घर की राह ली। जैसे तेरी जेब से पैसे निकाल लिए न···'

'पर वह तो मँगरू था माँ !–उन्होंने तो आकर मुझे बचाया था !'

'तू अभी समझेगा नहीं सत्य, ये सफेदपोश सभ्य दीखने वाले लोग ही चलती लड़कियों को घूरते हैं और अकेली-दुकेली देखकर छेड़ने भी लग जाते हैं। तूने ही तो बताया था उस दिन कि वे पहले से टिकट खरीद कर किसी लड़की की राह देख रहे थे, जबकि वही लड़की सीधे आकर तुझसे ही टिकट खरीद गई ! क्यों उस लड़की ने इनकी खोज नहीं की, अगर पहले से इनमें बातचीत हो चुकी थी ?—क्या ऐसी मुलाकात में कुछ गोलमाल नहीं दिखाई देता ?'

सत्यप्रकाश को सिनेमा की वह पहली रात स्मरण हो आई औन वह विचारों में डूव गया-सा लगा। पर तमसा ने अधिक तूल देना उचित नहीं समझा। वच्चों में यों ही तो व्यर्थ कुतूहल बढ़ता है। बात बदल कर वह बोली, 'तेरह बरस हुए,

अठारह बरस की मैं, तब लड़की ही तो थी। मैं ही जानती हूँ, तुझे छाती से लिपटाए किस तरह फूँक-फूँक कर कदम रखने पड़े हैं मुझे! किस तरह लम्पट पुरुष नारी की बेबसी का लाभ उठाता है। अब तुझे समझना चाहिए मुन्ने! किसी बदनाम, आवारा, अनजान पुरुष के साथ तुझे देख कर लोग सहज मेरे बारे में कुछ अनर्गल सोच बैठें तो मेरे लिए तो मुँह दिखाना कठिन हो जाएगा! तुझे हर किसी से मेलजोल नहीं बढ़ाना चाहिए बेटे!'

सब कुछ समझ नहीं पाया सत्यप्रकाश, किंतु किसी अज्ञात भय से आक्रांत होकर उसने कहा,

'ठीक है माँ, अब मैं उनसे मिलने की कोशिश नहीं करूँगा—अपना स्कूल ही कौन-सा बुरा है। आखिर अब तक उसी में तो पढ़ता आ रहा हूँ—पर उनके पैसे?'

'उनका नाम—ठिकाना बता देना! अपने सेठजी से कहकर उनके पास भिजवा दूँगी!'

'नाम-ठिकाना?' सत्यप्रकाश ने कहा, 'वह तो मालूम नहीं माँ। सिनेमाघर कल जाकर लौटा आऊँ—शाम को वहाँ मिलने की बात तो उन्होंने कही थी!'

'अभी रहने दे! तेरे घाव जब तक ठीक न हों अभी बाहर जाने की जरूरत नहीं है। कल मैं ही सेठजी से कहकर किसी के हाथ अखबार वाले के और सिनेमा के टिकटबाबू के पैसे भिजवा दूँगी। तब तक तेरे उन टीचर के रुपए लौटाने का भी कुछ प्रबंध करना होगा न!'

सत्यप्रकाश केवल माँ का मुँह ही ताकता रहा तो तमसा ने कहा, 'चल सो अब! कल जाकर एक बार रहमत चाचा से भी मिलना पड़ेगा। उनसे कहूँगी तो शायद मँगरू से पैसे दिलवा दें!'

'पैसे तो मँगरू से भी पुलिस ने जपत कर लिए न!'

'तो भी पास-पड़ोस में रहकर आपस में वैर नहीं करना चाहिए! रोज का तो साथ उठना-बैठना ठहरा। फिर उमर में ही वह तुझसे कितना बड़ा है?'

'नहीं माँ, अब ऐसे आवारा लड़के के साथ मैं उठूँ-बैठूँगा नहीं!' उसने बुद्धि का परिचय देना चाहा।

'पड़ोसी को इतनी सरलता से कहीं टाला जा सकता है? ले बिछौना हो गया।'

'तू नहीं सोती माँ, तो मैं भी कुछ पढ़ लूँ?'

'कल इतवार है। जल्दी उठा दूँगी, और फिर दिनभर खाली रहेगा न! चल, मैं भी सोती हूँ!'

सत्यप्रकाश की और एक दुनिया है उसके पास-पड़ोस के साथियों की। वे उसके स्कूल के साथी नहीं हैं। गरीबों के लिए स्कूल एक आशायस है। फीस न लगती हो और करने को कुछ काम न हो तो बच्चों को स्कूल भेजा जा सकता है, पर उसमें खपाए समय और साधनों की क्षतिपूर्ति शेष में निठल्ली आवारागर्दी से की जाती है। गरीबों के बच्चों को जीवन के क्षेत्र में ऊँचे संस्कृत स्तर का साथी नहीं मिल पाता, बल्कि ऐसे साथी मिलते हैं जिन्हें स्कूल का मुँह देखने की न सुविधा होती है न इच्छा। ऐसे ही साथी सत्यप्रकाश को पहले अपने घर के आस-पास और कालांतर में सिनेमाघरों के इर्द-गिर्द अखबार या टिकिट बेचने के सिलसिले में आ जुटे थे। रहने के लिए अच्छे परिवेश और वातावरण चुनने के लिए अच्छा खासा किराया चुकाने की क्षमता सत्यप्रकाश में नहीं थी।

मिसरीलाल के घर के सामने दूसरे दिन सड़क पर ऐसे ही साथियों की चंडाल-चौकड़ी किसी के इंतजार में खड़ी थी। अहमद बुरी तरह हाँफ रहा था। आदेश के अनुसार वह दौड़ा-दौड़ा गया था और दौड़ा-दौड़ा ही आ रहा था। लम्बे साँस लेता हुआ बोला, 'मिसरी दादा, मँगरू भइया घर पर तो नई है!'

'बुढ़ऊ तो था न! विससे नई पूछा?' जमना ने कहा!

'उन्ने किया कि वो तो अलसुब ईघर से निकर गया होगा। तबसे फिरच ई नई!'

'अरे गया होगा वो स्साला उस भमकोठी के पारले पे। झूठ निकले तो मूँछ मूँड़ देना। रात मार मार कर स्साली पुलिस ने भुड़ता बना दिया था न। अब टाँगों में दुम दवाए दारू पीकर पिलंग पे खुसकट पड़ा गम गलत कर रिया हैगा स्साला!' मिसरी लाल ने कहा।

'गम गलत करना होता तो रात कोई थाने से छूटते ई नई पौंच जाता हुवाँ? कदी मल्लम-पट्टी कराने असप्ताल तो नई गिया है?' धौली उस्ताद बोले!

'असप्ताल इत्ती देर थोड़ी लगे उस्ताद!' अहमद ने अपनी जेब से एक अमरूद निकाल कर मुँह से कुतरते हुए कहा। जाति का कुंजड़ा, उसकी माँ हर मौसिम में अमरूद के बगीचे खरीद कर गुजर करती है।

जमना ने कहा, 'उस्ताद, तुम विस भमकोठी को जानते नई। भट्ठी है साली भट्टी, दिन-रात भभकती ई रेट्ठ' वे है, दिल कदी भरता ई नईं रंडी का! मिसरीदादा भी गए थे न हुवाँ! पूछ लो!'

'सो क्या पीछे हटा था मैं-वो भी याद करेगी कि किसी दिलफेंक से पाला पड़ा था। पर है तो स्साली खुसट्टी। इस एमद्या के बरोबर की तो एक छोरी ई है उसके, एकाध बरस छोटी हो! अलबतता उसका चक्कर हो तो कोई लगाए! इस खुसट्टी को कौन पूछे? ये मँगरू ई भला उस बुढ़िया को।'

'उस छोरी के तईं अपनी सुपारश करदे नी यार !' अहमद बोला, 'अल्ला कसिम, तुम सबके हिंया एक-एक टीफरी (टोकरी) नइ रसाण के जाम्फरो (अमरूद) का तोफा पौंचा दूँगा !'

'ये मुँह और मसूर की दाल ! स्साले, काँच में कभी चौखटा देख्या है ?' जमना ने कसा !

'अपनी निस्पत (रिश्वत) अपने तईं रख कुंजड़े' ! मिसरी ने कहा 'देख्या नईं तब तक ई डींग मार ले। इत्ते फर्राटे से गिटपिट बोलती है कि स्साले की बोलती बन्द हो जाएगी। इंग्रेजी इस्कूल में पढ़ती है साली—पर माँ की कसिम, चीज हजारों में एक है दोस्त ! पट जाए तो बेड़ा पार समझ एक ई तो औलाद है। सुसरी माँ की सबरी जैदाद की मालिक होगी !'

जमना बोला, 'मौके पे तो साला मँगरू ई रे' वे है, पर वो तो विस भम-कोठी में ई रम रिया है। वो स्साली मौका ई नईं देती होयगी !'

मुँह से कच्चे अमरूद को थूकते हुए अहमद ने कहा, 'पर मँगरू भइया से जोड़ी कैसे बनेगी ? उम्मर से बाप के बरोबर नईं लगेंगे ? तुमसे तो उम्मर में बड़े हैं न मंगरू भइया ?'

मिसरी को संबोधन था, सो वही बोला, 'हाँ मेरे बरोबर ई समझ !'

धौली पहलवान ने कहा, 'तुम तो साले छोकरियों की बातें करने लग गए। अपन ये बातें नईं सुनते। तुम साले, सब जनखे हो। चले तो थे बदला लेने की बात करने ! जबकि खून खौलना चहिए था, सालों की मुँह से लार टपकने लग गई है। देख, जय बजरंग बली की, अपनी तो सीधी दो टूक बात है। पुलिस को तो दूर से सलाम है अपनी। उस मास्टर के बच्चे का ठिकाना देख आया है न मिसरी ?

'हाँ उस्ताद ! रात ताँगे के पीछे ठेट उसके घर तक चला गया था !' मिसरी ने कहा।

'और ये सत्परकास्या तो उस बीसाजी की चाल में ई रहता है न ? अरे उस मच्छर के वास्ते तो जमना, तू काफी नईं है ? पर मिसरी दादा, इस छोरे का क्या कसूर है ? इसके पीछे पड़ने से मिलेगा क्या ? बाबाजी से भिड़कर अपने ई बदन में राख क्यूँ लगवाते हो ?' धौली उस्ताद बोले।।

'अरे, विसकी वजे से ई तो पुलिस ने मँगरू की मरम्मत की है उस्ताद ! ये तो मौका निकर आया और हम भाग निकरे। नईं हमेरी सबकी चटनी बन गई होती !' जमना बोला।

'मैं कोई उसका पकस नईं ले रहा हूँ रे ! पर तूई बोल, पुलिस क्या उसने बुलाई थी ?'

मिसरी ने कहा, 'बात तो ठीक कहते हो उस्ताद ! बल्कि अपनी सल्हा मानो तो इस साले सत्परकाशिए ई को क्यूँ नइँ पटाया जाय। पढ़ा-लिखा भी तो है थोड़ा-भौत स्साला !'

अहमद बोला, 'हौर विसकी माँ भी साली हजारों में एक है ! देख ले तो गस खा जाए कोई !'

'अमरूद कुतर अमरूद साले कुँजड़े !' मिसरी बोला।

'ये मासटर का बच्चा तो रोज सनीमा के चक्कर लगाता हैगा न ?' धौली उस्ताद ने पूछा !

'जाता तो रोज है स्साला, पर हुवां काम नइँ बनेगा उस्ताद ! कित्ती भीड़ रे'ती है हुवां ? और पुलिस भी तो बनी इँ रे'वे है स्साली विघर ! निसा-खातिर की जगै तो बस, विसके घर की तरफ ई है, नई बस्ती में मकान भी दूर-दूर फैले हैंगे, और भागकर छिप जाने के लिए गलियां भी स्साली कम नइँ हैं ! रात बरात तो चिड़े का पूत भी विधर नइँ कूंकता, पुलिस की तो बात ही क्या है !'

अहमद बोला, 'हौर एक बात बताऊँ मिसरी दादा ?—रैमत चाचा के हियाँ आज सुबे सत्परकाशिये की माँ गई थी, वो ई बता रहे थे ! कह रहे थे कि आपस में झगड़ा क्यूँ करते हो ?'

'तो मँगरू से कहकर ई पटाया जाए न सत्परकाश को। उसके साथ रहकर वो उस खुसट्टी की छोरी को मजे में पटा लेगा !' मिसरी बोला। 'पर अभी थोड़ा धीरज रखना होगा धौली उस्ताद ! मँगरू से सल्हा–मस्विरा किए बिना तो आगे अभी कुछ नहीं किया जा सकता। अपनी समज में तो इस सत्परकाश से अभी बिगाड़ना अच्छा नइँ है ! बखत-बे-बखत काम भी आ सकता है स्साला !'

धौली उस्ताद बोले, 'चिकना-चुपड़ा वो, काम तो क्या खाक आ सकता है, पर अपनी बला से ! अपन तो अखाड़े के आदमी हैं, जय बजरंग बली की। अपने को किसी का अप्सोच नहीं है। अपन तो चल दिए अब। जोर करने का बखत हो गया है। परे को हट रे कुँजड़े, स्साला शुकन बिगाड़ेगा ! जय बजरंग बली की !' और अहमद को धक्का देकर जो धौली उस्ताद चले तो अहमद गिरते-गिरते बचा।

जमना ने कहा, 'तो चलें न मिसरी दादा अपन भी, पारले की तरफ ई चलें। कदी मँगरू भइया विधर ई हुए तो विधर ई कहीं अड्डा जमाएँगे !'

'तू जा, मैं जरा बुढ़ऊ को देख आऊँ ! तब से खों-खों कर रिया होगा। पानी तो आखिर स्साले को मरने पर भी पिलाना हैगा, थोड़ा-भौत जिनगानी में ई पिला दूं ! मेरी वहीं राह देखना !'

'हौर कदी चम्पा बेन आ टपकी इस बीच तो क्या संझा तक राह देखें ?' अहमद ने पूछा।

'चम्पा वहन आ गई तो उसे चरका देना तो अपने लिए यूं समज !' और मिसरी ने चुटकी वजा कर वता दिया 'तू फिकर मत कर ! मैं अधघंटे में ई पहुँचता हूँ हुवाँ !'

'मैं जास्ती देर नहीं ठै, र सकूँगा मिसरी दादा । माँ ने बगीचे जाकर सूड़े तोड़ने की कई है !' अहमद बोला !

'साले से मक्खी तो उड़ती नइँ और वगीचे में सूड़े उड़ाएगा ! कह दिया, न आऊँ तब तक वहीं राह देखना । मँगरू वहाँ हो या न हो !' और मिसरी लाल विना जवाव की राह देखे अपने घर की ओर मुड़ गया तो जमना और अहमद भी सड़क पर आ लगे !

३. क्षितिज के संकेत

सत्यप्रकाश ने एक्सेलशियर सिनेमा को अपने मन से एकदम विदा दे दी। अखबार तो बेचना ही है, न बेचे तो काम कैसे चले ? अगले बृहस्पतिवार से उसका स्कूल भी खुल जाएगा। महाराजा हाई स्कूल का सपना सपना ही रह लिया। सपने सच होते ही कहाँ है ? गए कुछ दिनों का आशा-निराशा का व्यापार, धूपछाँह का खेल भूल जाने में क्या कठिनाई होगी ? लगभग तीनेक रुपए तो अब तक एकत्र हो ही गए हैं। दस रुपए हो जाएँ तो एक दिन उनके स्कूल जाकर ही महेश्वर का कर्जा चुका आएगा !

उस संध्या को हाथ में अखबार उठाए डीलक्स सिनेमा की भीड़ में जब वह 'ताजा खबर', 'हिन्दी-अंग्रेजी के अखबार' चिल्ला रहा था कि पीछे से किसी ने आकर उसके कन्धे पर हाथ रखा और वह मुड़ कर पीछे देखे उसके पहले ही किसी की हथेली उसकी आँखों पर फैल गई ! सत्यप्रकाश ने हाथ छूकर कहा, 'छोड़ यार, ठोकर खाकर गिर पड़ूंगा ! सुरेन्द्र है न ?'

जवाब में एक टिचकारी के साथ हँसने का स्वर सुनाई दिया तो उसने एकाध और नाम गिना डाले। जब वह ऊब कर कहने जा ही रहा था कि गधे का बच्चा है, तभी मन में क्या आया कि उगल बैठा, 'ओह, सरजी हैं ! छोड़िए सर ! इतने दिन नहीं मिल पाया इसकी माफी चाहता हूँ !'

और उसकी आँखें छूट गईं। पीठ पर एक धौल के साथ सुनाई पड़ा, 'अरे सरजी के बच्चे, सर नहीं, तेरा सर ! तेरे सरजी का बाप मैं हूँ !—और जा माफ किया !'

सत्यप्रकाश ने मुड़ कर देखा, 'अरे मँगरू दादा, तुम ? मैं समझा, मेरे टीचरजी हैं !'

'वाह फटीचर, सपने में भी वो टीचर ई नजर आता है न ? साले का नशा नइं उतरा अभी तक ?'

'यहाँ भी लड़ना चाहते हो क्या मँगरू दादा ?'

'तुझसे लड़ूंगा ! दम-खम है तुझमें ? पिद्दी और पिद्दी का शोरवा ! पर देख, इधर भी विलैक करेगा तो नईं चलेगा, पहले ई खबरदार कर देता हूँ ! इस जोम में मत रहना कि पुलिस से डर गया हूँ !'

'वड़े तीसमारखाँ बन रहे हो ! उस दिन तुम्हारे और वे चेले-चमचे भी तो आ गए थे ! होते अकेले तो देखता ! हो इरादा तो आज भी देख लो। वस, किसी चेले को मत वुला लेना !—रहा सवाल ब्लैक का, तो सच बात यह है कि टिगट का धन्धा ही अपन ने छोड़ दिया ! वस, ये अपने अखबार जिन्दावाद ! यहां भी अगर अपना हक समझते हो तो कल से यहाँ भी नहीं बेचूंगा। लड़ना-झगड़ना मुझे पसन्द नहीं है। फिर तुम तो पुराने यार रह चुके हो !'

'वड़ा यार बनता है साले। उस दिन तो पुलिस में फँसा दिया न !'

'मैंने फँसाया ?—मैं तो जमीन्दोज था। मुझे क्या मालूम, कब किसके वुलाने से पुलिस आई ! एक तो मारपीट कर तुमने मुझ गरीब का पैसा हड़प लिया और ऊपर से यह तोहमत ?'

'तो उल्लू के पट्ठे, पैसा क्या हमेरे पास रहा है ? पुलिसवालों को जानता नईं तू ! स्सालों ने एक-एक पाई तो सटक ली ! और तुझे लौटाया नईं ? माँ के भड़वों ने मुझसे तो ये ई किया था !'

'मैं थाने गया ही कब ?— यहाँ से तो मैं सीधा अस्पताल गया था !'

'तो घुसा कुछ भेजे में ? पुलिसवाले तो लम्बरी उचक्के होते हैं न ! मुझसे पाई-पाई सटक ली देने को तुझे और धर दबाई अपनी ही टेंट में ! हजम कर गए साले और डकार भी नईं ली।'

'इसीलिए तो कहता हूँ कि अकल के पीछे लट्ठ लिए घूमने से न तेरा कुछ लाभ होगा न मेरा। झगड़ा लेंगे और मुफ्त में हाथ-पैर तुड़वा लेंगे ! यह देख पैर में अभी तक निशान है।'

'मरद बच्चे कदी डरते हैं इत्ते से ? घुटने छिलना तो मरदपने की छाप है गुलखेरू ! ले मिला हाथ। आज से सब दुसमनी माफ।' और उसने जोर से सत्य-प्रकाश का हाथ झकझोर दिया !

'दुश्मनी अपने तो कभी पाली ही नहीं दोस्त !' सत्यप्रकाश बोला, 'पर यह पैसे की चपत अपन को बहुत महँगी पड़ती है भाई ! पाँच कल्दार तो टिकिट के ही थे, अखबारों के अलग से। तुझ जैसे रईस तो हैं नहीं। उधार लेकर किसी तरह काम चलाना पड़ा है।'

'सच पुलिस ने नहीं लौटाए वे पैसे ?— अच्छा ले,' और जेब में से एक पाँच रुपए का नोट निकाल कर सत्यप्रकाश की ओर बढ़ाते हुए कहा, 'पर अभी तो ये

पाँच का पत्ताई है पाकिट में। स्साली अपनी भी तो कड़की चल रही है। पर फिकर मत कर। कुल कित्ते थे ?– दसेक से की ज्यास्ती थे क्या"

'मैंने गिने ही कब थे ? अलबत्ता कुल जमा सात रुपए छह आने दूसरों को देने पड़े थे !'

'तेरा मुनाफा भी तो होगा न ! एकाध दिन में और एक हरे पत्ते का बनो-बस्त कर दूंगा, तब तो बस ? तू भी क्या याद रखेगा किसी दिलफेंक से आसनाई करी थी। अरे, अपनी चौकड़ी में जमा कर ! पाँच-दस तो हाथ की सफाई में ई बन जाते हैं साले ?– और ये लोट-फोट पाकिट में मत रखा कर ! अपन जैसों की नजर स्साली हुवाँई टपकती है। ले, ये रुमाल ले, बाँधकर टेंट में लपेट ले।' और जेब से एक नया रेशमी रुमाल लेकर सत्यप्रकाश को थमा दिया।

'अरे, इसकी तो गंध से ही जी मिचलाता है यार। ऐसी चीज अपने को नहीं फबती भाई !'

'अरे बन्दर, तू क्या जाने अदरख का सुवाद ! जानता है, नीरा मेम साब का तुहफा है ये। मुकद्दर वालों को ई मयस्सर होता है। चल आज तुझे उधर की सैर करा लाऊँ !'

'नीरा मेम साब ?–

'अपनी आसना है यार ! मिसरी, जमना, धौली उस्ताद, सब जानते हैं। स्साले नाक रगड़ते हैं कि एक झलक विसकी और विसकी छोरी की दिखला दूं। हुसन का वो भी एक कमाल है। देखेगा तो स्साले, गस खा जाएगा !– अखबार तो तेरे बिक ही लिए हैं। फिर क्या है ! इस्कूल जाती है वो भी। और इत्ते फर्राटे से इंगरेजी झाड़ती है साली कि अपने तो मगज में बैठता ई नहीं। कसम खुदा की, तू उसे पटा भी लेगा !'

'न तो अपने को गश खाना है मँगरू भैया और न किसी को पटाना ही है ! तू जा !'

'वाह बेटे ! यारी करी है, मजाक नहीं। चलेगा कैसे नईं ? धक्के देकर ले जाऊँगा साले को। और इसक नईं लड़ाएगा तो जिनगानी क्या खाक जिएगा ?– चल !' और उसने हाथ पकड़ कर सत्यप्रकाश को खींचा। सत्यप्रकाश को निरुपाय उसका साथ देना पड़ा !

'मिसरी-फिसरी सब साले भोंदू हैं, और वो पढ़ी-लिक्खी ! विनकी सकल देखकर ई भड़क जाए ? तेरी कुछ सान-सकल तो है ! और पढ़ालिक्खा भी है ! स्साली एक ही छोहरी है, नीरा मेम की सबरी जैदाद की मालिक ! फिर तू ई साले कदी आँख भी नईं मिलाएंगा ! ले, हो जाए एक कस इसी बात पर !' और उसने जेब से एक बीड़ी निकाल कर सत्यप्रकाश की ओर बढ़ाई।

'नहीं मँगरू भैया, मैं बीड़ी-सिगरेट नहीं पीता !'

'उस दिन तो पी थी स्साले ! बनता है हमसे ई ।'

'वह भी तो जमना ने जबर्दस्ती पिला दी थी । बड़ा जी मचलाता है यार, चक्कर भी आते हैं ?'

'चक्कर तो वो आते हैं जैसे आसमान में उठते जा रहे हो प्यारे ! अच्छी बीड़ी अपने जैसों के लिए । तू तो रईस है न, किलारा से यारी गाँठने वाला । ले ये सिगरेट ले !' और उसने दूसरे जेब से एक सिगरेट पैकेट निकालकर बढ़ाते हुए बोला, 'एक ही रह गई है साली ! परवाह नइँ प्यारे, नोरा मेम साब के हिंया ब' तेरी मिल जाएंगी ! तू पी । अपनी तो ये बीड़ी ही भली ।'

मँगरू ने कहा तो सत्यप्रकाश ने सिगरेट मुँह में फँसा ली । जलाने को माचिस नहीं थी । दोनों मित्र आगे बढ़ने लगे । इस ओर बस्ती विरल है, दूकानें हैं पर अलग-थलग । कुछ दूर बढ़ने पर एक पान की दूकान आई । आगे बढ़कर मँगरू ने लटकती रस्सी के जलते सिरे को छूकर अपनी बीड़ी जलाई । सत्यप्रकाश ने और भी आगे अँधेरे में जाकर अपनी सिगरेट मँगरू की बीड़ी से जला ली । जलाते समय एक कश अवश्य लिया, पर वह उसके हाथ में ही रही ।

'ये हाथ में ही क्यूँ रख छोड़ी है ! अगरबत्ती समझ रक्खी है क्या ?'

'अपने को रास नहीं पड़ती भाई ! जी मचल रहा है ।' और सत्यप्रकाश ने सिगरेट फेंक दी !

'अरे गुलखेरू ! फेंक दी ?– गोल्ड फिलेक थी साले । इत्ता भी नइँ सीखा तेरे विस फटीचर से ?'

'फटीचर कौन ?'

'और कौन होगा । वोई तेरा टीचर । मालगाड़ी के इंजन जैसा फकाफक नहीं फूँकता है सिगरेट ?'

'तुझे कैसे मालूम कि वह सिगरेट पीता है ?' सत्यप्रकाश ने पूछा ।

'अपने को भौत मालूम है ! उड़ती चिड़ी नइँ भाँपते हैं ? नाम-पता तक सब मालूम किया हुआ है । ताँगे में चढ़कर नइँ गया था उस रात तू विसके साथ ? तुझे घर पर छोड़कर फिर वो गया अपने घर । तू यार हो गया अब, तुझसे क्या छिपाना ! जमना हुवाँ ई था । पुलिस देखकर साला भीड़ में छिप गया था । फिर जब तुम लोग पुलिस को चरका देकर अस्पताल गए तो वो भी साइकल लेकर बरोबर तुमेरा पीछा करता रहा । नई बस्ती में है साले का घर ! महेस्सर है न नाम ?'

'उसके घर का पता मुझे नहीं मालूम ! पर जमना ने उसका पीछा क्यूं किया था ?'

'पीछा नईं करेगा ? अपना यार जो ठहरा ! मुसीबत में साथ नईं दे वो क्या दोस्त। आखिर विसका पता लगाना लाजिमी था। साला कल से कोई नई आफत ई खड़ी करदे। जान रखना अच्छा है। पर सप्पू, तुझ पर वो मेहरबान कैसे हो गया रे ?'

'मेहरबान ?—मैं तो उसे ठीक तरह जानता भी नहीं ! हाँ, अखबार जरूर वेचा था उसे दो-एक बार। नहीं तो अपने कौन से सुरखाव के पर लगे हैं ?'

'तेरे नईं तो तेरी माँ के तो हैं !' मँगरू ने बीड़ी का कश खींचते हुए कहा।

'मँगरू !' और सत्यप्रकाश ने मुड़कर मँगरू का कंधा पकड़ लिया। अगर मँगरू बेशर्म होकर खिलखिला न पड़ता तो सत्यप्रकाश उसे मार भी देता ! मँगरू बोला, 'अरे, गुस्सा हो गया ? हमेरे तो जैसे माँ साली है ई नहीं। विसके तू सुरखाब के क्या हवाई जहाज के पंख लगा दे साली के। अच्छा-अच्छा, गुस्सा थूक दे और माफ कर दे ! कर दिया न ?' और उसने सत्यप्रकाश के गले में हाथ डाल दिए।

सत्यप्रकाश ने कहा, 'मँगरू अपनी माँ की तरह सब की माँ मत समझना। मुझे कुछ भी कह दे। पर मेरी माँ के हक में कुछ भी कहेगा तो अच्छा नहीं होगा। पहले से कहे रखता हूँ।'

'अरे यार, कुच्छ नईं कहूँगा। बस ? माँएँ साली होती ही ऐसी हैं। मूड खराब कर देती हैं। जहां अपन जा रहे हैं, हुवाँ मूड ठीक रखना भोत जरूरी है। वो देख, सामने एमदाबादवाला बिल्डिग है, हुवाँई चलना है। अब ये रोनी सूरत ठीक करले। किलारा का चेहरा क्या है बिजली का बलब है और कसम खुदा की, तू भी काँच के मानिंद है। चमक नईं उट्ठे तो नाम बदल देना। ये गुस्सा जो है न, वो स्साला गरद है जो चेहरे पे छाकर मैला कर देता है। मुसकरा अब !—वो भी क्या समझेगी कि हमेरा भी कोई यार है !'

नियोन-लाइट के जलते-बुझते, लाल-नीले अक्षरों में 'वीनस ब्यूटी पार्लर' नाम का बोर्ड देख कर ही सत्यप्रकाश की छाती धकधक करने लगी और मँगरू के पीछेपीछे जब वह उसकी सीढ़ियाँ चढ़ने लगा तो पैर भी काँपने लगे। कहाँ आ गया वह ?—यह क्या पहचानी हुई भूमि है ? घर, स्कूल, बाजार, उसके पैर इनकी मिट्टी की अनुभूति ही नहीं, गंध भी पहचानते हैं, पर यहाँ तो पैरों तले धरती ही नहीं लगती। डर लगता है पैर कहीं किसी अनजान गहराई में न धँस जाएँ ?—पैरों पर चल रहा है या उड़ रहा है पंखों पर ? नियति की जेट उसे किस अज्ञात में धकेल रही है ?—आगे बढ़ रहा है या पीछे हट रहा है ? यह लक्ष्मण-रेखा पार करनी ही होगी क्या ? सरकती जा रही है आगे ही आगे, दूर, दूरतर, क्षितिज की ओर, संकेत करती हुई किसी अलक्ष्य में।

मँगरू ने जब एक कमरे के बंद दरवाजे को थपथपाया तो भीतर से खोलकर बाहर झाँकनेवाली एक शोडषी कन्या थी, देखकर कहती हुई, 'हैलो अंकल, आप हैं ? मम्मी को ढूँढ़ रहे हैं न ? पर वह तो अभी ऑफिस से लौटी नहीं !—एंड—' सत्यप्रकाश मँगरू के पीछे अपने में सिमटा-समाया मंत्रकीलित-सा खड़ा था, उसी की ओर निर्देश करते हुए लड़की बोली, 'एंड हू इज दिस यंग चैप विथ यू, आइ मीन, यह कौन है आपके साथ ?'

सत्यप्रकाश और एक कदम सिमिट आया। मँगरू ने पीठ पीछे हाथ फैला कर उसे बाहर धकेलते हुए कहा, 'यी है हमेरा जिगरी यार सत्परकाश ! तुम्हारी यह गिटपिट हमेरे भेजे में नहीं बैठती न, इसलिए इसे ले आए हैं। इस्कूल में ये भी इंगरेजी पढ़ता है। क्यूँ रे, कौन सी किलास है रे ?'

'इस साल नाइन्थ में जा रहा हूँ।' सत्यप्रकाश ने उठी हुई गर्दन भी झुका ली। पर उसका मन उछल रहा था। वे लोग सच ही कह रहे थे, अगर यह वही लड़की हो। देखे बिना इसकी खूबसूरती का अन्दाज भी नहीं लगाया जा सकता। उसकी स्वयं की माँ के सौंदर्य की कहीं तुलना नहीं है, किन्तु इस सौंदर्य में जो एक अबूझ लुनाई है वह तो उसने अन्यत्र कहीं देखी नहीं। उम्र उसी की होगी, चेहरे से ही साफ है, पर शरीर उसका भरा हुआ है, जो ढीले गाउन में भी छिपता नहीं। कटे हुए घने सुनहरी चिकने बाल कंधे पर लहरा रहे हैं। गुलाब के रंग के भरे हुए अधर, सीधी-पतली सुंती हुई नाक, और क्षीण बाँकी भ्रू रेखा के नीचे फैली हुई आँखें, जिनमें काली पुतलियाँ मछली की तरह मचल रही हैं। देखने को आँखें बारबार उठना चाहती हैं, पर वह उठा नहीं पाता।

'वंडरफुल् !' लड़की कह रही थी जवाब में, 'मेरा भी यह जूनियर केम्ब्रिज का साल है। क्या तुम मुझे इंडियन लैंग्वेज में हेल्प कर सकोगे ?'

पहली ही बार तुम ?—लड़की बड़ी उद्धत लगती है, मतलबी भी। कुछ स्वाभिमान जतलाते हुए सत्यप्रकाश ने कहा, 'वक्त मिले तब न। पढ़ना मुझे भी तो कम नहीं है अगर फर्स्ट आना चाहूँ।'

'आइ विल टेल ममी। हम लोग साथ बैठकर स्टडी कर लेंगे। क्यों अंकल ?—और आपने कभी कहा ही नहीं।'

'कहता कैसे बेबी ! हमेरा ये दोस्त है तो लड़का, पर लड़कियों से ज्यास्ती सरमीला है !' सत्यप्रकाश और भी कट कर रह गया। उसने मँगरू को कहते हुए सुना, 'ये ही ठीक रहेगा। तुम मेम सा'ब से बोलना। इसका क्या है, घर पर नहीं, यहीं पढ़ लेगा। तुमेरे यहाँ जगह भी तो भौत है।'

'बाहर क्यों खड़े हो अंकल ?—भीतर चल कर बैठो न। मम्मी के भी आने

का टाइम तो हो रहा है।' और दरवाजा छोड़कर उसने भीतर आने का संकेत किया।

'चल रे सप्पू, ये ही ठीक है। राह की देखनी है तो भीतर बैठकर ही देखें।' मँगरू भीतर घुसा तो सत्यप्रकाश भी उसके पीछे पीछे भीतर चला आया। दिल उसका वड़े जोर से धड़क रहा था। समझ भी नहीं पा रहा था कि आखिर उसका मन चाहता क्या है ?—कभी सोचता है कि भीतर जाकर बैठने की जरूरत ही क्या है, जवकि उधर लाउंज में बैठकर भी राह देखी जा सकती है। दूसरी तरफ, यह लड़की, जाने क्यों खींचे जा रही है उसका मन। डर भी लग रहा है, जाने क्या न हो जाए। नहीं, भय नहीं। मँगरू ने कहा था न, लड़कियों से भी ज्यादा शर्मीला, सचमुच शर्म ही तो है। पहले कभी लड़कियों से मेलजोल नहीं किया न। पड़ोस में हैं इस उम्र की लड़कियाँ, काफी मुँहफट भी, और उससे वतियाने के लिए भी उधार खाए बैठी रही हैं। गाहे-ब-गाहे उनसे बोल भी लेता है। पर यह बात दूसरी है। इसका उनसे कहीं मेल नहीं है। मैली-कुचैली ओढ़नी से ढँका उनका घिनाता बदन उबकाइयाँ ही पैदा करता है। कभी कोई स्कूल भी है तो पास बगल के स्कूल में कुल जमा चार क्लास पढ़कर अपना नाम भर लिखना सीख लेती हैं। और यह ? बदन ही से नहीं, सारे कमरे में खुशबू जैसे चूई पड़ रही है। अंग्रेजी वो फर्राटे से वोलती है कि क्या कोई बोलेगा !

कमरा ठीकठाक ही है, किन्तु सत्यप्रकाश के पैमाने से एकदम भव्य ! उसकी तो एक ही कोठरी में रसोई बैठक-स्टोर-सोना-बैठना सब कुछ एक ही है। घर में बिजली भी नहीं। मात्र एक पुरानी लालटेन, जिसकी बत्ती भी नहीं चढ़ती-उतरती। काम एक चिमनी से ही चलाया जाता है। और यहाँ तो कमरा ट्यूब लाइटों से जगमगा रहा है। फर्श पर एक सफेद मोटी दरी बिछी हुई है। कहीं मैली न हो जाए इसलिए चप्पलें उसने देहली में ही खोल दीं, पर मँगरू अपने जूतों सहित ही भीतर चला आया है। उसके जूते उतने पुराने भी नहीं। सामने पलंग पर चटकीली रंगीन चादर बिछी हुई है। इस तरफ तीन-चार कुर्सियों के बीच एक गोल मेज पर कुछ किताबें बिखरी पड़ी हैं। लड़की शायद लिखपढ़ रही थी। मँगरू ने एक कुर्सी की ओर इशारा करके सत्यप्रकाश से कहा, 'ले बैठ यार !' और वह खुद आगे बढ़कर पलंग पर बैठ गया। लड़की कुछ और आगे बढ़ी और कोने वाली कुर्सी दखल करके बोली, 'डोंट फील शाइ वड्डी ! बैठ जाओ !' सत्यप्रकाश बैठा तो, पर और भी सिकुड़ कर !

बोला मँगरू ही, 'आज जबरजस्ती ही पकड़ लाया। पड़ोस की दो-चार खोपड़ी खुजाती घिन्नाती छोरियों में ही हुसन की जैदाद खतम समजे बैठा था घनचक्कर ! अब देख हुसन की परी किसे कहते हैं !'

वेचारा सत्यप्रकाश क्या जवाव दे। हुस्न की जायदाद का तो वह अर्थ भी नहीं जानता, उसकी जीवन में कुछ सार्थकता भी हो यह तो बाद की वात है। जिस जायदाद का थोड़ा-वहुत अर्थ उसे मालूम है उसके लिए संघर्ष से उसे फुरसत ही कहाँ मिलती है ? कैसी फूहड़ वातें कर रहा है यह मँगरू ? क्या यह लड़की उसे भी मँगरू जैसा ही फूहड़ नहीं समझ रही होगी ?

लड़की ने मुस्करा कर कहा, 'उन लड़कियों के जीभ तो होगी न अंकल ?–कान तो इनके भी देख रही हूँ !–डोंच्यू वरी डीयर, लड़कियों से कैसे वात करनी चाहिए, यह मैं सिखा दूंगी !'

'इसे भी कम मत समझना वेबी ! बड़ा घुन्ना है। जरा चोंच खुल जाने दो, फिर ऐसा चहकेगा कि बस।'

'मँगरूदा !' गर्दन झुकाए ही साहस करके सत्यप्रकाश बोला, 'लौट चलो न ! जाने कब तक आएँ वे !'

'अरे तू भी दादा बनाने लग गिया ?' फूहड़ हँसी के साथ मँगरू ने कहा, 'किलारा वेबी ने तो, खैर, उसे वेबी कहता हूँ न, वह अंकल कहती है सो भी कसकता है ! बाप मत बना वैठना कदी, तेरी माँ से यूं ही रू फना होती है अपनी भैया ! और इनको वेबी कहता हूँ सो अपनी खुसी से थोड़ी कहता हूँ, वो तो मेम साहव का हुकुम है। नहीं तो किलारा मेम साहब कहकर पुकारने से ये भी खुस होती ! छोटा है तू, पर कित्ता-सा ?'

लड़की ने तुनुक कर जवाव दिया, 'ठीक से बोलना तो सीख लो अंकल ! मेरा नाम क्लारा है !'

'नाम से क्या भई, अपने को तो तुमेरे से काम है ! और ये स्साली इंगरेजी, और तो सब ठीक है। इंगरेजी रहन-सहन, चाल-चलन, इंगरेजी जनाना-लोक; इंगरेजी सराब, पर ये जवान ?–सुन्ने में भलेई अच्छी लगे पर बोलने में जीभ छटकती ई है !' फिर सत्यप्रकाश की ओर देख कर कहा, 'अरे घबरा क्यूं रिया है पट्ठे। जरा बाहर की हवा भी लगने दे न अपने आपको। देख, किलारा बेबी भी मन ई मन मुस्का रही हैं कि कैसा गावदू है !'

और कहाँ सिमटे सत्यप्रकाश ? कनखियों से देखा उसने, लड़की कुटिल हँसी से दीप्त उसकी ओर देख रही है। दृष्टि पकड़ कर बोली, 'भूख लगी हो तो–दूध लाऊँ ?'

हँसी से दुहरे होते हुए मँगरू ने कहा, 'दूध के लिए तो अब इसकी माँ भी नहीं पूछती होगी। अरे भाई, अब ओठों पर उस्तरा फिराना शुरू कर दे प्यारे, मसें भींगने लग गई हैं तुमारी। दूध नहीं वेबी, चा' पिलाओ चा' और चा' पिला-रई हो तो हमेरे को भी पूछ लो !'

क्लारा उठी तो सत्यप्रकाश की आँखें भी कुछ उठीं। पैरों में ऊँची एड़ी के सैंडल हैं। कितनी ऊँची है एड़ियाँ ?– लगता है लड़की पंजों ही के बल खड़ी है। और चली तो मानो हवा में झूलती हुई लहर की तरह बह गई है। शून्य दरवाजे से उलझी उसकी दृष्ट सुलझ पाए उसके पहले ही मँगरू ने ताना कसा, 'दरवाजे में अब क्या है दोस्त ? पर मान गए, छोहरी फिसल गई है। अब तेरे हाथ है कि चिड़ी को उड़ने नहीं दे !'

'देख बे मँगरू, अब तक लिहाज कर गया हूँ ! ज्यादा वन मत ! अंकल-फंकल कुछ नहीं समझूंगा !'

'अच्छा गुलखेरूजी, अभी से ये हाल हैं ?– पहली मुलाकात है, छिपछिप खड़े हो जरूर कोई बात है।'

'फिर वही बात ?– अच्छा तुम जमे रहो, मैं चलता हूँ !' पर उठकर चल देने का उसने कोई उपक्रम नहीं किया।

'चला कहाँ जाएगा ?– दिल लेके यूँ कोई कदी गिया है ? तेरी कसिम, तू तो साले देख ई नहीं रिया था, पर उसकी आँखें तो तुझसे ही चिपटी पड़ी थीं ! कहता हूँ चिड़ी फँस गई है प्यारे !'

'मैं मार दूँगा ! चल उठ अब यहाँ से !– मुझे घर पर बहुत काम करना है !'

'और ये चा' कौन पिएगा ? अपन ने तो तेरी खातिर कह दिया था, अपना तो हिंया लाल परी का जाम चलता है जाम ! देखना अभी, नोरा मेम साब को आ तो जाने दे ! देखी नहीं न तूने ? अरे वो भी हजारों में एक है। माँ है पर बिलकुल नहीं लगती। बड़ी बहन ही लगे है ससाली। आस्नाई है, पर अपने से आगे नाक पर मक्खी भी नई भिनकने देती !' फिर कुछ पास आकर बोला, 'एक ही धींगरी है साली के, सारी जैदाद की मालिक ! बना रहेगा तो चुटकी में पट जाएगी, और फिर तो वेटे, पाँचों घी में होगी पाँचों !'– बाहर सैंडल खटखटाने की आवाज आई तो पुन: अपनी जगह पर लौटते हुए आहिस्ता से बोला, 'अपने को भूल मत जाना तब ! बड़ी मुसकिल से मना पाया हूँ बेबी, तुमेरे इस सरमीले नौजवान मेहमान को। घर जाकर भौत पढ़ाई करनो है बेचारे को ! अपनी किलास में अव्वल आता है !'

क्लारा लौट आई थी। बोली, 'वंडरफुल ! इट्स सो नाइस ! बट अंकल, चाय के लिए तो मैं कह आई हूँ लेकिन काउंटर पर अब्दुल अंकल आ गए हैं और वे आपको याद कर रहे थे !'

'आ गए अब्दुल मियां ? तब तो भई, चा' तुम्हीं लोगों को मुबारक हो,

अपना पव्वा तो विदर ई जमेगा अब !' और वह उठ खड़ा हुआ तो सत्यप्रकाश भी उठ खड़ा हुआ।

उससे भी जल्दी क्लारा ने एक कदम आगे बढ़कर सत्यप्रकाश का हाथ पकड़ लिया और कहा --

'नो, नॉट यू ! तुम्हें नहीं बुलाया अब्दुल अंकल ने !'

'हाँ हाँ, तुम बैठो सतपरकाश ! डरते क्यूँ हो ? मैं कोई भागे जा रिया हूँ क्या ? हियाई हूँ बाहर, नहीं मानते तो चा' भी पी लूँगा भई ! आ तो जाने दो चा, को ! मैं अब्दुल मियाँ से मिलकर आया !' और वह सत्यप्रकाश और क्लारा को कमरे में अकेला छोड कर बाहर निकल गया !

क्लारा के हाथ पकड़ने मात्र से ही सत्यप्रकाश पुनः अपनी कुर्सी पर बैठ लिया था, किंतु क्लारा तब भी खड़ी ही थी सत्यप्रकाश के पास बगल में ही ! मंगरू के बाहर निकलते ही स्प्रिंग का दरवाजा आप ही बन्द हो गया, तो क्लारा ने मुस्कराकर अपना हाथ सत्यप्रकाश के कंधे पर रखा और कहा,

'क्यों, डर लगता है क्या ?'

'नहीं !' लेकिन सत्यप्रकाश की दृष्टि चेष्टा करने पर भी नहीं उठ सकी !

'तो क्या शर्म लगती है ?—लड़कियाँ कभी देखी नहीं ?'

'देखी हैं !'

'फोटो में न ?' और सत्यप्रकाश के चेहरे को ठोड़ी छूकर ऊपर उठाते हुए बोली, 'मुझे देखो, डरने या शरमाने लायक क्या है मुझमें ?' दोनों की दृष्टियाँ मिली तो क्लारा ने मुस्करा दिया। सत्यप्रकाश भी स्थिर न रह सका, उसके अधरों पर स्मित और आँखों पर पलकें चढ़ गई तो क्लारा ने फिर कहा, 'देखना नहीं चाहते !–क्या देखने में इतनी बुरी हूँ ?'

'नहीं ! आप बहुत सुन्दर हैं !'

'फिर देखते क्यों नहीं ? मैं तो तुम्हें बराबर देख रही हूँ ! देखो।'

साहस करके सत्यप्रकाश ने दृष्टि उठाई। अधरों पर सलज्ज-मुस्कराहट के साथ आँखों में एक विच्छल चमक थी, क्लारा का सारा चेहरा ही चमक उठा और वह बोली, 'हाउ नाइस यू सीम।' और उसकी खुली कुर्सी में उसे सरकने को बाध्य कर बगल में बैठते हुए उसने अपना हाथ उसके कंधे पर फैला दिया– 'डू कम डियर। इट विल वी सच ए फन, आइ मीन, हम मिलकर स्टडी करेंगे।'

सेंट की मीठी खुशबू उसके नाक ही को नहीं, सारे बदन ही को निल्हा गई। उसने कहा—'मेरी अंग्रेजी बड़ी कमजोर है।'

'बट यू आर क्वाइट स्ट्रांग ! तुम मेरी वर्नाक्युलर ठीक कर देना। ओ.

के. ?'—और सत्यप्रकाश के कंधे पर उसके हाथ का घेरा और सिकुड़ गया, क्लारा की हथेली उसके गाल थपथपाने लगी ! सत्यप्रकाश कुछ देखने के लिए मुड़ा तो दोनों के कपोल सट गए ! सत्यप्रकाश के बदन पर पसीना और भीतर मुखर होकर रक्त दौड़ने लगा। धीमे से उसने कहा, 'आप उठिए, कोई देख लेगा !'

'वी आर डूइंग नथिंग !' और वह उठ खड़ी हुई ! सत्यप्रकाश हतप्रभ ! मुस्कराकर क्लारा ने कहा—

'डर लगता हो तो दरवाजा बन्द कर दूं ?'

'नहीं नहीं, भगवान के लिए ऐसा न कीजिए ! मँगरू वहाँ बाहर है मैं उसी के पास चला जाता हूँ।'

'मुझसे डरते हो ? मै हव्वा नहीं हूँ मिस्टर – क्या नाम बताया ?'

'सत्यप्रकाश !'

'सत्यप्रकाश ! हाउ इम्पोजिंग !'

'मैं समझा नहीं !—आपको अच्छा नहीं लगा ?'

'प्रकाश हा, सो तो मान लिया जा सकता है, मगर यह प्रकाश सच का है या झूठ का ? डरो मत मैन ! वी आर फ्रेंड्स ! ममी लड़कों से मिलने नहीं देती, बट आ'एम श्योअर, तुम्हें देखकर नाराज नहीं होगी।'

'क्यों ?' अनायास सत्यप्रकाश पूछ बैठा !

'तुम लड़कियों से भी ज्यादा शरमीले हो न !—फिर मँगरू अंकल भी तो सिफारिश कर देंगे।'

'लेकिन – आपकी मम्मी क्या मँगरू की बात मान लेती हैं !'

'ओह ! डोंट आस्क मी ! मम्मी उनको इतना लाइक करती है, आइ कांट अंडरस्टैंड ! तुम्हारे स्कूल में गेम्स होते हैं ?'

'अभी ता हमारा स्कूल खुला ही कहाँ है ? वैसे भी मैदान तो है नहीं ! आप कौन से खेल खेलती हैं ?

'एनी गेम — हल्लाहुप, रोप जम्प – पिक्चर देखते हो ?'

'आप तो अंग्रेजी देखती होंगी' – बाहर से एक बेरा ट्रे में चाय, बिस्कुट लेकर आया तो सत्यप्रकाश घबरा गया। वह उठ खड़ा हुआ तो पास खड़ी क्लारा से टकरा गया। क्लारा ने हाथ फैलाकर सम्हाल लिया उसे अपने ऊपर ही। सत्यप्रकाश ने तुतलाकर कहा, 'मुझे माफ कर दें !'

क्लारा ने और ज्यादती कर डाली। मानों परिस्थिति की आकस्मिकता ही कारण हो उसने अनायास सत्यप्रकाश को सीने से चिपटा लिया पर वैसे ही तत्काल छोड़ भी दिया और मुस्करा कर कहा, 'अच्छा, माफ किया।' आँखों में

आँखें डालकर वह कुछ हट भी गई ! बेरे ने मानों कुछ ध्यान ही नहीं दिया। ट्रे को टेबल पर सजाकर वह बाहर चला गया।

खिसियाए हुए सत्यप्रकाश ने कहा, 'मँगरू को भी बुला लीजिए न !'

'थ्रिल ही कम ? जिसे चाय से ज्यादा लाइक करते हैं वे, इस समय तो उसे लगाए होंगे ओठों पर !' और वह प्यालों में चाय उड़ेलने लगी।

'किसे चाय से ज्यादा लाइक करता है वह ?'

'यू डोंट नो ?' फिर उसकी ओर देखकर कहा, 'वाइन एंड – शैल आइ से ? – वूमन !' अन्तिम शब्द उसने बहुत आहिस्ता से कहा !

'मैं नहीं समझा ! हिन्दी में कहिए न ?'

'ठीक तरह समझाऊँ ? शैल आइ ?' न जाने क्या अनायास उसकी आँखों में चमक उठा कि सत्यप्रकाश सिहर उठा। नसें भीतर उछल ही रही थीं, रक्त के उछ्वास में चेहरा कुन्द की तरह तप उठा था। क्लारा की दृष्टि में जाने कैसी आकुल मनुहार थी कि सत्यप्रकाश अपनी दृष्टि हटा नहीं सका। हाथ का कप क्लारा ने पुनः ट्रे में रख दिया और हाथ में एक बिस्कुट लेकर वह सत्यप्रकाश की ओर बढी। मुँह की ओर बढते जा रहे हाथ को सत्यप्रकाश ने बीच ही में कलाई से थाम लिया तो क्लारा और भी आगे बढ़ आई, और सत्यप्रकाश कुछ समझ पाए इसके पहले ही उसके ओठों को चूमते हुए बोली, 'दिस इज व्हॉट ही लाइक्स मोस्ट।–अंडरस्टैंड ?'

'यह क्या किया आपने ?–सारा जूठा कर दिया।' और उसने ओठों पर हाथ फिरा लिया। क्लारा का हाथ छूटा तो उसने बिस्कुट भी उसके मुँह में ठूंस कर हँसते हूए कहा, 'एंड यू प्रेटी सिली चम, इसके काबिल हो।'

कुछ कहना चाहता भी हो पर मुँह में बिस्कुट फँसे होने से भी कुछ कह नहीं सका वह। मुँह के भीतर का बिस्कुट का भाग जीभ पर गल भी गया था, बाहर के बचे भाग को यदि हाथ से सम्हाल न लिया जाए तो नीचे गिर पड़ेगा। जूठा तो हो ही गया है, जीभ हिलाकर उसने शेष बिस्कुट को भी मुँह-विवर में कर लिया। शरारत की मुस्कान के साथ विजय-गर्व में दीप्त क्लारा ने चाय का कप उठा लिया और बोली, 'जूठा मुँह चाय के गरम पानी से घुल कर सच्चा हो जाएगा, लो। सत्य का प्रकाश कहा था न ?–नाउ यू आर लाइक अस।'

'आपके लिए तो मजाक हो गई लेकिन – मैं जाता हूँ।'

'अच्छा ठहरो, मँगरू अंकल को मैं बुलाए देती हूँ। चाय से भी अगर मुँह न धुले तो फिर इधर बाथरूम में ब्रश, साबुन, तौलिया, सब कुछ है।–लो न। क्या मँगरू अंकल के हाथ से ही पीओगे ?'

डा. डिल्ली रमण रेग्मी
कल्याणी रेग्मी स्मारक
पुस्तकालय 9567.

क्लारा ने कप बढ़ाया तो थामते हुए सत्यप्रकाश बोला, 'डर लगता है। बैठकर पढ़ाई कैसे होगी आपके साथ ?'

'नहीं होगी पढ़ाई ?—पढ़ाई न सही, साथ तो बैठेंगे न ।'

'लेकिन मैं अगर आया तो पढ़ने के लिए ही आऊँगा। सचमुच मेरी अंग्रेजी कमजोर है।'

'और फ्रेंडशिप के सब्जेक्ट में भी तो काफी कमजोर हो।—कौन से स्कूल में पढ़ते हो ?'

'यहाँ एक सद्धर्म हाई स्कूल है।—आप चाय नहीं पीएँगी क्या ? तो मैं भी नहीं पीता।'

'पी सकती हूँ एक शर्त पर ।'

'क्या ?'

'पहले तो यह आप-आप कहना छोड़ना होगा। मैं तो तब से तुम-तुम ही कह रही हूँ।' और मालूम दिया, इस बार सचमुच अपने किए पर लज्जा हुई है।

'अच्छा और कुछ ?'

'हाँ। जिस तरह मैंने तुम्हारे लिए चाय बनाई तुम मेरे लिए बना कर दो।'

'पर मुझे तो चाय बनाना नहीं आता।'

'बनी हुई तो है। कप में उड़ेलना और फिर मिल्क एण्ड शुगर, बस।' और वह फिर मुस्करा दी।

सत्यप्रकाश ने अपना कप ओठों से लगा लिया था, किंतु उसे टेबल पर रख कर वह ट्रे की ओर बढ़ा और बोला, 'चलो, एक पाठ तो यहीं से शुरू करता हूँ !—अभी जब कि स्कूल खुलने में तो अभी हफ्ते भर की देर है !'

'अभी तुम्हारा स्कूल खुला नहीं ? हमारा स्कूल खुले तो दस दिन हो गए !'

'दो-तीन दिन में सरकारी स्कूल भी खुल जाने वाले हैं, पर हमारा तो यह प्राइवेट स्कूल है न !'

'ओह गॉड, यह शुगर कितनी दिए जा रहे हो ? शरबत बना रहे हो क्या ! दो चम्मच से ज्यादा कोई भला आदमी नहीं पीता—वह तुम्हें पीनी पड़ेगी अब !'

'लेकिन मेरा कप तो वह है !'

'वह मैं पी लेती हूँ !' और आगे बढ़कर उसने सत्यप्रकाश का कप उठा लिया !'

'हैं, हैं, वह मेरा जूठा है !'

'उसे मैं सच्चा किए लेती हूँ !' और सत्यप्रकाश हतप्रभ देखता रहा, क्लारा

ने उसके जूठे कप से मुँह लगा ही लिया और फिर उत्तर में वही शरारत भरी मुस्कान ! सत्यप्रकाश देखता ही रहा !

कुछ क्षण नीरवता में एक दूसरे को गहराई से देखने में ही बीत गए कि सहसा बाहर से पगध्वनि के साथ ही मँगरू की आवाज आई, 'अरे भई, चा' क्या अकेले-अकेले ही गटक रिए हो ?'

सत्यप्रकाश चौंक कर उठा और दूर रखी कुर्सी पर जा बैठा, हड़बड़ी में कुछ चाय फर्श पर गिर पड़ी पर उस ओर उसका ध्यान नहीं था। आगे-आगे मँगरू और उसके पीछे एक महिला, घुटने के ऊपर ही खत्म हो गए चुस्त फ्रॉक में कसी हुई भरे बदन की, कटे हुए काले बाल कंधे से ऊपर यानी गला दिखाई दे रहा था, फ्रॉक के नीचे पुष्ट टाँगें जो ऊँची एड़ी के सैंडल से और भी उभर आई थीं, क्लारा से उम्र में कुछ ही अधिक, पर चेहरा प्रौढ़तर ! मँगरू कह रहा था—

'ये रिया हमेरा दोस्त सत्यप्रकाश मेम सा'ब !'—सत्यप्रकाश ने हाथ का कप ट्रे में रख दिया था, दृष्टि मिलते ही हाथ जोड़कर उसने नमस्कार किया लेकिन महिला ने नमस्कार का कोई उत्तर दिया सत्यप्रकाश को नहीं लगा, बल्कि उसे लगा कि महिला की दृष्टि कुछ कठोर ही हो गई है। मँगरू कहता जा रहा था, 'और सत्परकाश, मैंने कहा था न, ये हैं नोरा मेम सा'ब, किलारा बेबी की अम्मीजान ! मैं कह रिया था न मेम सा'ब, लड़का भौत अच्छा है। दोनों एक ही जमात में पढ़ते हैं। पढ़ने में भी भौत तेज है, अपनी किलास में हमेशा अव्वल आता है। दोनों साथ बैठकर पढ़ेंगे तो एक दूसरे को मदत मिल जाया करेगी !'

कुछ कहना चाहता था किन्तु मँगरू के इशारे में घुड़की पाकर सत्यप्रकाश चुप रहा !

'टुमरा मैथ्स अच्छा हाय ?' सत्यप्रकाश ने महसूस किया मेम साव वनकर बोल रही है !

जवाब बीच ही में क्लारा ने दिया,'एण्ड ममी, हमरा लैंग्वेज भी तो वीक है !'

'कितना बजे आने सकता तुम ?—मॉर्निंग को या ईवनिंग को ?'

'शाम को ही आ सकता हूँ छह-सात के बाद ! पर मां से पूछना पड़ेगा।'

'अरे वो सब ठीक हो जाएगा !' मँगरू ने कहा !

'ओ ठीक बोलता मँगरू ! अपना मम्मी से पूछना अच्छा होता हाय ! चाय पियो अपना, और बेबी, टुम जल्दी रेडी हो जाओ ! पिक्चर का टाइम हो गया है !'

'पिक्चर मम्मी ?' उल्लास के साथ क्लारा ने एक ही घूंट में चाय समाप्त कर ली और थिरक कर बोली, 'गेटिंग रेडी इन ए मोमेंट !—एण्ड हू एल्स ?'

'मँगरू अंकल हाय ! सॉरी बॉय, तीन ही टिकिट लाई थी ! यू कम सम अदर डे ! तीसरा टिकिट भी लाई तो थी अब्दुल के लिए। बट ही इज कीन टु रिमेन एट द काउंटर !'

क्लारा ने सत्यप्रकाश को घूर कर कहा, 'देन यू आर कमिंग टुमॉरो ! कल इसी वक्त ! टा--टा !' और वह कमरे के बाहर चली गई तो मँगरू ने कहा, 'चलो, सिनेमा तक तो साथ रहेगा !'

'नहीं, मैं घर ही जाता हूँ सीधा ! देर भी हो रही है !' और वह नीची गर्दन किए बाहर निकल आया।

●

चुम्बकों के अयन

जीप में बैठा महेश्वर समझ नहीं पा रहा था कि सत्यप्रकाश के सामान्य मारपीट के मामले में ऐसा गम्भीर क्या है कि इतनी रात गए थाने का सिपाही उसकी खोज में सिनेमा हाउस पहुँच गया। शो देखने नहीं चला गया होता तो इतनी रात तक वह वहाँ ठहरता भी नहीं। उसने जेब से सिगरेट-केस निकाल कर एक सिगरेट ओठों में अटका ली। लाइटर हाथ में खेलने लगा, लेकिन सिगरेट जलाने की उसे सुधि शायद नहीं रही। कैसे रूखे स्वभाव का है वह लड़का सत्यप्रकाश? दस रुपये का नोट दिया था महेश्वर ने। अस्पताल ले जाकर जितनी हो सकी उसकी सहायता भी की थी और भविष्य में भी सहायता का आश्वासन दिया था। अपने स्कूल में भरती करवाना मात्र ही नहीं, फीस भी माफ करवा दी है और किताबों की भी कुछ व्यवस्था कर ही दी है उसने। इससे अधिक और कोई कर ही क्या सकता है?—चोटें भी कोई खास नहीं थीं, दूसरे दिन मिलने का वादा खुद उसी ने किया था!—तो क्या उसकी माँ ने ही उसे मना कर दिया मिलने से? कैसी माँ है जो अपने पुत्र के हितचिंतक की भी अवहेलना कर जाए? अपमान नहीं समझेगा कोई इस अवहेलना को?—किन्तु अब? हुई न उसी की सहायता की अपेक्षा! अभी तो थाने पर ही नम्बर आया है, उसके बाद, स्कूल, फिर कक्षा, और फिर क्या घर का भी नम्बर नहीं आ जाएगा?

थाने में जब जीप पहुँची तो सिपाही ने लक्ष्य किया कि महेश्वर के चेहरे पर जो अब तक एक खीझभरी तनाव की रेखा खिंची हुई थी, धीरे-धीरे वह लुप्त हो गई है, ओठ सरल हो आए हैं, चश्मे के भीतर दृष्टि भी तरल हो उठी है। जीप रूकी तो महेश्वर के ओठों से सिगरेट खिसक पड़ी।

भीतर थानेदार के सामने जो खड़ा था न तो वह सत्यप्रकाश था, न वह लड़का जिसके साथ सत्यप्रकाश की मारपीट हुई थी, जो है, वह चालीस-पैंतालीस की उम्र का चिथड़ों में लिपटा कोई भिखारी लगता है, जिसे मानो गरीब होने के जुर्म में ही पकड़ लाया गया है!

सिपाही ने एड़ी मिलाकर सलाम किया तो चौंक कर थानेदार ने दृष्टि उठाई। महेश्वर को घूरते हुए कहा, 'तो आप हैं मि० महेश्वर?—बैठिए!' और कुर्सी की ओर इशारा करते हुए सिपाही से कहा भिखारी की ओर इशारा करते

हुए, 'इसे ले जाओ, अभी लॉक-अप में बन्द रखो। हरामजादे भेस भिखारी का बना लेते हैं और जुर्म एक नहीं छोड़ते !'

एक दृष्टि भिखारी की ओर डालकर महेश्वर बैठ गया तो थानेदार ने उसकी ओर रूख किया किन्तु तभी टेबल पर रखे टेलीफोन की घंटी बज उठी। 'एक्स्क्यूज मी !' कहकर उसने रिसीवर उठाया !

महेश्वर ने जेब से सिगरेट-केस निकाल कर एक सिगरेट अपने मुँह में उलझाई और केस थानेदार के सामने बढ़ा दिया। थानेदार ने भी एक सिगरेट निकाल ली और जब तक वह रिसीवर में उस पार की बात सुनने लगा वह सिगरेट के सिरे को ठोकने लगा। लाइटर से अपनी सिगरेट जलाकर महेश्वर ने लाइटर टेबल पर थानेदार के सामने रख दिया। लेकिन तभी रिसीवर हाथ में थामे ही थानेदार कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। लगता है सामने कोई बड़ा अधिकारी है। तभी तो थानेदार संभ्रम से झुक-झुक कर 'यस्सर' 'व्हेरी वेल सर' इस तरह कह रहा है मानों वह सामने खड़ा हो।

'अभी जाता हूँ सर, दस मिनिट में ज्यादा से ज्यादा। जीप तैयार खड़ी है, सर' और रिसीवर नीचे रखा तो ध्यान आया कि सामने महेश्वर बैठा मजे से सिगरेट फूँक रहा है। लाइटर से अपनी सिगरेट जलाकर लाइटर लौटाते हुए उसने कहा, 'मुझे अफसोस है मि० महेश्वर। डी० आइ० जी० का फोन था। जिस मर्डरर् की हमें तलाश है उसका कुछ ट्रेस मिला है। उसी ट्रेस में मुझे अभी निकल जानाहै!' और फिर उठ खड़े होकर बोला, 'आपको इसलिए तकलीफ दी—सब कुछ कहने का तो वक्त नहीं है मेरे पास। दीवानजी को बुला देता हूँ, वे सब समझा देंगे आपको। आ'एम सॉरी, मेरे जूनियर ने आपकी वाइफ को शराब के नशे में डेड-ड्रंक⋯।'

'मेरी वाइफ ?⋯' और महेश्वर भी कुर्सी पर से उठ खड़ा हुआ चेहरा प्रश्नों से भरा हुआ।

'यस। आपकी वाइफ होटेल एक्सेलिशियर के एक कमरे में बदहवास। मेरे आदमी उसे आवारागर्दी के जुर्म में पकड़ लाए हैं।'

'वट मि० इंस्पेक्टर⋯⋯⋯'

टेवल पर एक ओर रखी पीकेप उठाकर थानेदार बोला, 'यू सीम टु बी ए जेन्टलमैन। बेटर कीप हर इन कंट्रोल।'

'लेकिन मेरी वाइफ⋯⋯⋯ '

'डोंट वरी। नाउ देअर इज नथिंग अगेंस्ट हर—फॉर दी टाइम बीइंग एट लिस्ट।' और उसके कंधे थपथपाते हुए अपने हेड मुहर्रिर की ओर संकेत करके कहा,

'दीवानजी आपको लिए जाएँगे। वह फीमेल लॉकप में है। जिस कातिल की तलाश में मेरे आदमी होटल एक्सेल्शियर पहुँचकर आपकी वाइफ को पकड़ लाए हैं, लकीली ही हैज बीन ट्रेस्ड। मैं वहीं जा रहा हूँ एक्सक्यूज मी ....'

'लेकिन इंस्पेक्टर, नशे में तो कोई आवारा औरत किसी भी शरीफ ......'

इंस्पेक्टर ने पूरी बात नहीं सुनी। दरवाजे पर पहुँचकर हँसते हुए बोला, 'जब उसने अपने हज़्बैंड का पता दिया तब उसका नशा उतर चुका था। आवारा भी कोई होता नहीं, बन जाता है। शी हैज टोल्ड अस ऑल। मियाँ-बीवी में आपस में न बने तो ऐसा अक्सर होता है। मर्द अगर यार-दोस्त सिनेमा वगैरह में वक्त बिताता है तो महज बदला चुकाने के लिए भी वाइफ बड़े मजे से इस तरह खुद गम गलत करने का तरीका ढूँढ़ निकालती है। लेकिन, नथिंग इज लॉस्ट यट !'

महेश्वर ने दृढ़ कंठ से कहा, 'मैं किसी आवारा औरत का चार्ज नहीं लूँगा इंस्पेक्टर !'

'नहीं लेंगे ?—ओ. के. देन। लेट लॉ टेक इट्स ओन कोर्स। लेकिन तब भी मैं तो यही कहूँगा मि. कुमार, आप मिल तो लीजिए उससे। तबसे वेचारी रो रही हैं। रीअली रिपेटंट। अच्छा ! दीवानजी, चाहें ये तो मुलाकात करवा दीजिए, और पर्सनल बांड पर ले जाना चाहें तो छोड़ दीजिए। ओ. के.' बुत बना महेश्वर देखता रहा और इंस्पेक्टर बाहर निकल कर जीप में बैठ गया। जीप चली तो पीछे से उसकी लाल रोशनी दूरतर होती हुई शहर की अन्य रोशनियों में मिलकर विलीन हो गई।

खिचड़ी, घनी फैली मूँछों के बीच मुस्कराते हुए दीवानजी ने कहा, 'चलिएगा ?—चमन से बाहर राह में फेंक देने से गुल की क्या हालत हो जाती है इसे चमन का माली ही समझ सकता है।'

'चलिए। देख ही लूँ, आया हूँ तो।' और महेश्वर एक कदम आगे बढ़ लिया। उत्तेजना के स्थान पर अब उसके चेहरे पर कुतूहल दिप उठा था, उसकी तरल आँखें चश्मे के भीतर भी चमक उठीं।

भीतर बरामदे में एक पीली बत्ती का हलका प्रकाश है। दोनों ओर बने चार सेलों के सीखचों वाले दरवाजों में अँधेरा फैला हुआ है। बाएँ कोने पर आखिरी सेल के दरवाजे पर लिखा है 'फीमेल'। दीवानजी ने अपने पैंट की जेब से चाबी निकाली। महेश्वर ने सलाखों के बीच दृष्टि डाली पर अँधेरे के सिवा उसे कुछ भी दिखाई नहीं दिया।

एकाएक जबकि दीवानजी ताला खोल रहे थे तो महेश्वर को सुनाई दिया 'ओह डीयर !' और महेश्वर के अन्तर के तार झंकार कर उठे। दरवाजा खुलते ही

साड़ी में लिपटी-सिमटी एक नारी-देह हाथ फैलाए लपकी और महेश्वर के गले को घेर कर आर्तनाद के स्वर में ही चीख उठी, 'डीयर, डीयर बचा लीजिए इस बार। मैं अब कभी आपको इग्नोअर नहीं करूँगी, नेव्हर। यहाँ अब और रही तो मेरा दम घुट जाएगा। मैं मर जाऊँगी।' और अपना अश्रुस्फीत चेहरा उसने महेश्वर के वक्ष पर रख दिया। महेश्वर इसके लिए बिलकुल तैयार नहीं था। नारीदेह के धक्के से नहीं, किन्तु घटना और संयोग की आकस्मिकता से उसके पैर लड़खड़ा गए, पर दीवानजी ने हाथ पकड़कर उसे सम्हाल लिया। टरेसा को पहचान लेने में महेश्वर को एक क्षण की भी देर नहीं लगी। सिर के बालों से लवेंडर की भीनी खुशबू के साथ शराब की तीखी गंध भी महेश्वर के रंध्रों में घुस जाना चाहती है। उसके अनावृत्त बाहुमूलों को पकड़कर महेश्वर ने उसे दूर हटाने की चेष्टा की।

दीवानजी की अनुभवी आँखों ने महेश्वर के चेहरे पर बदलते भावों को लक्ष्य कर कहा, 'अपनी बीबी को न ले जाना चाहें तो आवाज दे लीजिएगा। मैं वहाँ हूँ। और ले जाना चाहें तो रजिस्टर भी वहीं है। दस्तखत कीजिए और ले जाइए।' और दोनों को उसी मुद्रा में छोड़कर वह अपनी जगह चला गया।

महेश्वर ने बलपूर्वक टरेसा को सीने से अलग किया। अर्द्धोंमीलित उसकी आँखें लाल, कोए सूजे हुए हैं। लालिमा शराब के नशे की भी हो सकती है, पर गालों से बहा हुआ रूज-पाउडर जाहिर करता है कि रोई भी वह नहीं है। बाल कंधे पर फैल गए हैं। रूखे और बिखरे बालों में किसी यत्न के कृतित्व का प्रमाण नहीं, बल्कि चांचल्य और चमक के अभाव में वे निष्प्राण ही लग रहे हैं। आँखों की कोरों में आँसू रुके पड़े हैं। और उसका सारा शरीर काँप रहा है।

महेश्वर मे मानों अपने आपसे ही, कहा, 'सो इट्स यू।'

टरेसा ने बलपूर्वक अपनी दृष्टि उठाई, भरी तराइयों की सतह पर बरामदे की मद्धिम बत्ती झलक उठी, खिंचे धनुष जैसे रन्जित अधरों पर एक क्षीण कंठ उठ आया, बोली, 'आइ हैड नो ऑल्टरनेटिव डीयर। चाहे जो सजा दे लो, पर बचा लो मुझे इन भेड़ियों के जबड़ों से।'

कोई सुन न सके ऐसे धीमे स्वर में महेश्वर ने कहा, 'लेकिन एकाएक हजबंड के तौर पर इनके सामने मुझे पेश करने का साहस तुम्हें कैसे हुआ ?'

'इनकार कर दोगे क्या ?—सचमुच?' और जहाँ एक क्षण के लिए विजली की छटा तैर आई थी वह छलछलाई दृष्टि राह खोई-सी नीचे पैरों पर आ गिरी। जो हाथ महेश्वर के कंधों पर दृढ़ भाव से आरोपित थे, उठकर वे नीचे गिरने लगे। एक अदृश्य आँधी पेड़ों को उखाड़ती हुई शरीर से बह गई।

गिरते हुए हाथों को अपनी मुट्ठी में लेकर महेश्वर ने कहा, 'मेरी प्रतिष्ठा-मेरी प्रेस्टीज का तुमने कुछ भी खयाल नहीं किया ?'

'करना चाहिए था……डूबता हुआ आदमी तिनके के सहारे को भी नहीं छोड़ना चाहता न ! कहाँ सोचता है वह कि तिनका, बोझ दूर, उसके स्पर्श से भी टूट जाएगा ?'

'मुझसे अधिक तुम्हारे और कई मित्र होंगे। वी हैव मेट बट वन्स।'

'एंड दैट टू व्हेरी फ्लीर्टिंगली।' फीकी आवाज में उसने कहा, 'आवारागर्दी के जुर्म से बचने के लिए एक हजबंड का रेफरंस देना जरूरी था। नहीं जानती क्यों मन में एकाएक तुम्हारा नाम उभर आया।'

'शराब के नशे में भी तो थी न।'

'यस।—रीजनिंग का चान्स हो तो मन प्रेक्टिकल हो सकता है।' फिर लंबी साँस लेकर बोली,

'अच्छा मैं ही कहे देती हूँ। बचाव के लिए झुठमूठ ही तुम्हारा नाम कह दिया था।' और महेश्वर की ढीली मुट्ठी से हाथ छुड़ाकर उसने दृष्टि सामने दीवानजी की ओर फिराई।

'लेकिन इसका मतलब जानती हो ?'

'फॉर हूम ?—यू ऑर मी ?—मेरे लिए तो, एट बेस्ट साल-छह महीने की कैद। और कम हुआ तो रिफर्मेटरी में रेसिडेंस। एज फॉर यू? —आवारा औरत का टेम्परेरी हजबंड बनना इज्जत का सवाल पैदा कर सकता है, लेकिन उसके साथ रिलेशन्स बनाए रखने में शायद वैसी कोई बाधा नहीं होती।—बहुत परेशान किया सचमुच आपको। माफी तो माँगती ही हूँ, शर्मिन्दा भी हूँ। किस अनबूझ प्रेरणा से यह पागल मन कोई हक समझ बैठा……' और वह अपने सेल की ओर बढ़ने लगी अँधेरे की ओर।

'डीयर' और 'तुम' के संबंध एकाएक समाप्त हो गए। किंतु इसका विवादी स्वर यदि कहीं मुखर हुआ तो वह महेश्वर के मन में ही हुआ। और जो कुछ उसने किया, व्यक्त मन से शायद उसने सोचा भी नहीं। जाती हुई टरेसा के हाथ उसने इस तरह खींचे कि वह उसके वक्ष से आ टकराई।

'जानती हो तुम इस दरवाजे के भीतर क्या है?'

सम्हल कर टरेसा बोली, 'मौत, अँधेरा—मेरा फ्यूचर।'

'चलो मैं तुम्हें घर पहुँचा दूँ।'

'लेकिन – उस रजिस्टर में मेरे हजबंड के तौर पर दस्तखत करना होंगे न !'

'यही तो तुमने चाहा है। अगर इसके बिना उद्धार नहीं है तो मैं दस्तखत कर दूंगा ! ' और उसका हाथ थामे हुए ही महेश्वर आगे की ओर बढ़ा। चेहरे पर झुक आए बालों को सिर का झटका देकर हटाते हुए टरेसा ने महेश्वर की ओर देखा। आयत आँखें और भी फैल गईं, किंतु कोरों में अटकी हुई वाष्प ने आगे बढ़कर दृष्टि को जितना धुंधला किया मन को उससे भी अधिक सिक्त कर दिया। महेश्वर ने क्या देखा उनमें सो वही जाने, किंतु टरेसा ने एक गहरी साँस के साथ पलकें गिरा लीं। पैर उसके तब भी काँप रहे थे, किंतु वह स्वयं निष्कंप आगे बढ़ी उस प्रेरणा के सहारे, जो उसके थामे हुए हाथ में दूसरे पुरुष-हस्त से बहकर आ रही थी।

हाथ छूट जाने पर टरेसा ने आँखें खोलीं। कुर्सी पर बैठे मुहर्रिर ने कहा, 'समझौता हो गया ?' और मुस्करा कर उसने एक रजिस्टर महेश्वर के सामने फैला दिया।

जेब से पेन निकाल कर महेश्वर मानो रजिस्टर से ही बोला, 'समझौता तो उसी दिन हो गया था जिस दिन शादी हुई थी। बीच-बीच में यह तो ब्याज अदा करना ही पड़ता है।—नहीं क्या ?' और मुस्कराकर टरेसा की ओर एक बार देखते हुए उसने दस्तखत कर दिए।

मुहर्रिर ने टरेसा की ओर देखकर कहा, 'सुबह का भूला शाम को भी घर पहुँच जाए तो भूला नहीं कहलाता ! नई रोशनी की तालीम जो ठहरी !—मजहब चाहे जो हो बेटी, वक्त पर वही काम आता है जो अपना होता है। लड़ाई-झगड़ा किसमें नहीं होता, लेकिन कोई इस तरह अपनी बरबादी नहीं करता !'

टरेसा बोली, 'आपके सामने इनके पैर छूकर कसम खाती हूँ कि अबसे इनके कहने के बाहर एक कदम भी नहीं रखूंगी।' और झुककर उसने महेश्वर के पैर पकड़ लिए। महेश्वर ने दोनों हाथ पकड़ कर उसे उठाया और कहा, 'आपके सामने वादा किया है दीवानजी, मेरे कहने के बाहर एक कदम भी नहीं रखेंगी। पहला सबक तो यह है कि शराब से इन्हें परहेज करना होगा !'

'करूँगी !—कसम लेती हूँ अगर कभी एक बूँद भी छुऊँ।' टरेसा ने कहा।

'आदत पड़ गई हो तो धीरे-धीरे छोड़ देना बेटी !—यह तुम्हारा पर्स रहा। देख लो, सब कुछ ठीक है न ?' मुहर्रिर ने कहा।

पर्स लेकर टरेसा ने खोला, और उसमें से एक बंडल निकाल कर दस छोटे-छोटे नोट गिने। फिर मुहर्रिर की ओर बढ़ाते हुए बोली, 'मेरे लिए खुशी का मौका है न दीवानजी, इनकी तरफ से अपने स्टाफ में मिठाई बँटवा दीजिएगा !' और महेश्वर की ओर देख कर उसने मुस्करा दिया।

'ले लीजिए दीवानजी। यह तो खुशी का बँटवारा है। और इजाजत हो तो हम लोग भी रुखसत हों। वक्त भी बहुत हो गया है।' महेश्वर ने कहा।

रुपए लेकर मुहर्रिर बोला, 'शौक से जाइए! मैं वाकई खुश हूँ। परमात्मा आपको खुश रखे।'

× × ×

समय आधीरात के लगभग था। सारे शहर पर सन्नाटा छाया हुआ था। भीतर के रुद्ध प्रकाश से एकाएक बाहर आने पर सर्वत्र अंधकार ही दिखाई देता है, घना, दूर-दूर लगे नगरपालिका के बिजली के बल्ब भी इस तरह चमकते हैं मानो घनी झाड़ियों में जुगनू चमकते हों। पर कुछ ही देर में अँधेरा छँट जाता है आँखों से! रात की भी एक निराकुल, निरभ्र मूर्ति है, उसका एक मुखर संगीत है। उन्हें देखने और सुनने के लिए आँख और कान ही की नहीं, उचित अवसर की भी अपेक्षा होती है, तथा मन को भी उसके लिए तैयार होना पड़ता है। महेश्वर और टरेसा दोनों अपने आपमें खोए इस वातावरण में घुलमिल कर शायद अपने-अपने अजनबी को खोजने का प्रयत्न कर रहे थे। निस्तब्धता के बावजूद स्टेशन की ओर जाने वाली यह सड़क रातभर चलती रहती है। रात में दो रेलगाड़ियों की सवारियों के अलावा सिनेमा के आखिरी खेल के दर्शक भी कम नहीं होते। रह रह कर सड़क पर कहीं दूर इक्के के घोड़ों की टाप या घूँघरू की आवाज कानों में धीरे-धीरे स्पष्ट होती हुई पास आकर फिर दूर निकल जाती है। सारा वातावरण मोहक है थाने की घुटी हुई हवा अब नहीं है। बिजली और गैस की रोशनी से झुलसे हुए शहर के नैश-गगन में नगरवासियों को चाँद-सितारों का खेल देखने का सुयोग नहीं मिलता, किन्तु तब भी रात की रमणीयता और कमनीयता में एक नारीत्व निहित है। तब मन यों ही जवान हो उठता है, कल्पना को पंख लग जाते हैं। आशाएँ चाँद को छू लेना चाहती हैं, हवा में सपने मँडराने लगते हैं और दिमाग धरती से उठकर आसमान से जा टकराता है। महेश्वर डूब चला है वातावरण में!

टरेसा की जो भी मनोस्थिति हो, चल रही है वह महेश्वर से सटकर, एक हाथ महेश्वर के हाथ में। पैर संयत, कदम सधे हुए पड़ रहे हैं। शरीर पर छिड़के हुए सेंट की उग्र गंध शराबकी गंध को दबा गई है। नशा हिरन हो चुका है। और पास खिच आकर महेश्वर ने पूछा, 'इक्का ले लें?'

जैसे स्वप्न से जाग कर टरेसा ने पूछा, 'इक्का?'

'हाँ!—बहुत थकी हुई लग रही हो!' और उत्तर के लिए वह चलते-चलते रुक गया।

'कहाँ चलोगे?'

कहाँ ?—महेश्वर ने तो सोचा ही नहीं। सोचना चाहिए था। इतनी राह उसके पैर ही तो ले आए हैं अनायास ! टरेसा का घर कहाँ-किधर है, पूछना चाहिए था !—उसका खुदका घर,—उधर की सड़क तो वे पीछे छोड़ आए हैं। पुनः पैर बढ़ाते हुए बोला, 'घर का पत बता दो, वहीं पहुँचा दूं। कौन-कौन हैं घर पर ? आधीरात, एक अजनबी के साथ, किसी नई मुसीवत में तो नहीं पड़ जाओगी ?'

कंधे से सिर सटाकर बोली, 'जो पीछे छूट गई है उससे बडी मुसीबत और क्या होगी ?'

पीछे दूर से घोड़े की टापें नजदीक आ रही थीं। महेश्वर ने कहा, 'इक्का शायद खाली हो ! घर इसी ओर है या—'

टरेसा ने बीच ही में कहा, 'तो मुझे होटल एक्सेलिशियर ही छोड़ दीजिए न !'

'होटल एक्सेलिशियर ?—मगर उसी होटल से तो शायद पुलिस तुम्हें पकड़ कर ले गई थी ? फिर उसी माहौल में जाना चाहती हो ?'

'पर और उपाय क्या है ?—घर जाने से तो—' इक्का पास आ गया था, खाली भी था। महेश्वर ने इशारा किया तो रुक गया। विचार या विवाद का समय नहीं था, इक्केवाला ही कुछ शक करले। महेश्वर ने आहिस्ता से कहा, 'घर पर मेरे भी कोई नहीं है। अभी वहीं चलते हैं। न चाहोगी तो इक्का वहाँ भी मिल जाएगा, जहाँ चाहो जा सकोगी।'

बैठ गए तो महेश्वर ने इक्केवाले से कहा, 'नई बस्ती !' और इक्का मुड़ गया !

× × ×

सवेरे नींद उड़ी तो टरेसा एकाएक समझ ही नहीं पाई कि वह कहाँ है। सामने खिड़की में नीला आकाश फैला हुआ है, धूप कहीं दिखाई नहीं देती, खिड़की शायद पश्चिम या दक्षिण में है ; लेकिन दिन काफी चढ़ आया है इसमें सन्देह नहीं। यह कमरा...रात क्या उसने दुस्स्वप्न देखा था ? नहीं, यह कमरा उसका नहीं। निश्चय ही महेश्वर का है।—क्या यह स्वप्न नहीं कि रात उसने हजबंड बनकर टरेसा का उद्धार किया था ?—कहाँ है वह ?—आँखें खोल कर उसने करवट बदली। शून्य है कमरा। खिड़की पर लगे परदे हवा में पेंग भरभर कर झूल रहे हैं। जरूर काफी ऊँची मंजिल पर है कमरा। कितनी मंजिलें चढ़नी पड़ी थीं रात ? याद आ रहा है, लिफ्टमैन नहीं था ! देर हो गई थी न !

पता नहीं, कब सो गई थी वह ! बहुत थकी हुई तो थी ही, शरीर और मन दोनों से। महेश्वर ने ही लाकर लिटा दिया था। वह, सुना था शायद कि वह सोफे पर ही लेट लेगा उस कमरे में ! टरेसा ने दृष्टि मोड़ी, बीच के दरवाजे पर

भारी परदा हवा में झूल रहा है, पर भीतर का भेद तनिक भी खोलना नहीं चाहता।—उसी कमरे से होकर तो आए थे वे। खाली ही तो लगा था उसे तब! –सजा हुआ अवश्य था!–क्या अभी तक सोया हुआ है?—अजब कुछ नहीं। रात को देर भी कितनी होली थी। सोने दो, जल्दी भी क्या है?—घर में और हैं ही कौन कि कुछ कहेगा उसे!

महेश्वर, उसका हजबंड!–अधर वक्र हो गए उसके!–तब ऊँचाइयों में सिर उठाए यह कक्ष उसका निजी कक्ष होता। तब वह यों शून्यता और आलस में घिरी पड़ी न रह पाती—उठती और बेधड़क उस कमरे में लपक कर उसे झकझोरती हुई कहती, 'उट्ठो भी! देखते हो, कितनी देर हो गई है? चाय ठंडी हुई जा रही है न!'—और शायद करवट बदल कर फिर लेट जाते हुए आँखें बन्द करके वह कहता, 'होने दो चाय को ठण्डी, पर तुम क्यों गरम हुई जा रही हो?—आ जाओ न बिस्तर में। मुझे भी कुछ गरम कर दो।'—आँखों में चमक फैल गई! पासके कमरे में क्यों, तब क्या वह यहीं बगल में न सोया हुआ होता?–बगल में, रात भी वह सो सकता था। टरेसा क्या है यह तो महेश्वर से छिपा नहीं है। उस रात तो दोनों साथ थे ही। – उस कमरे में सोफे पर ही लेट लेगा, सुनकर खुद टरेसा को कुछ कहना चाहिए था। उस रात महेश्वर को उसकी सहमति प्राप्ति थी, पैसे देकर खरीदी हो चाहे। रात वह प्राप्त न थी, अनैतिक न होने पर भी इसीलिए क्या वह अलग कमरे में नहीं सोया? – अपने ही घर में मेहमान, ए जेंटलमेन, सर्टनली पार एक्सलंट। – एंड शी हरसेल्फ? – आवारा है! क्या महेश्वर उस रात ही नहीं समझ गया होगा? – फिर रात तो महेश्वर ने सबकुछ स्पष्ट ही सुना है कि वह होटल एक्सेलशियर के एक कमरे में नशे में गर्क, किसी खूनी मुजरिम के साथ थी। – नहीं, यह महेश्वर को कैसे मालूम पड़ता कि पुलिस-इंस्पेक्टर टरेसा का मित्र ही था। नाटक की रिएलिटी में अन्तर कहां था?

लंबी साँस दबाकर टरेसा बिस्तर में उठ बैठी। दोनों हाथ गूँथ कर ऊपर उठाए, सीना तान कर आगे फैलाया और मुँह फाड़कर फेफड़ों में ताजी हवा भरी तथा साँस से बासी हवा बाहर क्या फेंकी मानों शरीर की समस्त एकत्रित जड़ता को फूंक मारकर उड़ा दिया। कमरा अच्छी जगह पर है, भर्र-भर्र करती हुई ठंडी हवा मानों ऊपर के सारे मुक्त गगन को कमरे में ला झुकाना चाहती है और खिड़की के पर्दों में लहरा-लहरा कर आकाश भी मानों झूम उठा है मस्ती में। बदन के सारे रोम-कूप फूल उठे हैं। नहीं, गाउन नहीं, रात पहनी हुई वही शिफन की साड़ी है खिसक कर बिस्तर में फैली हुई! कपड़े बदलने का सवाल ही कहाँ था? – मगर

चाय ? फिर जम्हाई आई तो चुटकी बजाकर अधरों पर ही झेल लिया । यह क्या घर है या ब्यूटी पार्लर, कि चुटकी बजाई और सब हाजिर ?

लेकिन शायद चुटकी की आवाज सुनकर ही परदे से ढँके दरवाजे को ठेल कर एक किशोर ने प्रवेश किया, 'सलाम मेम साब ! – आप उठ गईं ? – चाय दे जाऊँ ?'

चौंक कर टरेसा ने देखा लड़का बारह से सोलह के बीच, साफ कमीज और नेकर पहने हुए, आँखें आश्चर्य और उत्सुकता से फैली हुईं, गेहुंआ रंग ! नहीं, वह लड़का नहीं जो उस रात सिनेमा घर में महेश्वर के साथ था । टरेसा ने कहा, 'तुम' ?

'जी मैं मास्टर साब का नौकर हूं मदन ! रात मौसी के यहाँ गया हुआ था, इसलिए आप ने नहीं देखा । चाय तैयार है, ले आऊं ? – या गुसल के बाद लेंगी ? गुसलखाना एक तो यहीं है' – और उसने एक कोने में इशारा किया परदे के पीछे, 'और एक उधर है बरामदे में ।'

'तुम्हारे साहब कहाँ हैं ?

'वे तो सैर के लिए चले जाते हैं न बड़े तड़के ही । – आज तो फिर भी देर हो गई थी ।'

'कब तक लौटेंगे ?'

'उनका क्या ठिकाना है मेम साब ? कभी तो इस्से भी पहले लौट आते हैं, और कभी बारह-एक बजे तक खाने के बखत । – छुट्टियाँ हैं न इस्कूल की । कई बार तो मैं खाना लिए बैठा ही रहता हूँ और वे आते हैं शाम तक किसी होटल में या किसी दोस्त के यहां खाना खा-पीकर । चाय ले आऊँ ?'

–ऐसा ही होता है अगर घर में पुरुष अकेला हो । पर आज भी क्या वैसा ही होगा ? टरेसा ने पूछा, 'चाय पीगए हैं ?'

'उनकी चिंता न करें । अब तलक तो तीनचार बार उड़ा चुके होंगे । सबेरे घर पर पीते कहां हैं ?'

'फिर आज किसके लिए बनाई तुमने ?'

'आपके लिए ! कह गए थे, घर में मेम साब सोई हैं, उठते ही चाय पिएंगी । पानी तो गरम तबसे रखा हुआ है मेम साब ! अगर कुल्ला-उल्ला करना हो तो गुसलघर में मंजन-बुरुश-साबुन सब तैयार है । तौलिया भी धुला हुआ दे दिया है !'

'अच्छा ! तो पहले एक कप चाय दे जा ! गुसल-उसल बाद में देखा जाएगा ।'

सबकुछ निपट गया यानी नहाना-धोना, साज-शृंगार, जितना किसी मेहमान के लिए मेजवान के घर संभव हो । साड़ी-ब्लाउज रात ही पहने थे, मैल छू भी नहीं

गया था। शरीर की कालिख यदि वस्त्र पर लग जा सकती तो आदमी का मन पारस क्यों न हो उठता ? चमक तो खैर, वस्त्र और शरीर दोनों से उड़ जाती है। सल भी पड़जाते हैं। दस बजने तक घूमफिर कर टरेसा ने सारा फ्लैट और पास-पड़ोस देख लिया। एकबार और चाय-टोस्ट बनाकर मदन दे गया है। मदन को मास्टरजी के लौटने की चिन्ता या उत्सुकता नहीं है। ग्यारह-बारह बजे तक चूल्हा जलाकर राह देखेगा, सब्जी बना लेगा। आगे का काम उनके आनेपर उनके आदेश के अनु-सार होता है। वे कपड़े खोल, नहा धोकर जरा सुस्ता लें, कि खाना तैयार। अगर होटल से ही निपट आएँ तो अपने ही लिए दो-चार टिक्कड़ सेक लेता है। लेकिन आज घर में मेहमान है एक महिला, चौका-चूल्हा जिसके लिए शौक का ही नहीं, अधिकार का क्षेत्र है। मेम साब हैं, खाना बनाना झंझट समझती हों तो भी खाएँगी तो जरूर, और मास्टरजी कह गए हैं, कोई तकलीफ उन्हें न हो। सो मास्टरजी के अभाव में उन्हीं से क्यों न पूछले, कि खाने में क्या बनेगा ? पर टरेसा को लगा कि क्यों न वह स्वयं चूल्हा-चौका देख ले आज ?

अकेला पुरुष, घरनी के बिना कभी घर नहीं बसता। हाथ का स्पर्श केवल स्वाद ही नहीं बदल दे सकता, मन की भावना को भी छू लेता है। बैठी-बैठी समय बिताए तो भी कैसे ?—पास के कमरे में ढेर सारी पुस्तकें देख आई है। महेश्वर टीचर है। एक युग में वह स्वयं भी थी ! पुस्तकों को देखकर ही कहा जा सकता है कि किसी पढ़क्कड़ का कमरा है। वह खुद—नहीं, पढ़ लेने से ही पढ़क्कड़ नहीं हुआ जा सकता !······नारी, यह उम्र और फिर यह स्वभाव !—अवश्य ही तबतक उसने पुरुष के सारे बिखराव को समेट कर एक व्यवस्था स्थापित करदी थी। पर वह तो सहज बात थी, नारी का प्रतिदिन का काम। आदत ही कह लो। समय वह लेती ही कितना सा ?—फिर मदन भी तो मदद पर था !

लेकिन महेश्वर तब लौटा, जब रात गहराकर श्लथ हो चुकी थी। सोचा था उसने कि तबतक तो टरेसा चली ही गई होगी ! किसी दूसरे के घर कोई कबतक धरना दिए बैठेगी, जबकि उसका अपना घर भी वहीं हो। चाहे घर में और कोई न हो तो क्या हुआ ?—होटल एक्सेलशियर की दुर्घटना होटल एक्सेलशियर के साथ रही। किसने कसम दी है कि वहाँ जाना ही होगा ?—न सोचा हो टरेसा ने जाने का, सो भी नहीं। लेकिन इस तरह चले जाना क्या अच्छा है ?—महेश्वर ने उसे आश्रय दिया है। रात उसकी सहायता के बिना क्या वह बच पाती ? खुद इंस्पेक्टर ने ही तो कहा था कि कोई अगर पत्नी कहकर उसकी जमानत दे सके तो ही बच सकती है वह ! महेश्वर का ध्यान तो सहसा ही आगया था उसे। एक रात का ही तो परिचय था ! कई व्यक्तियों से कई तरह का घना-गाढ़ा परिचय

रहा है उसका, पर ऐसी बदनामी के लिए क्या किसी पर निर्भर किया जा सकता है ? प्रथम-मिलन की रात अच्छी ही लगी थी टरेसा को। खर्च भी कम नहीं किया था उसने, यानी मूल्य पूरा ही चुकाया था ! सहज ही कैसे विश्वास होगया था उसे कि इस दुर्योग में वही उसकी सहायता कर सकेगा ? तृप्ति पाकर ही तो उसने महेश्वर का पता पूछा था ! हर किसीसे तो नहीं पूछती वह ! दूकानदार को अपने मूल्य से मतलब रहता है, ग्राहक के नाम-धाम, ठौर-ठिकाने से नहीं ! और बिदाई के समय महेश्वर ने भी उसी सहज भाव से अपना कार्ड थमा दिया था उसे !

बुद्धि ने गवाही नहीं दी थी, पर मन तो सात पातालों का शिखर भेद कर सिर उठा लेता है। चाहकर भी टरेसा जा नहीं सकी। खाना बनाया बड़ी साध से, पर किसीने नहीं खाया, मदन ने भी नहीं। जिसके लिए बनाया वही न खाए तो और कौन खा सकेगा ?

धड़कते दिल से टरेसा उसके अध्ययन-कक्ष में सोफे पर बैठी लाइफ पत्रिका के पन्ने पलट रही थी, जब दबे पाँव महेश्वर ने प्रवेश किया, और साश्चर्य बोला, 'अरे, अभी तुम यहीं हो ?'

'आपकी परमिशन के बिना कैसे जा सकती थी ?' खड़ी होकर टरेसा ने कहा।

'बैठो-बैठो !—परमिशन की बात कैसे उठी दिमाग में ?—तुम क्या यहाँ कैद हो ?'

'रिहाई न मिलने तक तो हूँ ही !'

'अच्छा !-तो रिहा किया। पर बैठो तो ! खाना-वाना तो खाया न ! मदन कहाँ गया ?'

'दिनभर घर पर ही था। अभी पूछ कर गया है जरा बाहर घूमने !'

'बाहर की हवा न खाए तबतक उसे रोटी हजम नहीं होती !' और वह भी दूसरे सोफे पर बैठ गया। टरेसा पहले ही अपनी जगह पर बैठ गई थी। पत्रिका फिर उसके हाथों में खेल रही थी।

'हजम तो तब हो जब खा ले कोई। हजम की चिन्ता किए बिना जब मालिक ही दिनभर बाहर की हवा खाता रहे तो नौकर को क्या दोष दिया जाए ?' मुस्करा कर टरेसा ने कहा।

'नौकर को देखकर ही क्या मालिक की हर बात का विचार कर लोगी ?'

'कहती हूँ, अगर इसतरह डरकर बाहर ही बाहर भागते रहे, तो मुझे यहाँ लाए ही क्यों ?'

'डर कर भागता रहा ? मदन से पूछा होता तो बताता कि घर लौटूँ भी तो किसके लिए ? मजबूरी से कह दिया किसीने हजबंड, लेकिन उसीसे क्या थके पंखों की नीड़ मिल जाता है ?'

'नीड़ के लिए तिनके चुनने होते हैं। तिनके चाहे जितने जरूरी हों, पहला तिनका तो लाना हीहोता है, चाहे जितना छोटा क्यों न हो !—मदन का तो खयाल रखा होता। उसने खाया नहीं !'

'नहीं खाया ? यह तो नई बात है !—और तुमने ?'

'मैं होती ही कौन हूँ ?—नीड़ का पहला तिनका भी तो नहीं !'

'तब मदन खाता ही कैसे ?—बनाया भी नहीं क्या उसने ? इतना बद-तमीज तो नहीं है वह !'

'बनाया है बेचारे ने, बड़ी साध और उत्साह से !'

उठ खड़े होकर महेश्वर ने कहा, 'तो कुछ और ठहर लो !—मैं वॉश कर लूँ। शायद मदन भी तबतक लौट आए ! लौटने की जल्दी तो नहीं है न ?-साथ बैठ कर खाया जाए आज !'

जवाब में पत्रिका के पन्ने खोलकर मानों दत्तचित्त होगई टरेसा उनमें। परदा ठेल कर महेश्वर अपने कमरे में चला गया तो टरेसा ने उस ओर देखा। आँखों में एक प्रकाश कौंध गया। पत्रिका बंद करके वह उठी और बाहर वाले दरवाजे से रसोईघर में घुस गई सारा सामान फिर से पकाने के लिए बड़ी साध और उत्साह के साथ !

× × ×

टरेसा आज भी नहीं जा सकी। खाते खाते ही ग्यारह बज गए। टरेसा ने ही जब जाने का कोई आग्रह नहीं दिखाया तो महेश्वर ही कैसे कहता ?—जोखिम यदि उसने ली है तो ले ही ली है ! डरने का कोई प्रश्न ही नहीं है। देखे कोई उन्हें, उसका क्या आता-जाता है ? कोई जबर्दस्ती तो पकड़ नहीं लाया वह ! जब चाहे तब जा सकती है। कहेगी तो खुद साथ जाकर घरतक पहुँचा आएगा। कामना की वस्तु, जिसके लिए साधना करनी होती है, अनायास यदि सुलभ होजाए तो कोई सहज कैसे इनकार कर देगा ?

'लेकिन डीयर, उस कमरे में सोफे पर तो तुम्हारे पैर भी नहीं फैल पाए होंगे !' इस बीच दोनों में पुनः तुम का संबंध स्थापित होगया था। दोनों बाहर गैलरी में मोढ़े बिछाकर बैठे थे। मदन और भी ऊपर छत पर सोने चला गया था !

महेश्वर ने मुस्करा कर कहा, 'सोफे से अगर मैं लम्बा हूँ तो पैर कैसे फैल पाएँगे ?'

'तब तो रात बड़ी परेशानी रही होगी।'

'हुई, पर उस वजह से नहीं। बल्कि राह भूल कर भटक गए एक सितारे का खयाल करके।'

'मैं खयाल करने लायक नहीं हूँ। सितारा भी नहीं। मैं ही उधर सोजाती।' नतदृष्टि टरेसा बोली।

'पैर फैलाने लायक कद तो है, पर करवट बदलने पर फर्श पर आ टपकने का डर तो था !···मैं ऐसी अटपटी हालत में सो नहीं सकता, खासकर फर्श जबकि काफी बड़ा है।'

'फर्श पर सोए तुम ?'

'वह फर्श जो अर्श पर है !—छोड़ो इन बातों को।'

'नहीं-नहीं, आज रात मैं तुम्हें वहाँ नहीं सोने दूँगी। मैं--'

'पर तुम्हें भी तो मैं वहाँ नहीं सोने दे सकता।'

'लेकिन फर्श पर मैं भी तो सो सकती हूँ।'

'सो सकती हो। पर नींद में मुझे खयाल नहीं रहता कि मैं कहाँ हूँ। तुम्हें रहता है ?'

टरेसा ने छिपी दृष्टि से महेश्वर की ओर देखकर कहा, 'यू प्रेटी डेव्हिल !' बत्ती गुल थी, पर शुक्लपक्ष की चाँदनी पूरे वैभव के साथ दोनों के चेहरों को उद्भासित कर रही थी।

'शुक्रिया !' कहकर महेश्वर ने जेब में से सिगरेटकेस निकाला। पास पड़ी छोटी टेबल को और पास खींचकर उस पर पैर फैला दिए और सिगरेट को मुँह में दबाकर कहा, 'हिन्दी तो तुम खासी बोल लेती हो न।'

'दैट यूस्ड टु बी माइ मदर टंग।'

'यूस्ड टु बी।—यानी अब नहीं है ?—मदर टंग जीवन में क्या कभी बदलती है ?'

'जीवन बदल जाए तब ?—एंड यू हैव टु एडमिट, जीवन बदल जाना आम बात है।'

'मैं कहूँगा, मदर और मदर टंग जीवन से भी बढ़ कर हैं। खैर, मैं किसी के जीवन की घटनाओं में रुचि नहीं रखता। मजबूरियाँ हो सकती हैं। लेकिन औरत सुन्दर होती है अपनी सर्वांग सुन्दरता में, दैट्स टु से इन हर एंटायर ब्यूटी।

और उसका कंठस्वर ही नहीं, उसके स्वर भी, उसकी भाषा भी, उसके सौन्दर्य का एक महत्वपूर्ण···क्या कहूँ कम्पोनेंट को···'

टरेसा ने हँसकर कहा, 'उपकरण कहना चाहते हो न ? दैट्स दी वर्ड ।'

'यानी तुम अच्छी हिन्दी जानती हो । उपकरण जैसा शब्द भी ।'

'तुम्हारे जैसी पंडित तो नहीं हूँ, पर बी. ए. तक हिन्दी पढ़ चुकी हूँ । विश्वास नहीं होता ? सर्टिफिकेट भी है । लेकिन सीनियर कैम्ब्रिज किया था इसलिए अंग्रेजी की आदत कुछ ज्यादा रही है । एंड दैन, यू नो, इस माहौल में अंग्रेजी बकते रहने से आदमी का भाव बढ़ जाता है । नहीं क्या ?'

महेश्वर ने सिगरेट जला कर कहा, 'भाव तो कहीं बढ़ता है तो कहीं घटता भी है ।'

हलकी होने की चेष्टा में मुस्करा कर टरेसा बोली, 'जैसे रात को घट गया था । लेकिन डीयर, तुम तो समझते-बूझते हुए भी ठगा गए ।'

'समझते-बूझते हुए न ! इसलिए अफसोस नहीं है ।—व्यतीत के लिए मैं यों भी कभी अफसोस नहीं करता । और न कभी भविष्य की चिन्ता करना चाहता हूँ । मेरे लिए वर्तमान ही सबकुछ है, और इसीलिए वर्तमान से ही सबकुछ वसूल कर लेना चाहता हूँ ।'

नीची दृष्टि कर टरेसा ने कहा, 'फिर दिनभर घरसे भागे भागे क्यों रहे आज ?'

'तुम्हें मौका देने के लिए ।' कश खींचकर महेश्वर बोला, 'थाने से निकलते ही रात मैंने पूछा था कि क्या तुम्हें तुम्हारे घर पहुँचा दूं ? याद है, तुमने क्या कहा था ?' जब टरेसा ने कोई उत्तर नहीं दिया तो एक और सिगरेट का कश खींच कर महेश्वर बोला, 'उस समय भी तुमने कोई उत्तर नहीं दिया था । बाद में जरूर कहा था कि न हो तो मैं तुम्हें उसी होटल एक्सेलिशयर में पहुँचा दूं ! है न ? वेल होटल में तुम्हें ले जाने का कोई मतलब नहीं था, और घर का पता तुम शायद बताना नहीं चाहती थी । मेरे दूर हट जाने से तुम्हें अपने मन की करने का अवसर मिल जाए यही चाहा था मैंने । दिन की रोशनी में तो कोई भय नहीं रहता न ।'

'भय रात को भी मेरे लिए नहीं है ।—दिवालिए को किसका भय ?—और घर के नाम भी—क्या अर्श-फर्श और चार दीवारों से घिर जाए, असबाब भी कुछ जमा हो जाए तो क्या घर हो गया ? निकलने की अगर रोक न हो तो घुसने से ही कौन रोकेगा ?—छिपानेको कुछ नहीं है डीयर ! कहो तो अभी तुरंत जा सकती हूँ और तुम्हें साथ लेकर भी ।'

'लेकिन तबभी तुमने उसी होटल को लौट जाने की जो बात कही थी ?'

'वह भी तो एक आशियाना है। आधीरात को घर खुला न मिले, होटल तो खुला मिलता है।'

'अच्छा यह खूनी कौन था ?'

'सो मैं क्या जानूं ?' लम्बी साँस लेकर टरेसा ने कहा।

'तो क्या वह इंस्पेक्टर झूठ बोला था ?'

'सच भी हो सकता है। होटल में तो कई आदमी आते हैं, कौन उनमें चोर होगा और कौन खूनी, यह कौन कह सकता है ?'

'लेकिन जिस कमरे में तुम पाई गई—'

'क्या उन्होंने यह कहा कि वह अपराधी भी उसी कमरे में था ?'

'शायद स्पष्ट न कहा हो। लेकिन अपने कमरे में तुम तो डेड ड्रंक पाई गई थी।'

किंचित मुस्करा कर टरेसा ने कहा, 'दूसरे के कमरे में तो नहीं न ?'

एक कश खींचकर धुआँ महेश्वर ने टरेसा के मुँह पर फैला दिया और कहा, 'किसका कमरा था वह यह तो तुम्हीं बता सकती हो।'

'मेरा ही था डीयर ! यकीन नहीं आता ?—पूछा है तो कहना ही चाहिए मुझे, चाहे यकीन करो या न करो। सचमुच उस होटल में कुछ दिनों से एक नया ग्राहक ठहरा हुआ था जो दिल खोल कर खर्च कर रहा था। होटल के नीचे की मंजिल में ही है न ब्यूटी पार्लर, वीनस ब्यूटी पार्लर। उसकी मालिक है एक महिला नोरा रॉस, मेरी सहेली भी है। देखोगे तो देखते ही रह जाओगे। फंदा फेंककर उड़ते पक्षियों को फँसा लेती है। और फिर कुछ···इमोशनली, रादर मेंटली एक प्रैंक है। मतलब यह कि उस ग्राहक से नोरा की खूब पट गई थी। कल शाम उसने एक दावत दी थी, जिसमें शराब के दौर खुले हाथों चले।'

'तुम भी निमंत्रित थी उसमें न ?'

जैसे टरेसा ने महेश्वर का प्रश्न नहीं सुना। उसने कहा, 'अब तो लगता है कि नोरा की मुझे फँसाने की भी योजना रही हो। हो सकता है उस ग्राहक की भी मुझ पर दृष्टि हो। लेकिन मैं नहीं समझती, अचानक क्यों नोरा और अब्दुल डिनर के बाद सेकण्ड शो देखने के लिए सारा चार्ज मुझ पर छोड़ कर गायब हो गए ?'

'तुम्हारी सहेली जो है। एकाएक कोई कारोबार का चार्ज किसी गैर पर तो नहीं छोड़ता यूं ही।'

'कारोबार में उसकी पार्टनर भी हूँ डीयर ! सुनोगे मेरी कहानी ?' एकाएक टरेसा ने कहा।

'मुझे दिलचस्पी नहीं है टरेसा ! कहानियाँ मैं भी सुनाता हूँ खूब सुनाता हूँ ।, अध्यापक हूँ न । सुनने की अब इच्छा नहीं होती ।' और उसने हाथ की सिगरेट बाहर फेंक दी और मुस्करा कर कहा, 'कहानी की नायिका चाहे सुन्दर स्त्री ही क्यों न हो, बल्कि सुन्दर स्त्री न हो तो कहानी बनती ही नहीं न । मैं तो केवल इस हत्यारे की बात जानना चाहता था, वह भी किसी जेलसी की भावना से नहीं । आखिर तुम दूकानदार हो, मेरे जैसे कई ग्राहक हों तो मुझे उससे क्या ?'

टरेसा ने महेश्वर की ओर देखा । उसने एक और सिगरेट निकाल कर अधरों से उलझा ली थी । दृष्टि उसकी आसमान के चाँद की ओर लगी हुई थी ! आत्मस्थ होकर टरेसा ने कहा,

'अध्यापिका मैं भी रही हूं । कहानियाँ मैंने भी सुनाई हैं । लेकिन मैंने कहानी जियी भी है । हत्यारे के बारे में तो नहीं, पर उस ग्राहक के बारे में कहना चाहती हूँ कि...उसने मुझे पाने की कोशिश जरूर की थी ।—उसकी कोशिश में ही मैंने समझा कि वह ड्रंक, डेड ड्रंक था ।—ड्रंक मैं भी थी, पर इतना होश था कि मैं उसकी चेष्टाओं को समझ सकूँ । हर कीमत पर मेरी इनकारी और रेजिस्ट करने की मेरी क्षमता से शायद उसका साथी चौकन्ना हो गया हो कि कहीं और लोगों का ध्यान न उनकी तरफ खिचें जाए, इसलिए वह उसे खींच ले गया जबर्दस्ती ही । नशे की वजह से ही और उसके साथ संघर्ष से थक मैं भी गई थी, भागकर अपने कमरे के बिस्तर में जा दुबकी, कमरा बन्द करने का भी खयाल नहीं था । मैं बिस्तर में औंधी कबतक बेहोश पड़ी रही, मुझे नहीं मालूम...'

महेश्वर ने कोई जवाब नहीं दिया तो टरेसा ने उसकी ओर देख कर कहा, 'सोच रहे हो शायद कि कोई कॉक एंड बुल स्टोरी सुना रही हूँ । जरूर मॉरेलिटी जैसी कोई चीज मेरे पास नहीं है ।'

'कह चुका हूँ मुझे कोई दिलचस्पी नहीं है टरेसा ।' और अधरों में उलझी सिगरेट को उसने नितांत अन्यमनस्कता के साथ जलाकर एक कश खींच लिया ।

टरेसा ने एक लम्बी साँस ली और कहा, 'लेकिन, क्राइम और क्रिमिनल में भी तो तुम्हारी दिलचस्पी नहीं है ।—यकीन न आने जैसी बात ही तो है । दूकानदार मशहूर हूँ, और मंजूर किया है कि ग्राहक दिलफेंक ही नहीं, शाहखर्च भी था । तबभी सौदा न पटा, इस पर यकीन कौन करेगा ?—नहीं, यह स्पर्द्धा भी मेरी नहीं है कि जिस बहाने की खोल में भावुकता के, और उससे भी बढ़ कर अपनी जरूरत के, क्षण में तुम्हे लेकर अपना बचाव किया है, उसे आगे बढ़ाती रहूँ ।—वह सौभाग्य, वह स्वप्न मुझ जैसी बिकी हुई स्त्री का नहीं हो सकता ।—' और वह उठ खड़ी हुई ।

'कहाँ ?' महेश्वर ने पूछा।

'अपने घर नहीं जाऊँगी ?'

'इतनी रात गए ?'

'रात तो सदैव मेरी साथिन रही है डीयर !' और एक फीकी हँसी उसके अधरों पर फैल गई।

महेश्वर ने हाथ पकड़कर उसे पुनः बैठाते हुए कहा, 'बैठो। तुम गलत समझ रही हो। अपने लिए नहीं, तुम्हारे लिए सोच रहा था कि तुम्हें बताऊँ या नहीं। तुम्हारा जाना खतरे से भरा है।'

'क्यों ?—पुलिस को तो—'

'वह खूनी रात पकड़ लिया गया। उसे पहचानने के लिए तुम्हारी तलब और तलाश हो सकती है।'

'कहां पकड़ा गया ?'

'अगले स्टेशन पर ही। वह और उसका साथी वहीं से गाड़ी पकड़ना चाहते थे। स्टेशनमास्टर को सौ का नोट थमा कर दो टिकिट खरीदे। इतने बड़े नोट को भुनाने लायक कैश आधीरात को और उस छोटे से स्टेशन पर कहाँ से मिलता ? वे नोट को छोड़ कर चलते बने, पर खिड़की पर खड़े रेलवे पुलिससिपाही को शक हुआ और उसने ललकारा। साथी भागकर अँधेरे में गायब होगया, पर वह कातिल शायद नशे की वजह से ही पूरी बात समझ नहीं पाया और गिरफ्तार हो गया।'

'तो मुझे डर क्या है ? जो कुछ मैं जानती हूँ उसके बारे में, सब बता दूँगी पुलिस को।'

'किसी नई आफत में नहीं फँस जाओगी ?–अगर उनका कोई गिरोह हुआ ?'

'होता रहे ! मुझे डर नहीं है। जो कुछ मैंने तुमसे कहा है, उसमें रत्तीभर झूठ नहीं है। जरूर कई बातें उठ सकती हैं, जो पुरानी बातों को कुरेदें। मैं अपने अतीत का पूरा इतिहास बेझिझक उगल दूँगी। छिपाऊँ भी तो किसके लिए ?'

'जो अतीत में रहते हैं टरेसा, उन जीवित मुर्दों में मैं नहीं हूँ।'

'कोशिश मैंने भी यही की है !—समाज ही नहीं, स्मृतियों का यह बोझ भी व्यक्ति को कुचल देता है। खड़ा तक नहीं रहा जा सकता उस बोझ के नीचे। जहां हर क्षण ऊपर से चट्टानें गिरती रहती हों, उस राह पर पीछे हटने की अपेक्षा आगे बढ़ते रहने में ही तो सुरक्षा है, यह मुझसे बढ़कर कौन जानता है ? अतीत की चोटों से घबरा कर एक क्षण के लिए भी दुविधा में खड़ी होजाती तो कभी की टूट चुकी होती, पिस गई होती। लेकिन स्मृति को अनुभव बना लिया है मैंने भी ! अनुभव के बिना बचाव की राह ही कहाँ है ?'

महेश्वर ने मुस्करा कर सिगरेट का लम्बा कश खींचा और उठ खड़े होते हुए कहा, 'लगता है स्मृति के जोश में तुम फिर किसी कक्षा की अध्यापिका बन गई हो। पर याद रखना होगा, मैं कोई छात्र नहीं हूँ। चलो भीतर चलें। थक तुम भी तो गई हो।'

'इसीलिए सिगरेट के लम्वे कश लेना जरूरी हैं क्या?'

'सोने से पहले इसकी आहुतियाँ दे लेने से रात वेचैनी से नहीं कटती डीयर!'

'यों वेचैनी से कटती है?' और वह भी उठ खड़ी हुई।

'अकेला आदमी जो ठहरा! कोई दूसरा प्राणी तंग नहीं करता, इस बुलन्दी और निस्संगता में मच्छर भी नहीं! लेकिन सपने तो परेशान करते हैं न!—खास कर वे सपने जो बिना नींद के ही पलकों में तैरते रहते हैं।'

'आज मैं भी तो हूँ! 'और उसने मुस्करा दिया!

'यह लो, यह फेंक देता हूँ!' और सिगरेट फेंक कर उसने कहा, 'आज सुलाने का जिम्मा फिर तुम्हारा है!' और उसने टरेसा को पीठ से बाँहों में घेरकर दरवाजे की ओर पैर बढ़ाए।

'छोटे मच्छर न हों, पर यह जो नया मच्छर घर में घुस आया है?'

'कानों में आकर गुनगुनाए तो बह!'

×××

काफी समय बीत जाने पर भी नींद नहीं आ रही थी। दोनों एक पलंग पर एक दूसरे से सिमटे हुए, साँस में साँस घुली हुई, लेकिन दोनों ही नींद के बहाने करवटें बदलते हुए। आखिर महेश्वर ने ही पूछा, 'क्या, होटल एक्सेलिशयर नाम बताया न?—पर यही नाम तो उस सिनेमा हाउस का है!'

'हाँ। जहां हमारी पहली मुलाकात हुई थी। एक्सेलिशयर सिनेमा और होटल एक्सेलिशयर दोनों ही, बल्कि और भी कुछ कन्सर्न एक ही पैरेंट ऑर्गनाइज्ञेशन के अंग हैं। काफी बड़ी बिल्डिंग है हाई कोर्ट के ठीक सामने अहमदाबादवाला बिल्डिंग। नीचे कॉफी हाउस में तो गए होंगे डीयर?'

'कॉफी मुझे एक्सेलिशयर सिनेमा के कॉफीहाउस की ही अच्छी लगती है। लेकिन अब कभी चलूंगा तुम्हारे उस कॉफी हाउस में भी अगर तुम ले चलोगी!—क्या वह भी इसी कंसर्न का अंग है?'

'लेकिन होटल है ऊपर की मंजिलों में। ऊपर ही की मंजिल में होटल के पास ही तो सटा हुआ है वीनस ब्यूटी पार्लर और बार।'

'और जहाँ से तुम्हें पुलिस पकड़ कर ले गई !—मारो गोली टरेसा, उस स्मृति को !—तुम अध्यापक थी न ?—वह प्रोफेशन क्यों छोड़ दिया ?—पे जरूर वह नहीं करता !'

'लंबा इतिहास है डीयर, और कोई खास दिलचस्प भी नहीं !—जानती हूं कि शिकार में अकेली ही नहीं हूँ समाज की इस घिनौनी मनोवृत्ति को इसीलिए कहानी समझकर ही भुलाने की चेष्टा भी करती रही हूँ। याद करते रहने से तो मन में विद्रोह पैदा हो जाता है न !'

'व्यापक रूप से फैली बेइन्साफी का विरोध ही तो विद्रोह है !'

'पर जिन्दगी की कीमत चुकाकर कौन उसका उत्तरदायित्व लेता है ?'

'जिसे जीवन में स्वतंत्रता प्यारी हो ! स्वतंत्रता जीवन का अधिकार है न ! इसी स्वतंत्रता के अधिकार से तो तुम अपना पुराना व्यवसाय छोड़कर मुनाफे का यह व्यवसाय अपना सकी हो।'

कुछ समय तक उत्तर न पाकर वही बोला, 'खैर, जबाब न देना चाहो तो न सही ! लेकिन अपने आपको इस संदर्भ से निकाल कर बौद्धिक स्तर पर तो हम चर्चा कर सकते हैं न !'

'लेकिन मैं तो तुम्हारी तरह बुद्धिवादी नहीं हूँ, बुद्धिमान तो बिलकुल नहीं ! मैंने तो सदा जीवन की प्रेक्टिकल साइड ही देखने की कोशिश की है। अपने कर्मों को कभी किसी आदर्श के ढाँचे में मढ़कर देखने का लोभ नहीं किया। अब तो समझना चाहती हूँ कि वह एक सपना ही था, चाहे जितना हॉरिबल, नाइटमेअरिश रहा हो। क्या तुम यकीन कर सकते हो कि एक टीचर की नौकरी भी नाइटमेअर हो सकती है ?'

'मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझा टरेसा।'

एक लम्बी साँस लेकर वह बोली, 'लाइफ में टीचर बनने की कामना मैंने कभी नहीं की थी, लेकिन एकाएक बेसहारा हो उठने पर और चारा ही नहीं था डैडी की खुदकशी के बाद।'

'खदकशी ?'

कमरे में प्रकाश नहीं था, केवल बाहर के प्रकाश की झाईं भर फैली हुई थी। दोनों की दृष्टि छत पर अटकी हुई थी। एक दूसरे के भावों को पकडने की सुविधा नहीं थी, आग्रह भी नहीं था।

मंत्रमुग्ध सी टरेसा मानों अपने आपसे ही कहने लगी, 'चार बरस बीत गए अब तो। नेशनल गर्ल्स एजुकेशनल सोसाइटी का तब नया भवन बना ही था। भवन पर निर्माणका वर्ष लिखा हुआ है।'

'तुम नेशनल गर्ल्स एजुकेशनल सोसाइटी में सर्विस करती थी ?'

मानों बिना सुने ही टरेसा कहती रही, 'जीवन की यह कैसी विडम्बना है कि एक तो अपने पार्टनर को शरीर के कण-कण और मन के क्षण-क्षण से प्यार करे, और बदले में वह पार्टनर उतनी ही तीव्र घृणा करने लग जाए ? प्यार न सही, ग्रैटिट्यूड भी नहीं ?'

'हम अक्सर भूल जाते हैं टरेसा, कि मनुष्य के कार्यों का पैमाना मनुष्य स्वयं होता है ! धर्म-नैतिकता-कृतज्ञता, ये सब बहाने भर हैं। जहाँ हम इस सच्चाई को भूल जाते हैं वहाँ केवल निराशा ही नहीं, सचमुच हमें दुःख भी उठाना पड़ता है। मनुष्य ने जबजब अपनेआपको भुलाकर अपने कर्मों की कसौटी धर्म-परम्परा,-रूढ़ि आदि को बनाया, संघर्ष की स्थिति पैदा होकर रही और भारी कीमत चुकानी पड़ी है मनुष्यता को। किंतु तुम यह बात किसकी कह रही हो ?'

'अपने पैरेंट्स की, और किसकी कहूँगी ?'

'यानी तुम्हारे डैडी ने खुदकशी की ? भला क्यों ?'

'मम्मी के चले जाने का गम वे सहन नहीं कर सके।'

'क्या अकस्मात या किसी दुर्घटना में······'

'तुम गलत समझ गए डीयर ! शी डिडंट डाई। इफ शी हैड, इट वुड वी डिफरंट। अगर वह तलाक माँगती, तो भी डैडी को उतना सदमा नहीं पहुँचता। आखिर डैडी को जॉइन उसने एक तलाक के बाद ही तो किया था।'

'यू मीन, तुम्हारी मम्मी जीवित है और तुम्हारे डैडी को छोड़कर कहीं चली गई ? यही न ? एंड आल्सो दैट, वे पहले भी किसी को तलाक देकर तुम्हारे डैडी के पास रहने लगा थीं ? अगर गलत समझा होऊँ तो, प्लीज, मुझे माफकर देना डीयर, बट–'

'यू आर राइट डीयर !' और लज्जा से नहीं, शायद वेदना से ही उसकी दृष्टि शून्य की ओर ही अटकी रही। कानके पास जब साँस की वाष्प छू गई तो लम्बी साँस लेकर बोली, 'बीती बातें कष्टपूर्ण होती हैं न ? उन्हें भूल ही जाना चाहिए।'

'भूल पाएँ तो अच्छा ही है, पर भूलती कहाँ हैं वे ?'

'अपने आपको नितांत व्यस्त रखा जाए तो हो जाता है ! फुरसत में ही तो स्मृतियाँ सताती हैं।'

'और राख उलीच कर मैंने चिनगारी को हवा भी दे डाली है !'

''नहीं डीयर !'' और उसने मुँह महेश्वर की ओर फिरा लिया, 'यूँ भी मन का भार कम करने का भी कभी अवसर नहीं मिला। सहानुभूति दिखाकर आज

तुमने मेरा अंतर भिगो दिया है।' और उसकी गलदश्रु वाणी में पुलक कंप भी मुखर हो उठा, 'जन्म लिया मिस व्हीलर बनकर, और तीनेक साल की रही हूँगी कि एक मम्मी को छोड़कर घर-बार-गाँव सबकुछ बदल गया। मिस व्हीलर थी कभी, यह भी बहुत बाद में बड़ी हो जाने पर मम्मी के मुँह से ही सुना, जबकि मिस जैन कह कर पुकारी जाने लगी थी।'

'मिस जैन, यानी तुम्हारे नए पिता हिन्दू थे ?'

'मूल में तो माँ भी हिन्दू थी। बड़ी हुई तो एक अमरीकी सैनिक व्हीलर से प्रेम कर बैठी। शादी हुई, माँ भी बन गई। युद्ध की समाप्ति पर मिस्टर व्हीलर जब अपने देश ले जाने लगे तो उसने इनकार कर दिया। पता नहीं, मातृभुमि का प्रेम था या ··पर बदनामी काफी हुई! डाइवोर्स पाते ही उसने एक ऊगते हुए व्यबसाई सुरेन्द्र जैन से विवाह कर लिया। मम्मी एकदम पश्चिमी सभ्यता में रँगी हुई, लेकिन डैडी, आई मीन मिस्टर जैन अपने प्रेम के बावजूद भारतीयता के गहरे रंग में डूबे हुए थे। मेरे लिए तो अच्छा ही हुआ। दोनों ही नावों में सवारी करती रही। गहरे प्रेम के होते हुए भी फादर मम्मी का मन नहीं पा सके। बी० ए० कर-लेने के बाद मैं दिल्ली ही में एम० ए० में प्रवेश ले चुकी थी कि डैडी की डेथ की खबर पाकर यहाँ आई और सब सुना। अपने बिजिनेस टूर में डैडी जब बम्बई गए हुए थे, मम्मी बाहर से आए किसी अजनबी के साथ लॉकर से सब जेवर-कैश और घर में जो कुछ कीमती कपड़े वगैरा थे, सब कुछ बटोर कर उसकी गाड़ी में बैठकर गायब हो गई! डैडी लौटे तो उन्हें पैड पर लिखा एक मुख्तसिर सा पत्र पड़ा मिला। दूसरे दिन ही गम न सह पाने के कारण उन्होंने आर्सनिक खा लिया !' उसका कंठावरोध हो गया आगे कुछ कह नहीं सकी।

हाथ बढ़ाकर महेश्वर ने टरेसा को आलिंगन में कस लिया और उसके सिक्त कपोल पर अपने कपोल रख कर उसकी पीठ सहलाने लगा। आश्वस्त होने में टरेसा को कुछ समय लग गया। फिर बोली, 'यही तो सजा देती है बीती बातों की याद ! व्यक्ति अपनेआपसे ही बेगाना हो उठता हैं।'

'तो मत याद करो डीयर ! बहुत देर हुई, सो जाने का प्रयत्न करो।'

टरेसा ने जैसे कुछ नहीं सुना। वह कहने लगी, 'दिल्ली लौटकर कॉलेज जाने का तो प्रश्न ही नहीं रह गया था। बेचारा जैन ! बड़ा ही तरस आता है उसपर। मम्मी की वजह से, या पता नहीं क्यों, वह मुझे बहुत ही चाहता था। मैंने कभी नहीं जाना कि वह मेरे रीयल डैडी नहीं थे। उनकी डेथ के बाद सचमुच मैं अनाथ हो गई। मकान तक मम्मी जाने के पहले बेच गई थी, उसी के नाम तो था मकान।

दो सप्ताह के भीतर ही मुझे वकील का नोटिस मिला कि महीने भर के भीतर मुझे मकान खाली कर देना होगा या मैं किराया दूँ।'

'सचमुच परिस्थितियों ने तुम्हारे साथ भयानक मजाक किया टरेसा !'

एक लम्बी साँस दबाकर मानों अपनेआपसे ही वह बोली, 'वट दैट वॉज ओनली द बिगिनिंग ऑफ द एण्ड ! तीन महीने तक किसी तरह उस मकान में रही और······और एक रात नींद से उठकर पाया कि वह नींद नहीं थी। बेहोशी की हालत में कुछ गुंडे मुझे घर से उड़ा लाए थे, उसी हालत में मेरा रेप किया गया। दो दिन और रात उस अंधेरी बन्द कोठरी में मुझे लगभग आधे दर्जन बदमाशों की हविस पूरी करनी पड़ी। जब मैं लहूलुहान अधमरी हो गई तो तीसरी रात के पिछले पहर मेरी आँख अपने ही कमरे के पलंग पर खुली।' और उसने अपनी आँखें पोंछ लीं।

'पुलिस में रिपोर्ट नहीं की ?'

'किसके खिलाफ ?—और दो दिन तक तो चलफिर भी कहां सकी ? पड़ोसियों को मेरे गायब हो जाने का कुछ आश्चर्य ही नहीं था। वे समझे बैठे थे कि दिल्ली लौट गई हूँगी। कुछ ठीक हुई तो इस नेशनल गर्ल्स एजुकेशनल सोसाइटी में सर्विस के लिए अप्लाइ किया। बिना किसी कठिनाई के जब सिलेक्ट हो गई तो सोचा था कि बादल छँट जाएँगे पर भेड़िए वहाँ भी मौजूद थे। किसी भले व्यक्ति को कल्पना ही कैसे हो कि यह सोसाइटी और इसके प्रबंधक ट्रस्ट का मुख्य ट्रस्टी पचास के पार चहुँचा हुआ बंदर की शक्ल का वह सुन्दरलाल फतहपुरिया ही नर के भेस में पिशाच की क्रीड़ाओं में मगन होगा ? पैसे के बल पर आदमी क्या नहीं कर गुजरता ? यह ट्रस्ट और यह सोसाइटी उसकी पाशविक भावना की तुष्टि ही का साधन थी। उसी क्षेत्र में मुझे रहने को क्वार्टर भी मिल गया तो मैं समझी कि मुझपर खास कृपा है। कुछ ही दिनों के बाद मुझे अपने कमरे में रात्रि को उसका स्वागत करने के लिए मजबूर होना पड़ा। प्रिन्सीपल तो पहले ही बदनाम थी और ठहरी उसका खास चमचा। शिकायत करती तो किसके पास, और नौकरी छोड़ देती तो खाती क्या ? मकान भी तो छूट चुका था। लगभग छह महीने तक उस नरक में रहना पड़ा'

'छोड़ो टरेसा, इस दुःख भरे अतीत के इतिहास को ! वर्तमान को ही क्यों न हम थामे रहें और उसे ही अपने अनुकूल मोड़ने की चेष्टा करें ?'

'यू आर राइट।—और अधिक अब कहने को है भी क्या ?—यह होटल एक्सेलिशयर खुला और यहाँ रिसेप्शनिस्ट की वांट अखबार में निकली तो मैंने अप्लाई किया और उस बंदरलाल फतहपुरिया की नौकरी छोड़कर होटल में

रिसेप्शनिस्ट हो गई। इस थोड़े से समय के अनुभव ने काफी प्रेक्टिकल बना ही दिया था, और होटल की नौकरी में तो कहना चाहिए, लाइफ को बाइ नोज़ पकड़ने लायक हो गई। यह नोरा रॉस, जो अब उस वीनस ब्यूटी पार्लर की मालिक है, वहां पहले से ही कॉल गर्ल थी। उसी ने जिन्दगी के नायाब नुस्खे सिखा दिए मुझे। किसी टरेन्स ग्रियर्सन के साथ यह नोरा कुछ दिन पहले ही साउथ-ईस्ट होते हुए जापान तक घूम आई थी। मेरे सामने कोई राह नहीं थी। विवाह के बारे में सोचती, पर जिस राह इतनी आगे बढ़गई थी वहां मनके लायक पात्र कहां से जुटता? दूसरी ओर देख रही थी कि अगर प्रॉमिसक्विटी को हव्वा न समझूँ तो कम-से-कम कोई मेरी विवशता का लाभ तो नहीं उठा सकेगा, और सामान्यतः आराम का जीवन भी बिता सकूंगी। होटल के हेड कुक अब्दुल के साथ मिल कर नोरा ने इसी बिल्डिंग में अपना अलग से वीनस ब्यूटी पार्लर खोल लिया और मुझे भी सहयोग के लिए बुलाया तो तबसे मैं भी उस पार्लर में उसकी पार्टनर बन गई हूँ।'

'और हेड कुक वह अब्दुल?'

'उसे पार्लर का मैनेजर बना दिया गया है। पार्लर में एक बार भी तो है न।'

'तुम्हें अभिनंदन है टरेसा। आखिर तुमने कुछ निर्णय तो लिया। आज की सबसे बड़ी ट्रेजिडी यही है कि हम निर्णय लेने से कतराते हैं। अच्छा-बुरा, इस जगत में क्या है? पति अभाव में मर रहा हो तो पतिको सर्वस्व समझने वाली पतिव्रता पत्नी अपने सदाचार को पति से बढ़कर नहीं समझती! दम तोड़ती अपनी संतान के लिए मां क्या कुछ नहीं कर गुजरती?—प्रश्न यह है कि हम निर्णय लेने से कतराएँ क्यों? इसीलिए नहीं क्या कि इन कायरों को जिम्मेदारी थोपने के लिए कोई मौजूं बहाना चाहिए?—अभावग्रस्त पति हो, मृतप्राय संतान हो तो चल जाता है। और भी मजेदार तथ्य देखा है? पेट की ज्वाला असह्य हो उठने पर ममता की मूर्ति माताएं अपनी संतानही बेच देती हैं, भले ही सब ऐसी न हों। आत्महत्या के द्वारा समस्या का हल वीरता नहीं, चाहे वह तुम्हारे डैडी जैन ही क्यों न हों।'

'अबतो मैं भी वैसा ही सोचती हूँ डीयर।'

'तो जीने के लिए जीवन तुम्हारा हैं। तुम जीवन के रहस्य को पागई हो।'

'यू एप्रूव देन माइ वे ऑफ द लाइफ?—मैंने जो जानबूझ कर तुम्हें धोखा दिया?'

'धोखे की उसमें क्या बात थी? किसी मुसीबत से उबरने के लिए तुम्हें

एक पति की जरूरत थी, एनी एक्स-वाई-जेड फॉर ए स्पेसिफिक एंड लिमिटेड परपज । मैं नहीं तो कोई दूसरा होता । और बिस्तर के साथी के अलावा पति के क्वॉलिफिकेशन्स हो ही क्या सकते हैं ?' और उसने टरेसा को खींच कर अपने आलिंगन में कस लिया ।

कुछ क्षण खोई-सी रही टरेसा ने कहा, 'और यह जो शरीर का सौदा करती हूं ?'

'मन का सौदा तो सारा सभ्य समाज ही करता है, जबकि शरीर के स्तर पर तो मनुष्य पशु ही है । मन के करप्शन पर कोई भवें नहीं सिकोड़ता, जबकि शरीर के करप्शन पर आसमान सिर पर उठा लिया है ! इससे बढ़कर असभ्यता और क्या होगी ?—जाने दो इन भौंडी बातों को डीयर !—अपनी खुद की बात कहूँ ?—मैं समझता हूँ शरीर को जबतक कोई मात्र-आवश्यता समझे तबतक वह पशु है, असभ्य है । शरीर की कामना करके ही मनुष्य सभ्य हुआ है, उसने सभ्यता की मंजिलें पार की हैं । जीवन में यौवन से पूर्ण गुदगुदे सुन्दर शरीर से बढ़कर चाहने लायक है क्या ?—और भीतर का मन अगर उसे कलुषित न करे तो किस पाप की छाया उसे छूने का साहस करसकती है ?'

उत्तर में टरेसा ने भी उसे कस कर जकड़ते हुए कहा, 'और तुमने मेरे मन के प्रकाश को उकसा दिया है डार्लिंग ! जीवन के इस नए मोड़ पर, नई दिशा में मुझे विश्वास बँधता है । नई दिशा ही नहीं, तुमने मुझे अपने स्नेह का विश्वास भी दिया है ।'

महेश्वर ने कोई उत्तर नहीं दिया तो टरेसा ही बोली, 'तुम्हें किसी तरह की आशंका नहीं होनी चाहिए डीयर !. मैं कभी तुम्हें बाँधने की कोशिश नहीं करूँगी । अगर बँधूंगी तो……'

'नो नो टरेसा, नो । हम किसी को बाँधने वाले नहीं हैं । बंधन ही तो नाश है । वी हैव टु बी फ्री—फ्री फ्रॉम ऑल बॉण्डेज । एकदम से मुक्त ।—शरीर के घेरे से छूट कर निस्सीम विस्तार में ।—चारदीवारी के गुरुत्वाकर्षण से छूट कर भारहीनता की ओर, सुदूर अति मानसिक चुम्बकों के अयन में ।—'

'नाउ, नो मोअर ऑफ फिलॉसफी डीयर ।'

'ओ. के.'

□ □

खिसकती मरीचिकाएँ

सूरज डूबने के पहले ही घर में साँझ उतर आती है। खिड़की के नाम दीवार की ऊँचाई पर एक छोटा-सा हवादान, और सामने दरवाजा भी बन्द। तब कालिखपुते वातावरण से समझौता करना ही पड़ता है, और तमसा की कोठरी में चूल्हे के पास ताख में मद्धिम ज्योति की एक चिमनी जलाकर यह समझौता किया गया है। कुरेदने पर प्रकाश को कभी उकसा देने और कभी बुझादेने वाली चूल्हे की लकड़ियाँ भी उस समझौते का एक अंग हैं। लौ के साथ उनसे धुआं भी कम नहीं निकलता। कल आषाढ़ की पहली बारिश हो गई थी। बरसात में कुछ परेशानी तो बढ़ती ही है। बौछार बरामदे को गीला ही नहीं करती, कीचड़ भी कर देती है। बहुत बरस जाए और नाली में कहीं कुछ अटक जाए तो पानी इकट्ठा होकर भीतर भी घुस आ सकता है। सीलन तो भीतर तक हो ही जाती है। ऊपर से पानी जरूर नहीं चूता—वह तो ऐसे घरों में भी रह चुकी है कि झरते हुए छप्पर के नीचे घर के सब थाली-लोटों को फैलाकर पानी उलीचते-उलीचते ही तमाम रात बीत गई है। अबतो मूसलाधार बरसात में भी सामने के किवाड़ अटका देने पर भीतर निश्चिंत सोया जा सकता है! यही क्या कम है?

आज बारिश नहीं है। दिन में छाए हुए बादल शाम तक छँट गए थे। सत्यप्रकाश आठ-नौ से पहले नहीं लौटता। तबतक चूल्हे-चौके से ही नहीं, अन्य कामों से भी उसे निपट लेना होता है। मां-बेटा, दोनों साथ ही खाते हैं। सत्यप्रकाश बाद में कुछ पढ़ता है और तमसा सींना-पिरोना लेकर बैठ जाती है। एकाध घंटे की पढ़ाई के बाद सत्यप्रकाश या तो खुद सो जाता है या तमसा उसे सोने को बाध्य कर देती है। खुद उसके सोने का समय काम के परिमाण से बँधा होता है, घड़ी की सूइयों से नहीं!

सब्जी लगभग बन चुकी है। चूल्हे से कुछ अंगारे बाहर निकाल कर उनपर पतीली रख दी गई! जबतक चपातियाँ बनेंगी, मन्द आँच पर सब्जी पक जाएगी!—पकने का सवाल वैसे है भी क्या? पालक है, नमक-मिर्च डालकर कच्ची

भी खाई जा सकती है। चपातियां भी तो केवल सत्यप्रकाश के लिए ही बनानी हैं। स्वयं उसके लिए तो सबेरे की रखी हुई हैं ही। डालडा के एक छोटे से डिब्बे से उसने एक कटोरी में कुछ घी निकाला। न हुआ, दो-चार पराँटे ही डाल देगी। फर्क पड़ता ही कितना-सा है ? सत्यप्रकाश को पराँटे अधिक रुचते हैं ! रोटी के लिए बेली हुई लोई को उसने मोड़ कर दुहरा किया और सतह पर कुछ घी चुपड़कर चौहरा करके तिकोना बेल लिया। उसे तवे पर डाल ही रही थी कि बाहर से आवाज आई, 'सत्यप्रकाश !'

पराँटे को हथेली में फैलाए ही उसने सामने देखा, एकाएक वह डर उठी। आले में रखी चिमनी की लौ पीठ-पीछे थी, सामने को करीब सारी दीवार पर उसकी आकृति की अजीब छाया फैली हुई थी। सिर से ओढ़नी का पल्ला खिसका हुआ था। हथेली में फैले हुए पराँटे के साथ अपनी छाया में कैसी विद्रूप हो उठी है वह ? और तब भी पुरुष तो पुरुष, स्त्रियां तक कहती हैं कि उस जैसी सुन्दर नारी आसपास कोई नहीं है।

तवे पर पराँटा फैलाकर उसने सोचा कि बाहर सत्यप्रकाश को बुलाने वाला कौन हो सकता है ?—स्वर पुरुष का है। नया व्यक्ति हुआ और उत्तर नहीं मिला तो आप ही चला जाएगा, किन्तु तबभी उसका हाथ नीचे पहुँच गया और खिसकी हुई ओढ़नी का पल्लू खींचकर उसने सिर को ढँक लिया। लकड़ी के जलते सिरे को चूल्हे की दीवार से जरा रगड़ दिया कि अधजले कोयले बिखर गए और आग की लौ ऊपर उठ गई। दीवार पर उसकी छाया भी लौ के साथ आँखमिचौनी खेलने लगी !

तमसा ने आटे से जैसे ही बेलने के लिए दूसरी लोई तोड़ी कि बाहर से फिर आवाज आई, 'अरे भई सत्यप्रकाश, भीतर हो क्या ?' और दरवाजे की साँकल पर हलका-सा आघात भी हुआ।

तमसा झुँझला उठी, ओढ़नी को एकबार और खींच कर सिर ढँका और आहिस्ता से कहा,

'सत्यप्रकाश घर में नहीं है !'—काफी रूखी आवाज है। मतलब है, आगे प्रश्न नहीं। चले जाइए। लेकिन बाहर से फिर सुनाई दिया, 'नहीं है ? कहाँ गया ?—कब तक लौटेगा ?'

तमसा ने झल्लाकर कहा, 'जहाँ नित्य जाता है।—दस से पहले लौटेगा भी नहीं !' और दूसरा पराँटा बेलकर 'फट्ट' की आवाज के साथ तवे पर फैला दिया !—कहा और जा ही क्या सकता था ? जरूर लौट गया होगा। ओढ़नी के पल्ले ने भी समर्थन किया और वह सिर से नीचे खिसक आया। कोई नया ही आदमी था। सत्यप्रकाश के मित्रों की आवाज तो वह खूब पहचानती है।

कि किवाड़ों की सेंध में कुछ आहट हुई, 'देखिए, मुझे सत्यप्रकाश से जरूरी काम था !'

सहसा तमसा इसतरह चौंक पड़ी मानों बगल से ही फन फैलाकर कोई सांप निकल आया हो। ओढ़नी के विद्रोही पल्ले से उसने सिर ढँकने की चेष्टा की तो एकाएक खिंचने से वह फट गया। वस्त्र इतना गल चुका था कि फटा तो आवाज भी नहीं हुई। मालूम ही तब हुआ जब सिर छेद में से बाहर निकल आया और ओढ़नी कंधे पर आ टिकी। दैन्य के इस आकस्मिक प्रदर्शन से क्षुब्ध भी कम नहीं हुई वह, पर कर ही क्या सकती थी? अग्निदृष्टि से उसने सामने देखा। बन्द किवाड़ के अलावा यदि कोई वहाँ होता तो अवश्य भस्म हो जाता ! तमसा के जी में जी आया, भेड़िया हो तो वह बाहर ही है।

पर दरवाजे की इस क्षीण संधि में ही किसीकी दुरभिसंधि-रत दुर्वृत्त आँखें भीतर के इस सारे व्यापार पर अपलक लगी हुई थीं—तमसा की हड़बड़ाहट, ओढ़नी की दुर्गति और जलती लकड़ियों की उठती-बैठती रोशनी तमसा के चेहरे पर सहज इंद्रधनुषीआभा के अतिरिक्त विश्व की जो समस्त रंगीनियां इन दो-चार क्षणों में पोत गई थी, उन आँखों में उतर कर गहरी चेतना में बस गई।

बाहर से ही सुनाई दिया 'सत्यप्रकाश बाहर गया है, यानी उसका पैर तो अब ठीक है, और जबड़े का घाव तवभी कोई खास नहीं था ! यानी भलाचंगा है ! न ?'

अलक्ष्य को भेदकर किसी कुदृष्टि का बिच्छू मानो उसके चेहरे पर डंक मार गया ! उसने नाक तक घूँघट खींच कर कहा, 'ठीक ही है !—काम से बाहर गया है !'

'मुझे खुशी हुई। नया आदमी हूँ, पर दुश्मन नहीं ! और पहलेपहल तो हर आदमी नया ही होता है। मैं उसका नया मास्टर हूँ।—परसों सोमवार को उसका स्कूल खुल रहा है न !'

झुंझलाकर तमसा ने जलती हुई लकड़ी चूल्हे से बाहर निकाली और सिरे को राख में ठूँस दिया। लौ बुझ गई तो सारे कमरे में उछलती-कूदती रोशनी की क्रीड़ारत बच्ची भी सो गई। दीपक की सहमी-सी रोशनी में वह उठी, और किवाड़ के पास जाकर बोली, 'उसका स्कूल तो खुलेगा अगले सप्ताह बृहस्पति को। आवश्यक कार्य हो तो सवेरे आइए, नौ बजे के बाद !'

'कहने यह आया था कि उसे सरकारी स्कूल में प्रवेश मिल गया है। फीस भी लगभग माफ ही समझिए !—सरकारी स्कूल परसों ही खुलेगा !'—सरकारी स्कूल ! चाहती तमसा भी तो यही थी, किंतु वहां फीस जो लगती है ! सत्यप्रकाश

ने कुछ कहा तो था सरकारी स्कूल में प्रवेश की संभावना के वारे में !—वही मास्टर है क्या उसका ?

बाहर से ही महेश्वर ने कहा, 'स्कूल में छात्रकोश है, उससे पुस्तकें भी मिल जाएंगी, और सत्यप्रकाश अपवी तेज बुद्धि का परिचय दे तो कुछ छात्रवृत्ति का भी हकदार हो सकना है !—और हाँ देखिए, उस दिन सिनेमाघर पर लड़कों के साथ हाथापाई में उसके जो पैसे चोरी चले गए थे न ! पूरे तो शायद नहीं, पर पाँच रुपये साढ़े नौ आने जो वे वसूल कर पाए, वह मैं ले आया हूँ । पुलिस में रिपोर्ट मेरे मार्फत ही हुई थी न !'

और तमसा को कुछ भी सोचने का अवसर न देकर दरवाजे की संधि कुछ विस्तृत हुई । चिमनी की मद्धिम रोशनी और रंगीन चश्मे से ढँकी होने के बावजूद तमसा ने अनुभव किया कि रंगीन चश्मे से ढँके किसी दृष्टि के दो गिद्ध उसके सारे शरीर को नोंच डालने को उद्यत उस सन्धि में आ खड़े हुए हैं । नाक तक के घूँघट को उसने चिबुक तक खींच लिया । उधर ताजे फलों से भरी एक डलिया के प्रवेश से सन्धि और भी चौड़ी हो गई ! तमसा की दृष्टि फर्श पर, कान चाहे दरवाजे पर ही लगे हुए थे, जहाँ से सुनाई दे रहा था, 'सत्य प्रकाश बहादुर लड़का है, और इस उमर में ही उसको आपने अपने पैरों पर खड़े होने की तालीम दी है, आप बहुत ही लायक माता हैं । उस दिन के बाद देखा नहीं उसे ! चोट खा आया था न ! जी जाने कैसा कर रहा था । मन करता था कि आऊँ, पर आप कहीं गलत न समझ जाएँ ! इन दो महीनों से बराबर अपनेआपसे लड़ता झगड़ता आ रहा हूँ । फिर अंतरात्मा ने कहा, आप जैसी सरल और विदूषी महिला क्यों किसी को गलत समझेंगी ?' और सन्धि ने धोखा दिया, महेश्वर दरवाजे में खड़ा था ।

तमसा को लगा कि यह तो नई ही परिस्थिति है । गुण्डे बदमाश साफ पहचाने जाते हैं और उनसे पेश पाना वह जानती है । किन्तु यह दुर्वृत्त व्यक्ति··· और उसे सुनाई दिया,

'नहीं बिठाना चाहतीं तो कोई हर्ज नहीं ! नए आदमी का विश्वास इस जमाने में समझ बूझ कर ही करना चाहिए ! ये उसके दाखले के जरूरी कागज-पत्र हैं, उसे दे दीजिएगा । न समझ पाए तो कल मुझसे मिलने के लिए कह दीजिएगा ! और, अगर इस लायक न समझें कि सत्यप्रकाश मुझसे मिले······'

सामने से कुछ हट कर बात काटते हुए तमसा बोली, 'आप अन्याय कर रहे हैं । मैं तो अपनी गरीबी के खयाल में थी । बैठने के लिए कहूँ तो बिछाऊँगी ही क्या ?

महेश्वर कुछ आगे बढ़ा। एक किवाड़ की आदत थी कि विना आड़ पाए खुला रहता ही न था, महेश्वर का हाथ उठते ही वह देहली पर लौट आया। तमसा ने दूसरे पल्ले को भी धक्का दिया। दोनों पल्ले गुथ गए तो तमसा ने मुँह फिराया और देखा कि आगन्तुक दरवाजे वाली दीवार से सट कर नीचे फर्श पर ही बैठ गया है। खैर हुई, बाहर से कोई ताक-झांक करे तो भी अतिथि दिखाई नहीं देगा। छत से लटकी हुई अलगनी पर बिस्तर टँगे हुए थे। तमसा ने एक जीर्ण दरी खींची धीमे से कि खींचतान में कहीं फट न जाए। महेश्वर कहता ही रहा, 'क्यों तकलीफ करती हैं ?'

चौहरी करके, कि उसके छेद भी छिप जाएँ, तमसा ने दरी महेश्वर की बगल में ही बिछा दी तो महेश्वर ने और तकल्लुफ नहीं किया। उस पर बैठते हुए बोला, 'लीजिए, मुझे भी मेहमान बन जाना पड़ा ! पर आप अपने काम में खलल मत पड़ने दीजिए ! आप खाना बनाएँ। तबतक मैं आपको समझा देता हूँ सत्यप्रकाश को क्या-क्या करना होगा !'

'आपका समय बरबाद होगा। खाना तो मैं बाद में भी बना लूँगी !'

डरिए नहीं ! भूखा होऊँ, पर देखते ही खाने पर टूट नहीं पड़ता !' और वह मुस्करा उठा !

'किसीको खिला सकूँ, ऐसे भाग्य कहाँ हैं ?' और वह चूल्हे के पास ही सिकुड़ कर बैठ गई। घूँघट अब नाक पर था, तमसा जान कैसे पाती कि ओढ़नी के छेद से पीठ पर उसकी वेणी लहरा उठी है !

'यह रहे सत्यप्रकाश के पाँच रुपये साढ़े नौ आने ! भाग्य ही की बात है कि समय पर पहुँच गया, वरना हादसा गहरा हो सकता था। जोखिम के ऐसे काम में बच्चे को नहीं लगाना चाहिए आपको !'

उत्तर की अपेक्षा थी पर सामने गुडुम-सुडुम गुड़िया में कुछ भी हलचल नहीं हुई तो महेश्वर बोला,

'आप जैसी साहसी महिला पर किसे नाज न होगा ? जब सुना कि सत्य-प्रकाश के पिता भी मुझ जैसे टीचर ही थे, तो स्वाभाविक था कि उसके लिए दिल में एक अपनापन पैदा हो गया। आपने एक मिडिलक्लास टीचर की पत्नी के नाते हम सब टीचरों का सिर ऊँचा उठाया है !' फिर चुप्पी !

महेश्वर भी क्या कहे ? तो कुछ कहने के लिए ही तमसा ने पूछा, 'जल पिएँगे ?'

'पिलाएँगी तो जरूर पिऊँगा ! खाना तो, खैर आप खिलाएँगी नहीं। साफ साफ देख रहा हूँ आप भी नहीं खाएँगी शायद। इतने से आटे से क्या होगा ?'

तमसा उठी ।—नहीं, देह बल्लरी में कहीं दोष नहीं है । परंडे के ऊपर लकड़ी की टाँड पर से उसने एक पीतल का गिलास उतारा । फिर मटके के पानी से भरकर महेश्वर के सामने रखते हुए वह बोली, 'खिलाकर आपका अपमान नहीं करूँगी । जल पीकर ही संतोष कर लीजिए । यहाँ का कदन्न गले में उतरने के बाद तो कई दिन तक आप को भूख ही नहीं लगेगी ।'

'इसीलिए क्या आप एकही वक्त खाती हैं ?'

'इतनी पुण्यात्मा कहाँ हूँ ? मेरे लिए सवेरे का बचा हुआ पड़ा है !'

'इच्छा तो होती है कि प्रसाद का कुछ अंश लेकर मैं भी पुण्य बटोर लूँ,' और जल पीकर उसने गिलास नीचे रखा तो तमसा ने उठाकर मोरी पर रख दिया और बोली,

'कहूँ कि आज और आटा ही नहीं है तो विश्वास नहीं करेंगे । गेहूँ तो है, आज पिसवा नहीं पाई । कल तो पिसवाना ही पड़ेगा !' और वह पुनः चूल्हे के पास बैठ गई पूर्ववत सिकुड़ कर ।

'तो उधार रख लीजिए !' मुस्कराते हुए महेश्वर ने कहा ।

'उधार वहीं उचित है, जहाँ ब्याज चाहे न सही, मूल तो कम से कम मिल जाए । पहले ही आपका ऋण है सिर पर दस रुपये का !'

'उसमें तो तय हुआ था कि सत्यप्रकाश ऐवज में मुझे अखबार दे जाया करेगा ?'

'पर अखबार वाले को तो कीमत चुकानी पड़ती है । और एक अखबार से कटता ही कितना सा है ?'

'मेरी भरपाई तो उसके मुनाफे से होगी अखबार की कीमत आप क्यों देंगी ? पर देखिए, बातों ही बातों में आपको देर हो जाएगी । चूल्हा बेकार जल रहा है । कह चुका हूँ, आज्ञा पाए बिना लक्ष्मण-रेखा पार नहीं करूँगा । आप रोटी बनाइए, बातें भी चलती रहेंगी । दो-चार ही तो बनानी हैं न ?'

दो-चार ही क्या, बातें या रोटियाँ ? पर वह चुप रही । आटे की परात को सामने खींचा और आटे से लोई तोड़कर चकले पर रखी । सिरे से राख में दबी लकड़ी निकाल कर अंगारों को उलीचा, फिर पास में रखी फुकनी उठाई, कुछ झुककर एक फूंक मारी कि लकड़ी भक से जल उठी । मुग्ध होकर महेश्वर ने निष्पलक देखा कि तमसा अनजान होकर रोटी बेलने लगी है !

'ये पैसे तो रख ही लीजिए ! बाकी साढ़े चार रुपये का मैं जल्दी ही प्रबन्ध कर दूँगी । जब तक हाथ पैर चलते हैं भीख क्यों माँगू ?' नतदृष्टि ही तमसा कह रही थी !

'भीख देकर आपका अपमान करूँगा, इतना ओछा हूँ यह आपने कैसे सोच लिया ?'

'यह मैंने नहीं सोचा। किन्तु सत्यप्रकाश से आखिर आपका संबन्ध ही क्या है ?' वही नत दृष्टि, !

'मैं उसका टीचर तो हूँ, हो ही गया हूँ ! विद्यादान इस युग में ऋण नहीं रह गया। गुरुदक्षिणा हर माह सरकार देती है। गुरु का फर्ज है और कर्ज है कि वह शिष्य की सहायता करे, यह भी क्या आप जैसी पंडिता, विदूषी महिला को समझाना पड़ेगा ……?'

'मैं पंडिता... किसने कहा आपको ?' और उसके हाथ चकले पर ही रुक गए, दृष्टि वैसीही नत !

'सत्यप्रकाश ने न कहा होता तो भी क्या आपकी बातचीत से ही नहीं समझा जा सकता ?'

'माँ-बाप के ज्ञान के बारे में संतान जान ही कितना-सा सकती है ?—आपके बच्चे आपकी विद्वत्ता के बारे में कितना जानते हैं ?'

'कहा न, आपकी विद्वत्ता आपकी बातचीत खुद प्रकट कर देती है। रहा सवाल मेरे बच्चे का, सो कक्षा के सभी बच्चे तो जानते हैं !' और वह मुस्करा दिया !

'कक्षा के नहीं, आपके अपने बच्चों के बारे में कह रही थी !—सत्य की उमर के न हों तोभी—आखिर सत्य के दुखदर्द को बाप के दिल के सिवा कौन समझ सकता है ?' और घूंघट के झीने आवरण में, मानो जल की सतह के नीचे दो स्निग्ध मछलियाँ झलक कर फिर गहरे पानी में डूब गईं।

अभिभूत महेश्वर ने बात बदल कर उत्तर बचा लिया, कहा, 'पढ़ीलिखी तो हैं आप निश्चय ही। तब भी कहां तक पढ़ी हैं ?'

तमसा ने भी उत्तर बचा लिया और कहा, 'मेरा चूल्ले का काम तो हो गया।—चाय पिएँ तो कुछ उपाय करूँ ? दूध के लिए बाहर देखना होगा और प्यालेवाले नहीं, जंगलियों की तरह गिलास में पीनी होगी !'

'पिलाएँ तो चुल्लू से भी पीलूंगा, पर बाहर से लाकर कुछ बनाने का प्रयोजन नहीं है।'

तमसा ने आग्रह नहीं किया। आटे की खाली परात में पानी डालकर अपने हाथ धोए, फिर जलती हुई लकड़ी के सिरे को परात के पानी ही में डुबो कर बुझाया और चूल्हे के सहारे खड़ा कर दिया। चिमटे की सहायता से भीतर जलते

हुए अंगारे निकाले और उलट कर उनपर तवा रख दिया, ताकि गीले हुए विना वे बुझ जाएँ और बरवाद न हों।

तमसा ने कहा, 'अधिक समय हुआ तो बहूजी अप्रसन्न होजाएँगी, और तब सत्यप्रकाश को जितनीकुछ सहायता की आशा है, वह न मिल पाएगी!-मैं कह दूंगी, वह कल मिल लेगा आपसे।'

'कितनी चतुराई से आप अपनी विद्वत्ता का प्रश्न बचा गईं!'

'आपको बहम है। विश्वास कीजिए मैंने कभी स्कूल का मुँह भी नहीं देखा!'

'इतना तो मैं जानता हूँ कि स्कूल का मुँह देखने से ही विद्वत्ता नहीं आजाती!'

वर्तन समेटकर वह उठ खड़ी हुई कहती हुई, 'पर स्कूल के बाहर उसके माप का पैमाना कहाँ है?'

'आपके पति ने आपको घर पर पढ़ाया होगा! वे भी तो विद्वान् रहे होंगे!'

समेटे बर्तनों को परंडे के नीचे रख कर वह बोली, 'देखिए, अभी मुझे सचसुच बहुत काम है!'

महेश्वर भी उठ खड़ा हुआ और बोला, 'जाने के लिए कहना नहीं होगा। चल ही रहा हूँ! ये कागज सत्यप्रकाश को देने के रहे। परसों वह स्कूल जरूर पहुँच जाए। न हो तो वहीं मिल लेगा!'

'आपको कष्ट हुआ!' तमसा ने कहा।

'एक और निवेदन था! गलत तो नहीं समझेंगी?'

'तो जाने दीजिए, कहने की जरूरत ही क्या है?' आवाज में स्पष्ट उदासीनता थी!

नीचे दृष्टि करके महेश्वर ने कहा, 'गलत से मेरा मतलब···सत्यप्रकाश ने कहा था कि आप पास–पड़ोस के कपड़े भी सिँया करती हैं···'

'पेट भरने के लिए और भी बहुतकुछ मजदूरी करनी पड़ती है मास्टर साहब!'

'यही तो आपमें श्रद्धा पैदा करता है! मेरे कुछ मित्रों के कपड़े हों तो···'

'अवश्य सीं दूंगी, मित्रों ही के क्यों, आपके भी! मजदूरी में लज्जा किस बात की?–पर अभी नहीं, अभी काम की कुछ भीड़ हैं! उससे निपट लूँ तो सत्य के द्वारा कहलवा दूंगी!'

दरवाजे की ओर बढ़ते हुए हाथ जोड़ कर उसने कहा, 'अगर फिर कभी···

'आए' तो बहूजी को लेकर आइएगा ! आप यह मुहल्ला नहीं जानते, भलाई यहाँ नहीं है···'

'अगर बहूजी न हों तो क्या आना मना होगा ?' मुस्करा कर महेश्वर ने कहा।

'सत्यप्रकाश है। कुछ बात हो तो उससे कह दीजिएगा–' और आगे बढ़कर उसने किवाड़ खोलने के लिए पल्ला पकड़ लिया तो महेश्वर को आगे बढना ही पड़ा। भूखी दृष्टि में तमसा को समस्त भर कर उसने हाथ जोड़े, और जैसे ही वह दरवाजे के बाहर हुआ कि तमसा ने दरवाजा भिड़ा लिया। बाहर महेश्वर को लगा कि भीतर न केवल साँकल ही अटकाई गई, बल्कि ताला भी लगा दिया गया।

यूँ अमूमन साँकल भी तबतक नहीं लगाई जाती जबतक कि सत्यप्रकाश लौट नहीं आता। पर जैसे तमसा अपने मनसे भी डर चुकी है। छाती पर हाथ रखा उसने। कबसे भीतर ही भीतर भूकंप मचा हुआ है वह जान ही नहीं पाई ! भूकंप अब आगे बढ़ गया है, पर यह देखना तो शेष है ही कि क्या-क्या वह विध्वंस नहीं कर गया है !

एकाएक ही तमसा को अनुभव हुआ कि बहुत गरमी है, सारा बदन पसीने से चू रहा है।—कब से ?—भूल ही गई है, अपने से नितांत अनुपस्थित–बेगानी।—इस तरह बेबस होने से कैसे काम चलेगा ? वह बच्ची नहीं है, उसे भय ही क्या है ?—अनायास उसने सिर का आँचल नीचे खिसकाया तो ओढ़नी ही नीचे फर्श पर गिर पड़ी।—छेद में चोटी के उलझ जाने से ही पीठ पर टिकी हुई थी—क्या समझा होगा उसने मनमें ?—सतर्क रहना चाहिए था। तमसा ने फर्श पर से ओढ़नी उठाई, जहाँ फटी है, वहाँ सीं डालना चाहिए। पर बीच का सारा हिस्सा ही तो गल चुका है। अच्छा, गला हुआ हिस्सा निकाल कर किनारों को जोड दिया जाए तो क्या दो-एक माह और नहीं धक जाएगी ? आज ही कर डालना चाहिए। कुछ छोटी हो जाएगी, पर घरमें तो सिर ढँकने को चलेगी। फटे हिस्से को कमर में खोंस कर ढंग से ओढ़ा। एक उड़ती नजर अपने शरीर पर डाली··· नहीं, बुरी नहीं लगती—काँच उधर बालकृष्ण की मूर्ति के पीछे है।—नहीं–नहीं, क्या प्रयोजन है उसके अच्छा दीखने का ?—आग लगे इस शरीर को। और–और स्त्रियों से अच्छी क्यों लगती है वह ?

तमसा ने एक लम्बी साँस ली। वह विधवा है। उसका पति एक मास्टर··· 'था', है कहाँ अब ? था तब भी दीन-हीन, शंकालु···पागल।—और तबतो वह और भी अच्छी थी दीखने में, अच्छाई के चढ़ाव पर !—सच्चरित्र ही था पति··· वह भी है। और पढ़ाई–लिखाई की क्या कोई सीमा है ?—किन्तु तबभी उस चढ़ती

हुई जवानी का सुन्दरता का कोई लक्ष्य नहीं था।—अब तो यह निरर्थक है भार मात्र, जिसे ढोना भी महँगा पड़ रहा है।

क्यों आया था यह मास्टर ?—पुरुष के ढोंग और बहाने वह खूब समझती है।—कपड़े सिलवाना, नौकरी तलाश कर देना, आर्थिक सहायता—नारी का कवच भेदने के ये शस्त्र नए नहीं। वह सदा उनसे बचती आई है। पर नारी का कवच—क्या उसका पति ही उसका कवच नहीं होता ? तन और मन से सटा हुआ यदि वही खिसक पड़े ?—खिसक पड़ने के पहले भी क्या वह तमसा को अपने में समा सका था ? कितना तंग नहीं था वह कवच ? जिस निधि की उसे रक्षा करनी थी, उसी को क्या उसने जकड़ना, सुखाना नहीं शुरू कर दिया था ?

हाय-हाय ! क्या कहती है वह ?—सत्यप्रकाश उसीका तो वरदान है ! सूखी है, या पल्लवित पुष्पित हुई है ?—सत्यप्रकाश, अपने ही शरीर का टुकड़ा, जिसे अपना रक्त देकर गढ़ा और दूध पिला कर पोसा है, जिसके सहारे वह जी रही है···न होता सत्यप्रकाश तो वह जीवित क्यों रहती ? उसके जीवन का तब अर्थ ही क्या था ? तमसा का जीवन तमसा के लिए नहीं, सत्यप्रकाश के लिए है। इसीलिए वह जीवित रही है, और जीवित रहेगी। सत्यप्रकाश को माँ चाहिए, बाप चाहिए—बाप न रहा तो मां ही उसका बाप भी बनी। मां तो है ही वह !

बाप बनी वह ?—इस उम्र में ही उसे अखबार और टिकट बेच कर गृहस्थि का भार बटाना पड़ रहा है।—बाप होता तो···'सत्यप्रकाश बड़ा बहादुर लड़का है।—इस उमर में ही उसे अपने पैरों पर खड़े होने की तालीम दी है आपने।—आप एक बहुत ही लायक माता है।'—लायक है वह या नालायक ?—उस दिन चोट लगी उसे तो उसकी सार-सम्हाल इस मास्टर ने की। तो क्या··· और अभी भी स्कूल में प्रवेश दिलाना, फीस माफ करवाना···पौरुष से भरी बापकी सुरक्षात्मक शीतल छाया तमसा क्या दे सकी है सत्यप्रकाश को ?—व्यर्थ है यह दम्भ। वह केवल मां है मां उसकी ! है तो उसके मातृत्व का ही है कुछ अर्थ ! शेष सब प्रवंचना है, एकदम निरर्थक। तमसा की समस्त सार्थकता का केन्द्र है केवल सत्यप्रकाश। यह मास्टर ही क्यों, शेष सम्पूर्ण सृष्टि उसके लिए निरर्थक है, एकदम से व्यर्थ।—और जब फर्श पर फैले पैसे, नोट, और कागज तथा फलों की टोकरी उठाकर यथास्थान रखने लगी तो तमसा की आँखें अनायास ही छलछला उठीं। उसका ध्यान ही तब टूटा जब दरवाजे की साँकल की खनखनाहट के साथ सत्यप्रकाश के आकुल कंठ की सुधाभीनी लहराती वाणी उसके कानों में गूँज उठी, 'मां, मां !'

अरे, साँकल कब लगा दी मैंने ?-मनही मन कहकर उसने आँखें पोंछ लीं !

सत्यप्रकाश जब भीतर घुसा तो उसे सारा घर बदला–सा दिखाई दिया, मां भी ! वह स्वयं भी तो हवा पर उड़ा चला आ रहा है ! क्लारा के साथ उसने अभी अभी अंग्रेजी फिल्म देखी है ! मँगरू ने और एक पाँच का पत्ता पकड़ा दिया है उसे। गई बार का रुपया तो खैर, उसने माँ को नहीं दिया, पर आज वह माँ को बता देगा ! एक पाँच का नोट और, और फिर एक दिन जाकर मास्टरजी को उनके रुपए लौटा आएगा ! उसने हल्के स्वर में कहा, 'माँ आज तेरा मुँह देखा था न?–सब अखबार बिक गए ! और मँगरू ने भी पाँच रुपए लौटा दिए हैं। बाकी पैसे भी जल्दी ही लौटाने को कहा है ! इन्हें सम्हाल कर रखदे। पूरे दस होते ही उन मास्टरजी का चुकाना है न ! ·· लेकिन तू···गुमसुम क्यों है माँ?'

तमसा ने अपनेआपको सम्हाल लिया, और कहा, 'हाथ-मुँह धोले और खाना खाले ! कितनी देर होगई है ?'–पाँच रुपए साढ़े नौ आने वह टीचर अभी ही दे गया है। लौटा देना चाहती थी, पर बातों ही बातों में याद ही नहीं रहा। अभी ही तो रखे हैं उसने पोटली में बाँध कर मटके में !

सत्यप्रकाश ने कमीज उतारी तो नीचे फटी हुई बनियान देखकर माँ ने कहा, 'अभी इन पैसों को सहेज रखने की जरूरत नहीं है। कल दो बनियान खरीद लाना। परसों तेरा स्कूल खुल रहा है !'

'परसों ?–भूल गई न ? बृहस्पतिवार को अभी पाँच दिन हैं, पूरे पाँच !–बनियान नहीं माँ, पहले तेरी साड़ी आएगी, तब मेरे कुछ और !' और वह मोहरी की ओर बढ़ा तो ताख में रखी फलोंकी टोकरी पर उसकी नजर अटक गई ! 'फल खरीद लाई ?–इतने सारे ?–अभी तो सिर पर कर्जा है माँ !'

'खरीद कर नहीं लाई रे !' फिर स्वरको मानों कुछ सिकोड़कर, ताकि दुराव के तंग मार्ग से निकलने में उसे बाधा न हो, उसने कहा, 'तेरे वे टीचर दे गए हैं !'

'टीचर ? 'उसने मूंह फिराकर कहा, 'टीचर कौन वे महेश्वरजी ?'

'अच्छा !–महेश्वरजी है क्या उनका नाम ?–कह गए हैं वे उनका वह सरकारी स्कूल परसों खुल रहा है, और तुझे वहां प्रवेश मिल गया है ! चाहता था न तू ?–फीस भी शायद माफहो जाए ! पुस्तकें भी···मेरी ओर इस तरह क्या देख रहा है ?–धोलिया मुँह ?'

शायद सत्यप्रकाश ने आगे का कथन नहीं सुना। टीचरजी घर पर आए, और वह मन ही मन उन्हें बाहर खोजता रहा। मिलने की कितनी इच्छा थी उसकी और घर पर भी ले आना चाहता था, पर माँ के डर से ही तो बचता रहा है।

'क्या सोच रहा है रे ?—'

'कुछ नहीं माँ।' और वह उठ खड़ा हुआ। देखा कि हमेशा के मुताबिक अँगोछा लिए माँ पास नहीं खड़ी है तो परंडे की खूँटी पर टँगे छन्ने को उठाकर उसने मुँह पोंछ लिया।

'फिर उस कपड़े से हाथ-मुँह पोंछे?—यहीं तो रखा है अँगोछा?—अरे, कहाँ गया वह?—ओह, वहाँ है! उसको पानी पिलाया था न? सवेरे धो लूंगी। कह देता तो दूसरा कपड़ा खोज देती।'

'फल इतने सारे क्यों रख लिए मां?' निवाला मुँह में डालते हुए सत्यप्रकाश ने पूछा।

'मानें तब न!—चोट लगी तबसे मिला नहीं न तू, उसी की शिकायत कर रहे थे, और चिंता भी!'

'मामूली-सी चोट थी, यह खुद उन्हींने कहा था। पर प्रवेश कैसे ले लिया उन्होंने मेरा? उसके लिए तो टी० सी० की जरूरत होती है:—टी० सी० नहीं समझी? ट्रांसफर सर्टीफिकिट, एक स्कूल से जब दूसरे स्कूल में जाना हो तब पहले स्कूल से उसे लेना होता है।'

'सो मैं क्या जानूं? कहते थे, छात्र-कोष से पुस्तकें भी मिल जाएँगी। चाहता था न तू यही?'

'वहाँ पढ़ाई अच्छी होती है न! उस दिन पहले पहल जब मिला था तो यूं ही कह दिया था। पर क्या किसी का इतना अहसान लेना अच्छा होता है? गरीबी को दूसरों पर प्रकट करना, तू ही तो कहती थी, गरीबी से भी ज्यादा दुखदाई होता है।'

कहे या न कहे कि पाँच रुपए साढ़े नौ आने भी वह लौटा गया है? सच ही तो है, आत्मसम्मान की शिक्षा वह स्वयं ही तो देती आई है उसे!—कुछ भी तो नहीं हुआ, फिर भी क्यों मन ही मन वह अपने आपको अपराधी-सा अनुभव करती है?

और सत्यप्रकाश?—महेश्वर उसकी अनुपस्थिति में घर आया,! घर लाकर मां से मिलाना ही तो वह भी चाहता था। कितनी प्रशंसा की है उसने मां की उनके सामने? आज वे खुद ही चले आए! मां को कोई बाधा नहीं हुई? अगर वह खुद लेकर आता तो—पर उसका महत्व ही क्या है जो नष्ट हो गया? कुछ अखबार बेच लेता है, क्या इसी से गृहस्थि का मालिक हो गया है वह? काम तो मां की कमाई से ही चलता है, पर तो भी भार उठाने को उसके स्कंध उतावले हो उठे हैं। इसीलिए तो उसने कहा था कि बनियान नहीं, पहले मां की साड़ी आएगी। उस दिन मां ने ही तो कहा था कि किसी आवारा के साथ उसे देखकर लोग मां के बारे में क्या

कहेंगे। आज वह फलों की टोकरी तक लेकर आ गया और मां को कुछ बाधा नहीं हुई ?

सत्यप्रकाश ने माँ की ओर देखकर कहा, 'अरे, तूने हाथ भी धो लिए ?- गरम रोटी कुछ भी नहीं खाई ! अच्छा मां, अब तो मैं छोटे बच्चों को तो पढ़ा सकता हूँ। एकाध ट्यूशन कर लूँ ?'

'और खुद कब पढ़ेगा ? अब तो शाम को अखबार बेचना भी कम करना होगा। खूब पढ़ना हैं तुझे ! और अच्छा पढ़ लिया तो वजीफा भी मिल सकेगा। तेरे वे टीचर ही कह रहे थे।'

टीचर ? हाँ। सत्यप्रकाश ने कहा, 'अच्छा मां, ये पाँच रुपए तो उन्हें लौटा दें न ? घर पर रहे तो शायद खर्च हो जाएँ।'

'सभी चुका आना। वे भी पाँच रुपये साढ़े नौ आने पुलिस थाने से ले आए हैं। मुझे दे गए हैं। कल सबेरे जाना उनके पास। उनके रुपये लौटा कर अपने प्रवेश के बारे में भी, जो कुछ तुझे पूछना समझना हो, समझ लेना।'

'सचमुच पुलिस ने पैसे लौटा दिए ? वे ही तो कह रहे थे पुलिस से पैसा आसानी से नहीं मिलता।'

सत्यप्रकाश ने आँखे फैलाकर मां की ओर देखा, तमसा उसीकी ओर देख रही थी, पर उसकी दृष्टि का संधान पाते ही उसने दृष्टि झुका ली। सत्यप्रकाश को अजीब सा लगा। उसने भी हाथ धो लिए।

सारा वातावरण अस्वाभाविक हो उठा था। तमसा बर्तन समेट कर उठ खड़ी हुई। दोनों के मन के गहरे कोने सिक्त और भर गए थे, जिसे दोनों ही अनुभव तो कर चुके थे, पर समझ नहीं पा रहे थे।

□ □

पुष्पकारोह

तमसा सारी कान बनी दरवाजे से सटी बैठी थी। इतनी रात गए भी सत्यप्रकाश लौटा न था। इन कुछ दिनों से वह बड़ी देर करके लौटता है। रंग-ढंग भी कुछ अजीव से हो गए लगते हैं। कहीं नए स्कूल के वातावरण का प्रभाव तो नहीं है ? अखबार अब भी बेचने निकलता है, पर पहले जितने उत्साह से सब वेच लेता था, अब सब बेच नहीं पाता। इससे तो वन्द करदे वही अच्छा। अब तो उसे अपनी पढ़ाई में भी अधिक समय देना चाहिए। परिश्रम करके अच्छी श्रेणी में पास हो तभी तो स्कूल बदलना सार्थक होगा !

एक बात और वह लक्ष्य करती आ रही है। अखबार सब न बिकें तब भी पैसे का उसे अभाव हो, ऐसा नहीं लगता। अपने खर्च के लिए मां से पैसे भी नहीं माँगता। कभी-कभी तो बाजार से सौदा लाने पर भी जेब में पैसे बच जाते हैं तो कहना पड़ता है उसे, कि भूल से दूकानदार को ही कम पैसे दे आया है। अपने ऊपर पहले से कुछ खर्च भी अधिक करने लगा है। तमसा को आपत्ति नहीं है, किन्तु मां से कभी छिपाने की तो उसकी आदत नहीं थी। यह अतिरिक्त पैसा कहाँ से आता है ? कहीं मँगरू-जमना की संगत में तो नहीं जम गया ? वे बहुत बदनाम हैं—जुआँ, चोरी, शराब पीने तक की अफवाह सुनी है उसने—पूछे तो भी कैसे ? सत्यप्रकाश से वह बड़ी-बड़ी आशाएँ लगाए बैठी है। यदि कहीं वह कुछ भटक गया तो तमसा के जीवन की साधना ही नहीं, सारा जीवन ही व्यर्थ हो जाएगा। क्या करे वह ? किससे सलाह ले ? यहीं तो पति का अभाव खलता है उसे !

विचारों में जाने कब तक खोई बैठी रही कि दरवाजे पर आहट हुई। दरवाजे से हटना था कि दरवाजा खुला और उसकी चर्र-चूं की आवाज के साथ ही सत्यप्रकाश ने प्रवेश किया। तमसा ने तमक कर कहा, 'फिर इतनी देर लगा दी ? आज भी क्या कोई मुफ्त सिनेमा दिखाने वाला मिल गया था ?'

सत्यप्रकाश ने एक नजर भर मां को देख लिया। जवाब न देकर बगल के अनबिके अखबार एक कोने में पड़ी जलाने की लकड़ियों के ढेर पर पटक दिए, तो तमसा ने फिर पूछा, 'और ये इतने सारे अखबार ?'

'नहीं बिके ! इन्हीं के लिए तो चक्कर काटता रहा। न खरीदे कोई तो क्या करूँ ? रिश्तेदार तो कोई बैठा नहीं है कि बिना जरूरत तरस खाकर दो-चार खरीद ले।' और कमीज को उतार कर हस्बमामूल करीने से खूँटी पर लटकाने की बजाए उसने अखबारों के ऊपर ही फेंक दिया ! मां गुस्सा करती है तो क्या वह झल्ला भी नहीं सकता ? समझती है कि घर के बाहर पैर रखते ही पैसे की बरसात होने लगती है, लेकिन जैसे वही है कि घड़े को उलट देता है ताकि पानी नीचे ही फिसलता चला जाए। और सिनेमा देखने की बात ? आखिर है तो अभी लड़का ही न। उसकी भी इच्छाएँ है, जरूरतें हैं, और सपने भी हैं ही ! दुनिया कितनी बड़ी है, यह क्या उसे सिनेमा देखने से ही नहीं मालूम हुआ ? जीवन में अखबार ही तो सब कुछ नहीं हैं। अब तक सिर्फ मां को ले कर ही उसका जीवन था। खुद मां के जीवन में क्या कुछ था वह क्या जाने ? क्लारा ने एक नई दिशा दिखाई है उसे, जीवन की राह प्रशस्त होने लगी है। कमरे की इन चार दीवारों में घिरे रहने वाले को लग सकता है कि इतनी देर हो गई, पर बाहर कितनी चहल-पहल है ? बँधा ही रहे क्या वह भी मां के साथ इस दमघोट कोठरी में ? वह पुरुष है। सिनेमा के पर्दे पर देखकर ही सही, उसने क्लारा के साथ एक नई दुनिया की प्रतीति पाई है। उस दुनिया का आकर्षण दुर्निवार है और क्या सुख पाने का इतना सा अधिकार भी उसका नहीं है ?

चुपचाप तमसा ने आगे बढ़कर कमीज उठाया और झटक कर करीने से खूँटी पर टाँगते हुए कहा, 'हाथ-मुँह धोले तो खाना परोस दूं !'

मुँह फुलाए सत्यप्रकाश मोरी पर चला गया और लोटे को बाल्टी में डुबोया कि वह ठीक पेंदे को छूकर झनझना उठा !

'कहा, पानी तो है नहीं ! नल भी तो अब बन्द हो गया !' और फिर मानों बदले की भावना से बोला, 'खुद से तो बालटी तक भर कर नहीं रखी गई, और मेरे कुछ अखबार नहीं बिके तो मुझ पर ही बरस रही हो ! पानी के लिए तो नल की खुशामद नहीं करनी पड़ती !'

आश्चर्यहत तमसा ने सत्यप्रकाश की ओर देखा, दोनों की दृष्टियाँ मिलीं तो बोली, 'तुझे हो क्या गया है रे आज ?—ठहर, मटके में से दे देती हूँ पानी !' फिर मटके में से बालटी में पानी उढ़ेल कर हाथ धुलाते हुए बोली, 'कैफियत चाहता है तो सुन ! बालटी तो नित्य की तरह भर ही ली थी ! चौका-बर्तन खाने से निपट लेने के बाद करती हूँ। आज तुझे देर हो गई इसलिए पहले ही निपट लिया, और पानी उसी में खर्च हो गया !...समझा ?'—तमसा ने अनुभव किया कि उसे सत्यप्रकाश के पास कुछ तम्बाकू जैसी बू आ रही है ! क्या वह...पूछे उससे ? पर, आज तो

वह तेवर बदल कर बात कर रहा है ! पुरुष, घर का मालिक ही तो है वह ! नारी होती ही है उसका शासन स्वीकार करने के लिए ! आज से नहीं, सृष्टि के आदि-काल से ! पुरुष चाहे पिता हो, पति हो, या पुत्र ही क्यों न हो !...नारी का व्यक्तित्व है ही क्या ?—पुरुष की आज्ञा के पालन में ही चुक जाना, उसका कोई सुख नहीं, इच्छा नहीं, अधिकार नहीं, स्वतंत्र अस्तित्व तक नहीं !

'क्या हुआ तुझे ?' कहीं दूर खो गई तमसा को सत्यप्रकाश का स्वर जैसे खींच लाया अपने में !

'ओह !' उसे पता ही नहीं था कि सत्यप्रकाश हाथमुँह धो चुका है और वह तब भी झुकी हुई मोरी के फर्श पर ही पानी उड़ेले जा रही है !

खाने पर बैठते हुए सत्यप्रकाश ने पूछा, 'और तू नहीं खाएगी ?'

'मेरे तो आज व्रत है न !'

'आज काहे का व्रत है ?'

लेकिन तबतक तमसा ने निवाला तोड़ कर सत्य के मुँह में ठूंसते हुए कहा 'चल खा ! तू क्या जानता है कि औरतों और खासकर विधवाओं को कब कौन व्रत रखना पड़ता है !'...लेकिन तब भी वह बहुत झुकी नहीं। अगर फिर कहीं तम्बाकू की गंध उसके नाक को छू गई तो सौहार्द्र का बना हुआ वातावरण नष्ट हो जाएगा !

कौर निगल कर सत्यप्रकाश बोला, 'सच कहता हूँ माँ ! दो-दो बार हर जगह घूम लिया। क्या करूँ, क्लास का एक लड़का अखबार वाले की दूकान पर मिल गया, और आगे की पढ़ाई की बात चल पड़ी। अगर बात न करूँ तो भी अच्छा नहीं होता। लड़के यूँ ही ताने कसते हैं कि पढ़ने-लिखने में तेज क्या हूँ घमंडी हो गया हूँ। इसीसे देर हो गई !—कल कहूँगा, अखबार वाले से अगर मान जाए !'

'मैंने अखबार का तुझे कहा ही क्या था रे ? पूछा ही तो था !—छोड़ उस बात को ! ऐसा तो होता ही है। अब तो तेरी पढ़ाई का तुझे ज्यादा ध्यान रखना है बेटे ! अखबार छोड़ दे अब !'

'और घर का गुजर-बसर ?'

'सो तो तू जब छोटा-सा था, तब क्या नहीं चलता था ?'

'एक तो माँ, तू मुझे हमेशा छोटा बच्चा ही समझती है। कभी देर हो जाए तो आसमान सिर पर उठा लेती है ! कोई दूधपीता बच्चा हूँ कि कोई झोली में डाल कर छिपा लेगा ?'

माँ ने हँस कर कहा, 'छोटा कहाँ ?—इतना बड़ा तो हो गया है ! घर का पूरा भार उठाने के लिए आतुर ! पर पगले, माँ के सामने संतान हमेशा ही छोटी

रहती है ! जितना तू आठ बरस पहले था, उतना ही मेरे लिए अब है, और अब ही क्या, आठ सौ वर्ष बाद भी उतना ही रहेगा। अब रहा घरखर्च, सो तू दूसरी तरह सहायता कर सकता है बेटे ! पास-पड़ोस से तो अधिक कपड़े आते नहीं हैं। तू अपने मित्रों से कह देखना। और....तेरे वे मास्टरजी...'

सत्यप्रकाश को मानों बिजली छू गई ! हाथ का कौर हाथ में ही रह गया और उसने माँ की ओर देखा। माँ की दृष्टि ठहर नहीं सकी, पर शीघ्र ही अपने-आपको सम्हालकर बोली, 'उस दिन कहा था न उन्होंने, कि वे अपने मित्रों से कहेंगे !'

सत्यप्रकाश भी अपने आवेश की अहेतुकता समझ गया, बोला, 'शायद इसीलिए अक्सर पूछते रहते हैं, पर मैं ही छिपा जाता हूँ ! अपनी मज़बूरी का ढिंढौरा तो नहीं पीटा जाता !--खैर, मैं कहूँगा लेकिन इसीसे अखबार बन्द करदेने की बात तो नहीं उठती माँ !' और प्रसंग को एकबारगी ही खत्म कर देने के लिए बिना पूर्व सूचना के ही वह थाली पर से उठ खड़ा हुआ !

× × ×

महेश्वर के मित्रों के, और पता नहीं उसके स्वयं के कपड़े भी सिलने के लिए सत्यप्रकाश घर ले आने लगा ! नाप के लिए पुराना कपड़ा साथ आ जाता। कुछ दिन आशंका रही कि सिलाई में दोष होने पर कहीं कपड़ा ही न सिर आ पड़े, पर शिकायतों के स्थान पर कपड़े ही अधिक आने लगे ! यह डर भी रहा कि कहीं उस पहली संध्या की तरह वह स्वयं न आ टपके घर पर ! सत्यप्रकाश से जाने क्यों डर लगने लगा है उसे। घर का एकमात्र पुरुष तो है ही वह।—मुहल्ला बड़ा वदनाम है, बेगैरत ! कोई देख ले तो उसका जीना दूभर हो जाएगा। किन्तु कई दिन बीत जाने पर भी वह नहीं आया तो जाने क्यों मन पर कोई निराशा छाने लगी। चारों ओर कुछ उदास सा लगने लगा ! इधर सत्यप्रकाश भी मानो हाथ से निकलता जा रहा है ! रात को बिना कारण देर से तो लौटता ही है, तम्बाकू भी पीने लगा है। तमसा के नियन्त्रण की अब वह चिन्ता नहीं करता ! क्या करे तमसा अब ?

उस दिन सत्यप्रकाश से बोली, 'कल जो तू दो कमीज ले गया था न, पुराना कमीज उन्हीं के साथ चला गया रे ! मुझे ध्यान ही नहीं रहा कि अभी एक और देना है। तैयार तो हो गया है, केवल गला बाकी है। उनसे कह कर शाम को एकबार और ला दे न उनका पुराना कमीज ! वह निपट जाए तो शिब्बू की माँ के कपड़ों को हाथ लगाऊँ। वह रोज आकर जान खा जाती है ! बार-बार मशीन में धागा बदलना पड़ेगा न !'

संध्या को जब काम पर से घर लौटी तो मन में काफी हलचल मची हुई थी। समझ नही पा रहीं थी कि भाव हलकेपन का है कि भारीपन का ! कमरे की किसी वस्तु को छूती है तो लगता है अभी वह कुछ ऐसा बोल देगी जो तमसा सुन नहीं सकेगी। कान मानों किसी की प्रतीक्षा कर रहे हैं। खिड़की, दरवाजा, छत, दीवार, कहीं से भी कोई पुकार उठ सकती है ! जल्दी ही उसे रसोई से निपट जाना है, पर क्यों ?—पागलपन नहीं तो क्या है ?—घर का काम शुरू करने के पहले वह कम से कम साड़ी तो बदल लेती है। आज उसे साड़ी बदलने की भी फुरसत नहीं है !—राख, कालिख, आटा कुछ भी तो लग सकता है !—ठीक है, अभी बदल लेती है, सब्जी तो छौंक ले ! कढ़ाई में तैल खौल उठा है और देर करने से जीरा जल उठेगा, फूलकर तड़ातड़ फूट रहा है। सत्यप्रकाश मिर्च अधिक नहीं खाता, वरना छौंक के साथ लाल मिर्च भी भून लेती। सब्जी की छूमछनन में एक अर्थ है। उस अर्थ की केवल शाब्दिक संज्ञा ही नहीं, गंध और स्वाद की संज्ञा भी है। शब्द में स्पर्श भी है क्या ?—वर्ण तो स्पर्श्य होते हैं" क्या हो गया है उसके कानों को ?—कुछ खड़का है। दरवाजा तो बन्द है, साँकल चढ़ी हुई !—आई थी तभी चढ़ा आई थी क्या ? इतनी जल्दी तो वह साँकल लगाती नहीं कभी !

क्या हुआ है ?—क्यों छिप रही है आज वह अपने से ही ? सत्य से कहा था उसने पुराना कमीज फिर ले आने के लिए ! आज कैसे ले आएगा वह ?—वे क्या पुराना कमीज साथ लेकर स्कूल जाते हैं ?—या वहीं पहना हुआ खोल कर दे देंगे ?—शायद साथ ही साथ घर चला जाए, पर तब क्या आज अखबार की छुट्टी कर देगा वह ?—साथ नहीं गया, वरना किताबें यहाँ न होतीं उसकी ! यानी कल संध्या तक राह देखनी होगी ! गला काट दे ?—सत्यप्रकाश ने कहा तो अवश्य होगा !

खाना बन गया तो पतीली में एक गिलास पानी चूल्हे पर चढ़ा दिया। गाहे-ब-गाहे चाय सत्य भी पी लेता है। मिठाई और दाल-सेव, कह देगी कि लड़के के पास हो जाने की खुशी में उसके सेठ ने बाँटी थी। सेठ के यहाँ से इस तरह खाने-पीने की वस्तुएँ वह प्रायः सत्य के लिए लाया करती है। चाय की पुड़िया तो घर में है ही, दूध आते समय ही ले आई थी।...... कि तमसा को लगा दरवाजे पर बहुत हलका सा शायद आघात हुआ है। सचमुच हुआ है, या उसका वहम ही है ? उस दिन तो कैसे धड़ल्ले से विरोध के बावजूद घुस आया था ! इसीलिए तो साँकल अटका ली है उसने ! सब कुछ नीरव है। कहीं ऐसा न हो कि जवाब न पाकर लौट जाए।...... लेकिन पुनः थपथपाहट तो हुई है, वैसी ही क्षीण किन्तु स्पष्ट। तमसा उठ खड़ी हुई, कहना चाहा कि 'आई।' पर शब्द अधर पर ही अटक गए। आँचल

को माथे पर खींचा और एक क्षण खड़ी रह कर अपने ही भीतर-बाहर देख लिया। हृदय अनजाने ही बड़े वेग से धड़कने लगा था। कदम आगे रखा, पर पैर काँपने लगे। क्या नीचे से कहीं फर्श ही तो नहीं खिसक गया ?—कि पुन; दरवाजे पर थाप पड़ी, कुछ अधिक बल से। वह भी सतर्क है कि पड़ोस में कोई जान न पाये चाहे जितनी बार ही क्यों न उसे दरवाजा थपथपाना पड़े। तमसा ने धीमे से साँकल हटाकर किवाड़ खोले और एक कदम पीछे हट ली।

'भीतर हाजिर हो सकता हूँ ?'—लेकिन जो जबर्दस्ती भीतर घुस आ सकता है उसे क्या उत्तर दे ?

'गला नपवाने आया हूँ। क्या इजाजत नहीं है ?'

तमसा को कहना पड़ा, 'आइए !'

महेश्वर भीतर आ चुका तो तमसा ने किवाड़ ही नहीं भिड़ा दिए, साँकल भी चढ़ा ली। दरवाजे के सहारे उसी पराने स्थान पर बिछी दरी की ओर संकेत करके महेश्वर ने पूछा, 'बैठ जाऊँ न ? या आते ही गला नापना चाहती हैं ?'

तमसा ने सहज ही कहा, 'आपने क्यों कष्ट किया ? मैंने तो केवल पुराना कमीज चाहा था।'

'सो ही तो मेरे शरीर पर है। भेज नहीं सका, क्योंकि स्कूल में दूसरा तो था नहीं कि बदल लेता और सत्यप्रकाश ने कहा कि नाप आपको आज ही लेना है।'

'बैठिए तो।'

बैठकर हाथ के बंडल को आगे बढ़ाते हुए बोला, 'मटरगश्ती करते-करते ही नहीं चला आया हूँ, मित्र से कह रखा था, उसके कपड़े भी ले आया हूँ, चार पाजामें और चार कुरते। सिलाई कम्बख्त एक रुपया फी पाजामे से अधिक देने को राज़ी ही नहीं हुआ। कहने लगा, शहर का अच्छे से अच्छा दर्जी भी एक से ज्यादा नहीं लेता। अब उसे कैसे समझाता कि बेवकूफ, सवाल सिलाई का ही नहीं, सीने वाली नाजुक अँगुलियों का भी है ···नहीं-नहीं, मजाक ही समझिए ! कुछ आदत ऐसी हो गई है···'

रोषाक्त तमसा ने कहा, 'तो क्या सीने वाली अँगुलियाँ भी बेचनी होंगी ? आप जानते हैं कि पाजामें की सिलाई मैं केवल आठ आने लेती हूँ। एक रुपये का लोभ देकर कोठरी से उठाकर क्या कोठे पर बिठा देना चाहते हैं ? अपने मित्र से कह दीजिए और आप भी गाँठ बाँध लीजिए, मैं केवल श्रम, सिलाई बेचती हूँ, अपनी अँगुलियाँ नहीं। मित्र के ही नहीं, अपने कपड़े भी आप शहर के अच्छे दर्जी के यहाँ लिए जाइए !—मैं अपने हाल में ही ठीक हूँ।'

'आप तो सचमुच नाराज हो गईं !—अच्छा हुआ कि गाली दी भी आपने तो उस मित्र को, जो डूब मरने को यहाँ है नहीं। उसके कसूर की सजा क्या मुझे भुगतनी होगी ?'

'मित्र जो हैं आप उसके।'

'सो तो मैं सभी का हूँ, उस जैसे बुरे आदमी का ही नहीं, आप जैसे अच्छे व्यक्ति का भी !—आपने जो कहा, वह मैं उसे पहले ही कह चुका हूँ, वरना उसके कपड़े लाता ही क्यों ?—भली बातें भले व्यक्तियों की संगति में ही तो सीखी जा सकती हैं।—देखिए, मैंने सिगरेट पीना लगभग छोड़ दिया है, वह किसी भले व्यक्ति की जरा सी मुलाकात के कारण ही तो।'

'मुझे प्रसन्न करने के लिए ?'

महेश्वर से एकाएक उत्तर नहीं बन पड़ा। तमसा कुछ कहने जा रही थी पर अपने आपको रोक लिया उसने। महेश्वर ने छोड़ दिया हो, पर सत्यप्रकाश ने जो प्रारम्भ कर दिया है ! महेश्वर ने गला साफ करके कहा, 'एकदम से नहीं छोड़ा है। साथी कहते हैं, ढोंग करता हूँ इसलिए कभी पी लेनी पड़ती है, वरना छोड़ ही चुका हूँ।—अच्छा पानी तो पिलाइएगा न ?'

'ठण्डा या गरम ?' सहज होकर तमसा ने कहा।

महेश्वर ने तमसा की ओर देखा, वह पीठ किए खड़ी ही थी, पर कण्ठ को कुछ खम दिए घूँघट की ओट से वह उसी ओर देख रही थी। घूँघट के पार दीपक की रोशनी सीधे मुँह पर पड़ रही थी। महेश्वर ने तत्काल कोई उत्तर नहीं दिया तो वही बोली, 'सत्य के द्वारा कहला तो दिया, पर आशा नहीं की थी। पर टपक ही पड़े हैं तो अतिथि की मर्यादा न पाकर आप ही क्या समझ लेंगे। चाय का पानी उबल रहा है।'

'प्यास उससे खूब बुझ जाएगी। टपक पड़ने की भी खूब कही आपने ! सच, आशा नहीं की थी क्या ?'

'यही तो डर था। सत्य से तो यही कहा था कि पुराना कमीज ले आए।'

मुस्कराकर महेश्वर ने कहा, 'दूत आपको अच्छा नहीं मिला। संयोग से अगर मैं ही उसे बुला न भेजता तो आपका सन्देश ही नहीं मिलता। पुराना कमीज माँगा तो, पर कहा कि गले का नाप देने से भी काम चल जाएगा, बल्कि जेब से निकाल कर धागा भी दे चुका था।'

तमसा की छाती धक् करके रह गई। सहम कर उसने कहा, 'तब नाप ही क्यों न दे दिया ?'

'सो तो दे दिया। पर बाद में ख्याल आया कि अगर कहीं धागा खो जाए, या उस पर लगा निशान धुलपुँछ जाए तो कमीज का नुकसान पड़ सकता है। बल्कि जब गर्दन हाजिर हो तो उसे ही क्यों न पेश कर दिया जाए? अभी गला काटा तो नहीं न···मेरा मतलब है कमीज का गला! देखिए, खड़ी कब तक रहेंगी? चाय तो पिला ही रही हैं, इसलिए यह तो नहीं चाहतीं कि उठकर चलता बनूं। चूल्हे के पास ही बैठिए, ताकि चाय बनाकर पिला दें और बिदा कर दें।'

बुझे हुए मन से तमसा ने कहा, 'जल्दी शायद आपको भी हो।'

'मुझे और जल्दी?—कहूँ तो आप नाराज हो उठेंगी।'

'तब भी आपका कर क्या लूंगी?' और वह चूल्हे के पास ही बैठ गई।

'आप नहीं जानतीं कि यह चाय मेरे लिए क्या महत्त्व रखती है?'

'जहर का तो नहीं न?—निडर होकर कहिए!'

'आपने 'कहर' कहा न?'

'मैं उसका मतलब नहीं समझती! पढ़ी लिखी ही कहाँ हूँ कि आपके इन विदेशी शब्दों का मर्म समझूं?' और उसने पतीली नीचे उतार ली।

'शब्दों के विदेशी होने से ही क्या आप परास्त हो सकती हैं?—अपने गहरे अर्थ वाली भाषा से अच्छों अच्छों के आप कान कतर सकती हैं।'

'पर आपके नहीं कतर सकूंगी।—कहिए, जल्दी क्यों नहीं है, आप कहने वाले थे न!'

'अभय दिया है आपने, भूल न जाइएगा। कहना यही चाहता था कि यहाँ से जाने की मुझे तनिक भी जल्दी नहीं है। आदेश दूर, सहन भी आप कर सकें तो आपकी आँखों के सामने ही आपके चरणों······' आगे कहे या न कहे, देखने के लिए उसने तमसा की ओर दृष्टि डाली। गिलास में चाय उढ़ेलते हुए तमसा ने महेश्वर की बात पूरी की, 'मेरे चरणों में सारा जीवन बिता सकते हैं। यही न?'

'क्या आप इसे सच नहीं समझतीं?—आदेश देकर देख लीजिए।'

'दूंगी ऐसा आदेश क्या?—मेरी आँखों के सामने चरणों के नीचे जो ढेर सारी धूल लगती रहती है उसे दोनों समय मैं झाड़ू से बुहार देती हूँ।'

'धूल न होकर मुझ जैसा पत्थर हो जो झाड़ू से न डरे तो?'

'टोकरी में भर कर फेंक दूंगी चाहे सिर पर ही न क्यों ढोना पड़े।' और चाय से भरी गिलास उसके सामने रख कर वह उठी, टाँड पर रखी पीतल की तश्तरी उतारी और उसे भी गिलास के पास रख कर कहा, 'रुमाल से थाम लीजि-एगा। काफी गरम होगी गिलास!·· अच्छा, जब मित्रों से भी मेरे लिए कपड़े जुटा देने की दया करते हैं, तो बहनजी से कहकर उनके ही कपड़े क्यों नहीं ले आते?

महिलाओं के कपड़े अँगुलियों की परख नहीं करते और उनके साथ रहने पर आपको भी यह सब मनमाना बोलने का अवसर नहीं रहेगा।'

गिलास थाम कर महेश्वर बोला, 'आप शायद निराश होंगी कि मुझे लगाम लगाने वाली कोई बहन जी नहीं है। —चाय तो आप पीती नहीं न ?—यानी, अकेले ही पीना पड़ेगी ?'

'तो क्या देश में हैं या पीहर में ?' तमसा ने महेश्वर के प्रश्न को बचाकर पूछा।

'अभी शादी ही नहीं हुई। आप जैसा उत्सुक व्यक्ति कोई रिश्तेदार नहीं है न।'

तमसा ने महेश्वर की ओर देखा और कहा, 'तभी।'

'तभी क्या ?' एक घूंट लेकर गिलास नीचे रखते हुए महेश्वर ने पूछा।

अपनी ही ओर देखकर तमसा ने गहरी साँस ली और कहा, 'अब समझी। क्या समझता होगा सत्यप्रकाश अपने मन में ?—आज आपने खुद उसे बुलाकर मेरे बारे में पूछा ?'

महेश्वर तमसा के स्वर से चिन्तित हो उठा। बोला, 'अपराध हुआ ?'

तमसा ने ध्यान नहीं दिया। कहा, 'क्या यह कुछ खाएंगे नहीं ?—आपके योग्य नहीं है। जाने दीजिए। व्यर्थ कष्ट क्यों कर रहे हैं ?'

पर महेश्वर बड़े मनोयोग से मिठाई और नमकीन उदरस्थ करते हुए बोला, 'घर में है केवल एक छोकरा। ढंग का खाना पकाना भी नहीं जानता। बाजार का बहुत कुछ अल्लम-गल्लम पेट के हवाले करता रहता हूँ। —पर आप सत्यप्रकाश के बारे में कह रही थीं न !—बड़ा जहीन—मेरा मतलब है बड़ा मेधावी है। पण्डितों के निकट इन म्लेच्छ शब्दों से दूर रहना चाहिए न ?'

'म्लेच्छ शब्दों से नहीं, म्लेच्छ विचारों से दूर रहने की चेष्टा करें तो दोनों के ही लिए शुभ है। विधवा हूँ, नाम धरने के लिए लोगों को जरा-सा बहाना बहुत होता है। और सत्यप्रकाश, वह बड़ा हुआ, शायद सब कुछ समझने भी लग गया है।'

'हूँ।' महेश्वर गम्भीर हो आया, और गिलास खाली करने लगा। फिर कुछ देर बाद बोला, 'बड़ा भावुक तो है ही, उम्र के नाजुक दौर से भी गुजर रहा है। बात तो उसे लेकर मैं भी करना चाहता था पर मन ही मन डर रहा था'

'डर ?—किस बात का ?—जरा गिलास इधर कीजिए, चाय अभी और रह गई है।'

महेश्वर ने गिलास बढ़ा दी और कहा, 'सिवा आपके, डर और किसका हो सकता है मुझे ? नहीं जानता कि आपके विश्वास का भागीदार बनूं तो कैसे ? कहीं लम्पट समझ बैठीं तो ?'

'गाय यदि बाघ की गन्ध पहचान लेती है तो उसकी रक्षा हो जाती है।'

'मैं बाघ हूँ ?—मेरे बारे में आपने ऐसा क्या पाया ?'

'सुन कर खुश न होंगे। जिस मित्र के आप सीने के लिए ये कुरते-पाजामे ले आए हैं वह क्या आपके शरीर की खोल ही में नहीं छिपा बैठा है ? लेकिन मैं पुरुष की लम्पटता का उतना ध्यान नहीं रखती, जितना अपने दृढ़ चरित्र के सहारे का।—भाग्य ने परिस्थिति ही ऐसी दी कि भेड़ियों की माँद में घुसे बिना पेट की ज्वाला का शमन नहीं किया जा सकता। तब दूसरे की दुर्बलता पर नहीं, अपनी शक्ति पर विश्वास करना होता है।' और उठकर महेश्वर के सामने से खाली गिलास और तश्तरी इस तरह झपाटे से उसने उठाई कि महेश्वर स्तब्ध हो उठा।

उसने साहस किया, 'कपड़े मेरे ही हों, पर यह बात तो नहीं कि आप मेरे कपड़े नहीं सींतीं।'

'नहीं। पर दूसरों का नाम लेकर मेहनताने के बहाने अधिक पैसे का चारा फँसाने के लिए डालने वाले लम्पट और कपटी होते हैं पुरुष ही, और वे ही यदि स्कूल में अध्यापक भी हों तो क्या देश की भावी पीढ़ी का बेड़ा गर्क नहीं होगा ?—बेचारे बच्चों को सिगरेट पीने, झूठ बोलने और चोरी करने का दोष दिया जाता है, पर ऐसे अपराधों की जिम्मेदारी क्या आप जैसे अध्यापकों पर नहीं होती ?—बेचारा सत्यप्रकाश ही क्यों दोष का भागी हो ?' और वह उसकी ओर पीठ करके बर्तन साफ करने लगी।

कुछ क्षणों की चुप्पी के बाद महेश्वर ने पूछा, 'सत्यप्रकाश ने कुछ किया है क्या ?'

'क्या नहीं किया उसने ?—गंगाजल जैसा पवित्र, लेकिन अब तो उसने सिगरेट फूंकना, मिथ्या बोलना, रात देर तक आवारागर्दी करना, यह सब उसने सीखा किससे है आखिर ?'

कुछ देर तक कमरे में नीरवता छाई रही। सामने दीपक की लौ कभी सिर उठा लेती है, कभी झुका लेती है और कमरे का प्रकाश रह-रह कर काँप उठता है। सिर उठाकर महेश्वर ही बोला,

'अपने आपको दूध का धोया कहकर चलाने की मैंने कभी चेष्टा नहीं की। स्कूल में पढ़ाता हूँ, सो मजदूरी है, क्योंकि पैसा लेता हूँ। योग्य शिक्षा देकर चरित्र-निर्माण का गौरव इस युग में शायद कोई ले ही नहीं सकता। आज आदमी कितना

मजबूर है, विधवा होकर भी आप नहीं अनुभव कर सकतीं।—आपने पति ही खोया है लेकिन मैंने ?··· जाने दीजिए।' और वह उठ खड़ा हुआ कहते-कहते, 'आपका दु:ख बढ़ाने का मेरा कोई इरादा नहीं था, और न होगा। स्वीकार करूँगा कि आपने मुझे भीतर तक देखने की दृष्टि दी है, और मुझे सब कुछ बदला हुआ दिखाई देने लगा है।—अपने को पा सकूँगा या नहीं, यह बाद की बात है। —पर सत्यप्रकाश के लिए जो कुछ आपने कहा है वह गम्भीर है। चाहें तो मेरा विश्वास न करें, मगर सत्यप्रकाश के बारे में सावधानी बरतने का अनुरोध मैं अवश्य करूँगा। यह उम्र बड़े ही संकट की है। घर में और कोई बड़ा होता तो आपका भार जरूर कम हो जाता, पर अब तो आप ही सब कुछ हैं। अभी उसे कुछ मालूम न होने दीजिए। आप खुद बुद्धिमान् हैं। —मैं चला।'

'लेकिन···' तमसा भी उठ खड़ी हुई अपनी जगह पर।

'कुछ कहना चाहती हैं ? —क्या सचमुच कपड़े लौटा ले जाने होंगे ?—नहीं, लेने के बहाने भी कभी इधर मुँह नहीं करूँगा। सत्यप्रकाश के साथ भिजवा दीजिएगा।'

सहसा तमसा ने आगे बढ़कर भूमि पर सिर टिका दिया और घूंघट की ओट में से ही कम्पित स्वर में बोली, 'सत्य के सिवा इस जगत में मेरा कोई नहीं है मास्टर साहब ! मैंने जो कुछ भला-बुरा कहा है, अपने ही को केन्द्रित करके कहा है। पर मेरा सारा जीवन तो सत्य के लिए है। यदि मेरे मर जाने से भी उसका सुधार हो जाए, तो वह मेरे सौ जीवन के बराबर है। आप उसे बचाइए।'

महेश्वर मुड़ गया। 'कातर न होइए। यदि मुझ पर आप विश्वास करें तो फिलहाल उसे मुझ पर छोड़ दीजिए। मेरे लिए यह एक अवसर है। परिवर्तन आप उसमें ही नहीं, मुझमें भी देख पाएँगी। और अपने आपको आप सत्यप्रकाश की सम्पत्ति, अमानत समझकर बचाए रखिए। —मत भूलिए की माँ पारस होती है, लोहे से वह घबराती नहीं, लेकिन लोहे का अवसर तो पारस के सिवा और कुछ है नहीं।'

'आप मुझ पर क्रुद्ध तो नहीं हुए ?'

'आप पर कोई क्रुद्ध हो सकता है ?' महेश्वर ने तब तक दरवाजे की साँकल हटा ली थी। बहुत धीमे से किवाड़ खोले, तब भी थोड़ी चर्र-चूं हुई ही। तमसा ने सिर उठाकर देखा तो महेश्वर धीर पदों से बाहर निकल रहा था। जाते जाते उसने नमस्कार भी नहीं किया। किवाड़ आप ही देहली पर लौट आया। हवा के हल्के-से आघात से दीपक की लौ भी शून्य कमरे में सिर धुनने लगी।

□ □

धूमकेतु के सेतु

नयापुरा में वीसाजी की चाल को सभी पहचानते हैं। —वही जगह, जहाँ सत्यप्रकाश की कोठरी है। कोठरी नहीं, उसे खोली कहना चाहिए। दुपहर की ग्यारह बजे के बाद ही चाल में चहलकदमी और शोरगुल बढ़ जाता है। चाल की निजाम का सारा भार तब महिलाओं के कन्धों पर नहीं, बल्कि उनके प्रखर कान और मुखर जीभ पर चढ़ जाता है, हाथ और पैर तक वाचाल हो जाते हैं। पुरुषवृन्द तब तक रोजी-रोटी की तलाश में बाहर चले जाते हैं और लड़के-बच्चे भी स्कूल के बाड़े में दाखिल हो जाते हैं। रहे गोद के बच्चे, सो या तो उन्हें सुला दिया जाता है या वे खुद ही सो जाते हैं। और सब समय घर की खन्दक में घुसी रहने वाली घाघरी पल्टन मैदान में उतर आती है। घुटने चलने वाला कोई हठी बच्चा अगर पालने में सोने से इनकार करे तो उसकी उपेक्षा कर दी जाती है। वह चाहे तो दरवाजे-देहली पर कुछ धूल मुँह में, कुछ बदन पर लपेटे, कभी उड़ते हुए कौवे को, कभी हिलती हुई छाया को देखकर हँस सकता है, या ओठ और नाक की नोक पर मक्खियों के आक्रमण से तङ्ग आकर रो भी सकता है। मैदान में उतरी पल्टन इन सामान्य उपसर्गों से निरस्त नहीं होती।

सिरे पर चढ़ाव के पास जहाँ सत्यप्रकाश की खोली है, पानी का नल है। नल के पास ही किराएदारों की कपड़े धोने की सुविधा के लिए बीसाजी ने एक पक्का चबूतरा बनवाया था। नल अब बेकार है। —किराएदार पानी मनमाना खर्च करते थे, और मीटर उठने पर पैसा कोई देता नहीं था। तब उन्होंने ही नगरपालिका से कहकर कनेक्शन कटवा दिया था। चाल से कुछ अधिक दूर सरकारी नल हैं। सवेरे-शाम समय पर खुलता है। सब वहीं से भर लाते हैं, पैसा किसी को कुछ देना नहीं पड़ता।

वह चबूतरा बरकरार है। उसी पर तीन चार महिलाएँ कपड़े फींच रही हैं। मुंगरियों की फचाक के साथ चढ़ती-उतरती चूड़ियों की खनक का संगीत उनकी चर्चा में कोई विघ्न नहीं पैदा करता। नाक तक घूंघट खींचे कृष्णसहाय की बहू मुंगरी

से कपड़े फींच कर अपनी ननद कृष्णा को पकड़ाती जाती है, वह उन्हें बालटी में खँखौल कर निचोड़ती है और चबूतरे के एक कोने पर रखती जाती है। पास में रामचरण की अधेड़ बहू सिर के जूड़े को कपाल पर बाँधे, बदन पर मामूली-सा चिथड़ा भर लपेटे दीवार की ओर मुँह करके नहाने का उपक्रम कर रही है। सामने सिरे पर औरतों के नहाने की एक खोली थी, किन्तु औरतों ने उसका प्रयोग दूसरे उपयोगी काम के लिए बना लिया था। चबूतरे पर स्नान करने में महिलाएँ चाहे गौरव न मानें, पर अपना हक जरूर मानती हैं। नई-नवेलियाँ जब तक एकाध बच्चे की माँ बनकर इस स्वतन्त्रता के अधिकार की पात्री नहीं बन जातीं, अपनी खोलियों की भीतरी मोरियों ही में स्नान-ध्यान करके हसरत–भरी निगाहों से इन अधिकार-सम्पन्न महिलाओं को घूरती हुई मन ही मन कुढ़ा करतीं। रामचरण की बहू तो ब्याहता बेटे-बेटियों की माँ है, उसके सर्वोच्च प्रभुता-सम्पन्न होने में किसे सन्देह हो सकता है ? दीवार की ओर मुँह करके जब वह 'हरे राम, हरे किशन—राम-राम सब कोई कहे, दसरथ कहे न कोय, एक बेर दसरथ कहे, कोट जनम पुन होय' या 'गंगा का सनान, जमना का सनान' आदि कुछ स्वरचित कुछ स्वसंशोधित स्तोत्रों का सहस्रनाम जाप करती हुई लोटे से अपने ऊपर पानी उड़ेलने लगी, तो उसके शरीर से लिपटा वह आधा वस्त्र पीठ पर से खिसक कर कब फर्श पर आ लगा, उसे ध्यान ही न था। और स्नान शेष कर सूखा वस्त्र लेने के लिए जैसे ही वह उठी तो शेष वस्त्र भी शरीर के पृथुल भार से त्रस्त होकर खिसक गया। शीघ्रता करने की उसने कोई चिन्ता नहीं दिखाई। नित्य की ही तो बात है ! बाँह बढ़ाकर सीढ़ियों पर रखी साड़ी उठाई, आधी तह खोली, पीठ पर पटका और अपने सहस्रनाम का अवि-राम पाठ करते-करते सामने बरामदे में आ गई, तब जाकर बदन को ढाँकने की उदारता दिखा सकी। —कृष्णा ने आँख का इशारा किया तो उसकी भाभी ने भी आँख भरकर देख लिया। दाँतों में साड़ी का कोर दबाए मुस्कराती रही।

कृष्णा ने आहिस्ता से कहा, 'देखा भौजी, कित्ती बेशरम है ?'

'छिनाल जानती है न, कि ऊपर से निगोड़े छोरे देख रहे हैं, सोइ इतरा रही है।'

कृष्णा को मालूम न था। आँख उठाकर ऊपर गैलरी में देखा। रात-पाली में मिल में काम करने वाले, दो-तीन जवान लड़के इसी ओर देख रहे थे। कृष्णा को देखकर एक ने भवें उछालीं तो कृष्णा की छाती अकस्मात् तन गई, बोली, 'थुलथुल कमर और थूते थैले-सी लटकती छातियाँ, पर दारी इतरा यूँ रई है जैसे इन्दर की परी हो।'

'धीरे बोल दरी, सुनेगी तो फाड़ खाएगी। हिरनाकुस है पूरी।'

माँ की साड़ी पानी में खँखालती हुई कृष्णा ने कहा, 'मैं डरनेवारी नई हूँ भौजी, मुँह खोले तो जानूं। तुमतो अभी कल आई हो, तुम क्या जानो? –इसकी वेटी सुरसती कहां है आजकल? ब्याह हुया तो दो बरस तक तो सुसराल ई नई गई। हियाँ के यार छोड़ें तब न जाए! गई होली पर इसी चबूतरे पर से चोटी पकड़कर घसीटता ले गया था विसका खसम। बर्तन रगड़ रई थी संझाको हियई बैठी-बैठी। ऊपर वो जो मुस्टण्डा बीड़ी फूंक रिया है न, विसी की तरफ देखदेखकर मुलक-मुलक हँस रई थी। खसम दो लठैत भी साथ लाया था। चिल्लाने लगी तो कमर पर एक रन्दा लगाया लुच्ची के, और मुँह दाबकर उठा लिया गोद में। पर एक महीना भी नईं बीता और छिनाल के यार लोग पौंच गए हुवाँ। हुवां इन लफंगों ने वोइ नाटक रचा और उड़ा लाए रंडी को हियां!'

'अच्छा?' बहू ने साश्चर्य कहा। कपड़े फींचते उसके हाथ भी रुक गए।

'खुद उसने कबूला था मेरे आगे। मेरी तो छैली थी न। हां में हां मिलाई कि सबरी बातें रस ले लेकर सुनाती थी। –पैले सेई सैनी-पसैनी हुई हुई थी। –बाप तो घर में घुसनेई नई दे रिया था, पर इसी खुसट्टी ने समझाया कि दो दिन बाद फिर भेज देंगे। फिर तो दो हफ्ते में ई करमैंती एकरात यार के साथ काला मुँह करके कहाँ निकर गई सो आजतलक ठिकाना नई है राँड़ का। पूछै कोई तो कहेगी सुसराल गई है। मन ई मन तो छाती कूटती है, और ऊपर से नखरे करती है जैसे अखन कुवाँरी हो। मुझसे छिपी थोड़े है! भीतर ई भीतर तीन बार विसके ससुराल तलास करली है।'

सुरसती की मां साड़ी लपेट चुकी थी। मुहल्ले की बहू-बेटी, सो अपनी बहू-बेटी, बरामदे में से ही बोली, 'अरी किसना, भौजी से बोल तो, मेरा वो अबूटिया भी पानी में निचोड़ दे जरा। इत्ती-सी बात के लिए फिर कपड़े क्यूँ भिगोऊँ?'

'मेरेई कौन से हाथ घिस जाएंगे काकी? –ये लो।' और उस चिथड़े को उठाकर मैले पानी में ही डुबोया और निकालकर निचोड़ते हुए बढ़ाकर बोली, 'सुरस्ती जीजी को कब बुला रई हो काकी?'

'तेरे काकाजी को फुर्सत नई है री, अभी। दिवाली के बाद समझ अब तो। धी तो जवाँई के घरई भली लगे। पीले हाथ हो जाने दे अपने, तू ई फिर सबरे हम को भूल जाएगी।'

भौजी की ओर देखकर मुस्कराती हुई बोली, 'पीले हाथ करवा कर काला मुँह करवाने वाली मैं नई हूँ काकी! देख लेना।–अलबत्ता, सुर्सुती जीजी की ओल्यूं भौत आय। सबरेई दिन चैंकती-फिरती रैती थी, खूब बस्ती थी। विस के बिना सबरी गुवाड़ी सुनसान लगे हैं।'

'सुहावे तो अपने भी नई किसना, पर पराई वेटी तो पराई ई होवे। अपनो कई जोर चले ?' और वात को बढ़ने न देकर खुद आगे बढ़ सीढ़ियों पर चढ़ गई।

दूसरे सिरे पर मुँह में जर्दे का पान दवाए कस्तूरी की माँ कब आ बैठी, इसका इन दोनों को पता ही नहीं था। वह वैद्य हरिशंकर की पत्नी है। कस्तूरी है छठी वेटी। लड़का एक नहीं, पर वैद्य औरों को पुत्रदाता रसायन वेचा करते थे। पहले औषधालय उसी खोली के पास की खोली में था। ठीक चलता था, पर पड़ोसियों की कानाफूसी के कारण जब वह बाहर सड़क की एक दूकान पर चला गया तो बीमारों की कमी हो गई। आमदनी के अभाव में खुद वैद्य हरिशंकर बीमार रहने लगे। लेकिन कस्तूरी की माँ छह वेटियों के बावजूद बदन से चुस्त-दुरुस्त है। खूब कस्तूरी-पाक खाया है उसने, आखिर वैद्य-पत्नी जो ठहरी। रहे, ये छह पिल्ले, सो तो साल-दरसाल होते ही रहते हैं। उमर तो उसकी तीस-पैंतीस ही हैं। हरिशंकर जितने शांत-स्वभाव हैं, कस्तूरी की माँ उतनी ही तेज-तर्राट अभी चुप है क्योंकि मुँह में, तम्बाकू का पान है, वरना मुँह से वे फुलझड़ियाँ झड़ती हैं कि सुनने वाले सुनते नहीं, देखने लग जाते हैं।

और उधर से टीन के बड़े भगोने में कपड़े भरे आ वैठी गोपाल की दादी, सारे शहर की खबरों का आगार। आते ही उसने रोब झाड़ा, 'यूँई धींगामस्ती चल रई है छोरियो ! कपड़े नई धुले अभी ?'

कृष्णसहाय की बहू ने घूँघट और नीचे खींच लिया। कृष्णा ने कहा, 'निपट गए दादी। ह्यिई जमोगी न? -भौजी, तुम ये बाल्टी ले चलो। कपड़े सबरे मैं समेट लेती हूँ।'

कृष्णसहाय की बहू उठ गई, बड़ी-बूढ़ियों का लिहाज रखना पड़ता है। जीभ से बोलने की जगह जब उसने प्रतिवाद में एकाध टिचकारी मारी, तो दादी ने कहा, 'जा बऊ, इत्ती बारीक धोती पेहर कर बाहर नई निकरना चहिए। सरम-हया होने से ई तो सब नई हो जाता।' बहू लाज से दुहरी होकर बरामदे में भागी और ओझल हो गई। सिरे से दूसरे नम्बर पर ही तो उसकी कोठरी है।

दादी ने कहा, 'कस्तूरी की माँ, तू तो साबू की बट्टी भी लाई दीखती है। नैंक सरका दे तो इस कबजे पर रगड़ दूं। भौतई गंदा लगे है।'

बोलकर पान का मजा खो देने की अपेक्षा कस्तूरी की माँ ने साबुन सरका देना ही उचित समझा। बोलकर भी प्रतिवाद करने से तो रही। गोपाल की दादी का प्रताप कौन नहीं मानता ?

साबुन को मनमाना रगड़ती हुई दादी ने कृष्णा की ओर कनखियों से देखा। कपड़ों से लदी ताँबे की जंगाल को उठाकर मुँह मटकाती हुई वह ऐसे झूमकर जा

रही थी जैसे बरसात का पवन हो। कस्तूरी की मां को लक्ष्य करके दादी बोली, 'माट्टी के घर तो जायगी जद जायगी, पर अभी से सरग का सूत ला रई है। -जोबन तो ज्यूँ इण पर ई टूट पड्यो है। धरती से निकरे नईं और आँखों से बात करण लगे है। माँ का सात माथा उतारेगी, देख लीजो।'

कस्तूरी की माँ को पीक थूक देनी पड़ी। बोली, 'अरे दादी, लँगड़ी और अष्टावक्करजी का तो राज है न आजकल !'

'अष्टावक्करजी कौन रे बऊ ?—तू भी मुझ निरक्खरी से सैंसकिरत में बात करे ?'

फिलफिल हँसते हुए उसने कहा, 'इसी कृष्णा का बाप और माँ ! और कौन ?—आठ जगह से टेढ़ा नहीं है शरीर से ?—अब तो मजदूर से नेता हो गया है न। मिल में कोई लाइबरी खुली है, उसकी किताबों के पैसे हजम करके धन्ना सेठ बन रहा है।—लँगड़ी के दिमाग भी तो सातवें आसमान पर है।

'यो रामसाय ?—यो तो रात पाली में था न ?' दादी ने पूछा।

'अब तो उस जगह उसका बेटा कृष्णसहाय है। आजकल मजूरों की यून्यन होती है न सासूजी,—कोई उन्हें नौकरी से निकाल दे, जोर-जुलम करे या तनखा कम कर दे तो यून्यन वाले एका करके मिल-मालकों से मुकदमेबाजी तक कर सकते हैं। लँगड़ी का घरवाला उसी यून्यन का आगेचानी हो गया है।'

—कि बिलास की विधवा बहन जमना अपनी आठ बरस की भतीजी चन्दा को आगे ढकेले आई और बोली, 'कस्तूरी की माँ गिलास में थोड़ा पानी गेर दे तो।'

'क्या है ननदजी, इसमें ये ?'

'छाछ है !—कलमुँही के माथे में जुएँ कुलबुला रई हैं न ! दिनरात घरड़ती रैती है माथा !'

दादी की इधर पीठ थी। आवाज सुनकर घूम गई और बोली, 'तू है जमना ?—तेरी बोली, इस नाइन से इत्ती मिले है कि मैं समझी वो ई है।'

गिलास नीचे रखकर दोनों हाथ माथे से जोड़ती हुई जमना ने कहा, वा काकीजी, तुमने भी अच्छी लुगाई से रिस्तो लगाइ दियो।'

हँस कर दादी ने कहा, 'क्यूं ?—मरी को जलण होण लगी ?—भई जमना, सच्ची पूछे तो जिनगानी चार दिन की, जवानी तो और भी थोड़ी। चार दिनों की चाँदनी, भोत अन्हेरी रात !—मौज-मजो अभी नईं करो तो कद करो ?—इण रामसाय की लुगाई ने देख, सरीर खस्तो हुइ गयो, पगां से भी लँगड़ी ! हुइ गई कि नई ?'

जमना ने कह, 'तो दादी, लकवा मार जाणे से कुण-सी सती हुइ गई ?—पनरा वरस के बाद फिर गोद भरी गई कि नईं ?—'

कस्तूरी की माँ ने जोड़ा, 'रामसहाय ने तो चार वरस पहले ही नसबन्दी करवा ली थी !'

दादी ने हँस कर पूछा, 'तमने या भी खबर है ?—बड़ी गुन-आगरी है री तू तो।'

'बैद की घरवाली जो हूँ।—दाई से कहीं पेट छिप सकता है ?'

'सोई तो कहूँ !—नसबन्दी से कईं होय, आदमी की नस तो लुगाई के हाथ में रहवे है। उड़ती चिड़ी-चुगली ई खेत में चोंच मार दे तो बीज पनप जाय ! भगवान की लीलाई तो है।' दादी वोली।

जमना को वातों में रस आ रहा था। पास ही नीम की छाया उतर रही थी। चन्दा को नीचे बैठाकर बोली, 'हियई गड़ जा ! झींतरे में पाड़े-पाड़े जैसी जूएँ तैर रई हैं।' और खुद नीचे बैठकर उसे अपनी गोद में खींच लिया और उसके रूखे मटमैले वालों को कंघी से सुलझाने लगी।

दादी ने पूछा, 'तेरी इस नाइण के कईं हाल है री जमना ?'

'वी' नै कईं होय दादी ?—संड-मुसंडी, पड़ी आदत कदी छूट सके ?—उण दिन इत्ती मार पड़ी और कित्ती गत वनी, पर देख तो रई हो हालचाल।'

'कित्ते घर घाल के वैठी है खसमखाणी ?—पर गुलाबिया जैसा पैसेवारा कहाँ मिलेगा राँड को ?'

कस्तूरी की माँ ने कहा, 'इस गुलावदास की भी क्या मत मारी गई है सासूजी ! घर में लक्ष्मी जैसी वहू और फूल जैसे दो बच्चों को छोड़कर इस झूठी-हँडिया में मुँह डाले पड़ा है।'

चन्दा ने रुआँसी होकर कहा, 'तम तो भौत जोर से वाँछ रई भुवाजी, दुखता है न !'

'मरी को जूएँ कचोटती है तव तो कुछ नईं होता। कंघी जरा अड़ गई तो खोपड़ी छिल गई।—हाय राम, सती सवित्रीजी डूटी कर आई, कित्ती बेर हुइ गई ?' सवने मुँह फिरा कर देखा. तमसा द्रुत पदों से चली आ रही है, और बिना किसी ओर दृष्टि डाले सीधे अपने कमरे का ताला खोल कर भीतर घुस गई है। जितनी जल्दी किवाड़ खुले, उतनी ही जल्दी वन्द भी हो गए। एकाएक ही मानो कोई भूकंप हुआ, सब कुछ स्तब्ध, और फिर सब कुछ पूर्ववत्।

गोपाल की दादी ने कहा, 'एक या है बिचारी जनम-दुख्यारी जाने किण भौ

को बदलो चुका रई है ?—अपने रस्ते जाय, अपने रस्ते आय। कदी आँख भी ऊँची नईं देखी।'

कस्तूरी की माँ ने कहा, 'क्या सासूजी, तुम भी चरका खा गई ?—गुन-आगरी तो इसे कहो। आजकल रोज संझापड़े एक गबरू मास्टर आता है, जद सत्परकाश भी घर पर नहीं होता। बड़ी देर तक किवाड़ वन्द करके खुसर-पुसर चलती है। एक दिन देखना, नया गुल खिलता है कि नहीं !'

बुढ़िया ने आश्चर्यचकित होकर पोपले मुँह से जमना की ओर देखा।

'सच्ची ई तो कहै है दादी। हाथी के दाँत खाणे को और दिखाणे को और। —हथिनी ई तो है ! लाल सुरख गदरा रई है ! जोबन तो इण पर ई वरस पड्यो है ज्यूं !'

कस्तूरी की माँ ने कहा; 'लो भई, सच्ची सावित्रीजी तो ये आईं ?'—सामने से रामसहाय की बहू लँगड़ाती-लँगड़ाती आई और बोली, 'काँई हुइ रयो है ? किन की बात हुई रई है दारी ?' फिर गोपाल की दादी के साथ सहानुभूति जताते हुए बोली, 'कईं सासूजी, आज भी तुमने फुरसत नईं ? किनके लिए इत्ता खटो हो ? गोपाल की बऊ, गोपाल की मां, सब तो है ?'

दादी बोली लम्बी सांस लेकर, 'तमारे बऊ अच्छी मिली भई, भागवन्ती है तू ! किशना और किशनसाय की बऊ ढेर सारा कपड़ा धोकर ले गई नी।'

'तम कई जानो सासूजी, इन चमकचन्दाओन का ढबला ? कपड़ा तो क्रिशना ने रात से ई गला रख्या था। लोगन क दिखाने क आकर थोड़ी हाथ लगा दियो तो काँईं हुयो ! बड़ी कामचोर है ! कई करां, भगवानई अपंग करी दियो, नईं तो अपन किण आगलग्या की परवा करां ? तो भी अपन तो अपणे खाया-पिया और मस्त हुइ लिया। —किनकी बात हुइ रई थी सासूजी ?'

बीच ही में कस्तूरी की मां ने कहा, 'यह है न सती सावित्री पंडताइन, सत्यपरकाश की मां, कलई-चढ़ी कलमुँही की कलई न खुल जाए एक दिन तो कहना।'

लँगड़ी को कुछ याद हो आया, 'ओ माँ, क्रिशना के बाप का कमीजोन हुया क नईं, देख लूं !—कपड़ा कित्ता महँगा है आजकल ? ताकीद नी करो तो मिले भी नईं !' और चबूतरे से ध्यान हटाकर तमसा की कोठरी की ओर दृष्टि करके वह आगे बढ़ने लगी। जानती थी कि तमसा का दरवाजा भीतर से बन्द नहीं होगा। किवाड़ ठेल कर 'कांई हुइ रयो सतपरकाश का माँ' कहती हुई वह सीधी भीतर चली आई।

मशीन में कपड़ा उलझाकर तमसा कपड़े सीना प्रारम्भ कर ही रही थी। 'बोली, आओ जीजी, यह देखो जेठजी का कमीज ही शुरू कर रही हूँ। तीसरे पहर जाने के पहले देकर जाऊँगी !'

'कित्ता दिन हुइ गया दरी ? कल तो विनने भी कही दियो क जद नइँ होय तो कपड़ा वापस लइ लूं । दरजी क हियां से कित्ती जल्दी मिली जाय ?'

'यह तो काट लिया है । दो घण्टे के बाद तो दे ही जाऊँगी । बाकी और कपड़े, ले जाना चाहो तो तुम्हारी मर्जी । ये रखे हैं, अभी काटे नहीं है !'

'अभी काट्या भी नइँ ?'

'शुरू हो गया है काम तो कल संध्या तक ये भी हो जाएँगे । फिर जैसी तुम्हारी इच्छा !'

'पर इत्ती देर क्यूं हुइ गई दरी ?' और वह तमसा के पास ही फर्श पर बैठ गई ।

मशीन चलाते हुए तमसा ने कहा, 'कुछ जरूरी कपड़े आ गए थे जीजी !'

'आजकल तो कपड़ा भी भौत आन लग्या लगे है । कहां से आजाय इत्ता ?'

'अब सत्य भी तो अपने मित्रों और मास्टरों के कपड़े ले आता है न !'

'कित्तो सपूत है तमारो यो सतपरकाश दरी ? हमारो क्रिशनसा' 'य तो—आगलग्या को ब्याव कई हुइँ गयो, राँड न लइ के न्यारो हुइ गयो । दो पइसा कमा कर लाने लग गियो नी !'—

'क्या हो गया जीजी, है तो तुम्हारी आँखों के सामने ही । खाने-पहनने के दिन हैं, और बहू तो बेचारी दिनभर तुम्हारे यहाँ ही बनी रहती है न ! अपने घर का काम निपटाकर तुम्हारे घर का काम भी तो देखती है, और तुम्हारा शिब्बू तो उसी के पास रहता है न ?' सावित्री की कोठरी ऊपर की मंजिल में है, लड़का कृष्णसहाय अपनी बहू को लेकर नीचे की एक कोठरी में रहता है ।

'लोक-लाज से डरे है थोड़ी-भौत, नइँ तो घिसघोल कर पी जाय । अपन तो भासण भी नइँ करां ।'

'तो भी बहू तो तुम्हारी ही कहलाएगी जीजी ! अलग हो तो भी सहारा तो है, मुझ ठूंठ को देखो न, आगे नाथ न पीछे पगहा ! माँ थी उससे कभी बनी नहीं, दूर-दूर रही तब भी सहारा तो था । छह बरस हुए वह भी छूट गया । बड़ी बहन, जैसे कभी थी ही नहीं । एकदम भूल गई । भगवान का दिया तुम्हारे आशीर्वाद का यह एक पूत है सत्यप्रकाश । इसी को देखकर दिन निकाल लेती हूँ किसी तरह ।' और उसने आँखे पोंछ लीं ।

'तो यूं बोल दरी, क आजाद हुइ गई ! —अब तो सतपरकाश भी तो बड़ो हुइ गयो !'

'बस, इसी के लिए जीवित हूँ बहन, वरना विधवा के जीवन में है ही क्या ?'

'अपन से पूछो दरी, तो इन पिल्लाओन क लिए कौन जिन्दो रहवे ? कुत्ता-

बिल्ली के भी तो कई हुइ जाय, और रोज कित्ताई मरे भी ! माँ कईं कम दुख उठाय इन पिल्लाओन की बचपन में ? —पर अब देख, क्रिसनसा'य आँख तक नईं मिलाय ! आग लगे ऐसा बेटा-बेटिन में ।' —इस्से तो निपूतो होनो भलो ।'

'सन्तान अपनी न भी हो जीजी, पर माथे का सिन्दूर ही तो स्त्री का सबकुछ है । घर का पुरुष बना रहे तो स्त्री को और चाहिए ही क्या ?'

'घर का आदमी कईं नियाल करदे दरी ? आगे तो रातपाली ई थी । अब दिन की पाली हुई तो रात क आगलगी यून्यन से ई फुरसत नईं । जनमभर तक कोई कबतलक धूनी रमाया करे ?'

'कोई रमाए या न रमाए, तुमतो रमाए बैठी ही हो जीजी !' व्यंग्य से मुस्कराई भी तमसा, पर इसी बीच सूई से धागा निकल गया, सिरे को दाँतों से काटकर वह सूई पिरोने लगी ।

'आहा !—जैसे तू तो दरी, धूनी की आँच से भौत दूर है । 'और झुकी हुई तमसा के कंधे पर ठोहका मारते हुए बोली, 'सच्ची बोल न, तू कैसे रह लेवे ?– अपने से तो दो रात भी निकल जाए तो तीसरी रात तो आगलगी नींद भी आँख से नईं लगे !'

'जिसका भाग्य ही फूटा हो वह करे ही क्या जीजी ?' बड़ी उदासीनता से तमसा बोली, और बात को खत्म करने के लिए उसने जोड़ा, 'कोशिश करूँगी कि बाकी कपड़े आज रात सोने से पहले हो तैयार कर दूं । इस समय तक तो कल तैयार होही जाएँगे ! दूसरे कपड़े तब हाथ लगाऊँगी !'

सावित्री ने मानो सुना नहीं, बोली, 'देख दरी, अपने पेट में तो पाप है नईं सीधी-सच्ची बात से भलेई कोई नाराज होय !—और चोर जाय चोरी, घर में बोले साँच !—या देख बैंदजी की बैतरनी, या कस्तूरी की मां, मिनीबाई चाल्या जातरा सौ-सौ चूहा खाय ! खोली में जदतलक दवाखानों थी, गिराकन की भीड़ जमीई रहती, और अब ? दूकान बाहर बजार में चली गई तो गिराकी भी खतम हुइ गई । भलेई खुद जाकर बीच बजार दूकान पर बैठे । पर वी दिन तो अब रिया नइं, और नये सिरसे गिराक जमने में भी तो बखत लगे है !—ऊँची नाक करक हुवा वक रई क आजकल सई साँझसे ई तमसाजी की खोली में कोई खप्सूरत मरद आय-जाय । तू तो खुद समझदार है दरी, इन जमाना में बद होनो अच्छो, बदनाम होनो अच्छो नईं ! आगलग्या लोगन को मुँह तो कोई पकड़े नईं !'

तमसा का चेहरा सफेद पड़ गया, चलती मशीन पर उसके हाथ रुक गए ! सावित्री को वह खूब जानती है, कृष्णसहाय उसकी शादी के नौ माह पहले ही पैदा हो गया था । अष्टावक्र श्री रामसहाय सचसुच अष्टावक्र ही थे । मुँह चेचक के दाग

से भरा हुआ, नाक सिरे से खम खाई और उठी हुई, एक आँख भेंगी, पिचके हुए गालों में एक पर नीला दाग, ठोड़ी बीच में चिरी हुई और बाएँ हाथ की चार उँगलियाँ पहले किसी मशीन में आ जाने से गायब ! और रंग आबनूस के कुन्दे जैसा ! शिक्षा-दीक्षा के नाम सिफर। तब वधू उन्हें कहाँ से मिल जाती ? जब वे निराश होगए थे तब उन्हें राह में मिल गया हीरा, न, केवल भरी गोद लेकर ही, बल्कि समृद्धि लेकर भी सावित्री ने उनके उजड़े घर में प्रवेश किया। देखते-देखते वे यूनियन के नेता होगए। चेहरे-मोहरे के बावजूद घर पर लोग उन्हें घेरे रहने लगे, मान-सम्मान बढ़ने लगा। गृहस्थी पनपने लगीं कि अकस्मात् यही सती सावित्री एक दिन अर्द्धांग लकवे का शिकार हो गई ! खैर, इलाज हुआ और न केवल खुद चलने-फिरने लायक होगई, बल्कि पूर्ववत् लोगों को भी चलाने-फिराने लायक होगई, यहाँ तक कि परिवार-नियंत्रण की रामसहाय की सतर्कता को भी ठेंगा दिखाकर इस अवस्था में कुछ ही दिन पहले शिब्बू की माँ बन गई है ! यह सब तो है पर दूसरों की हितचिन्ता से उसे कौन रोक सकता है ? तमसा सब जानती है और नारियों के परस्पर व्यवहार में इस प्रकार का ज्ञान आक्रमण का प्रभावकारी शस्त्र हो सकता है, किन्तु तमसा जैसी निरपराध नारी के लिए रक्षाकवच कैसे हो सकता है ?—भरे हुए स्वर में वह बोली, 'पर वह तो सत्यप्रकाश का मास्टर है !'

'कित्ती भोली हो दरी ?—सत्यपरकास को मास्टर होन से ई तमारो मास्टर तो नइँ हुइ जाय ? हुस्यारी स काम होय जद तो मजो है।—कहे क्यूं नइँ क बुआ को बेटी भाई है !'

'पर वह बेचारा तो साँझ गहराने के पहले ही चला जाता है !—सचाई का और क्या सबूत हो ?'

'सचाई की सबूत किनक चाहिए दरी ? निठल्लाओन तो हिंया बुराई को सबूत सूंघता फिरे है !—पर दरी, यो आगलग्यो मास्टर कैसो है री ? सुन्ने में तो आय कि भौत खूप्सूरत है ! हमक भी बता ! आज संझा क आयगा कईं ?'

तमसा अपने को रोक न सकी, मशीन छोड़कर तमक कर उसने कहा, 'पापी को पाप के सिवा और सूझता ही क्या है ? सुनते हुए लज्जा लगती है, कहते हुए भी तुम्हें नहीं लगती ?'

तमसा के तेवर देखकर सावित्री भी दीवार का सहारा लेकर उठ खड़ी हुई और बोली, 'लोगन न करता सरम नइँ आय तो कहनो तो पड़े ई ! और कपड़ाओन में तो सभी नंगो, इनमें बुरो मान्ने की कई बात थी ? अपनने तो कोई तमारा आगलग्या माल में हिस्सो बटानो नइँ है। पर पड़ोसन की लाज सो अपनकी लाज। अपनका जो होय उनक सरमई नइँ, दुख भी लगे। पराया तो दूर हुई जाय !'

'कितना दुख लगता है सो मैं जानती हूँ जीजी ! बहुत भुगत चुकी हूँ, मुझे किसी की सहानुभूति नहीं चाहिए। अगर तुम सोचती हो कि कपड़े देकर एहसान कर रही हो और इसलिए जो मन में आए सो कहने का तुम्हें अधिकार हो गया है, तो लिए जाओ ए कपड़े। मेहनत करती हूँ किसी से भीख नहीं लेती !

सावित्री भी कोई दबनेवाली नहीं, गरजी। 'गरब तो तमसा, राजा राम ने भी नइँ फल्यो ! जवानी और खूप्सूरती भगवान हमके भी दी थी। सरीर से अपंग हुइ गया तो कइँ हुयो, धार लऊँ तो आज भी दरजी तो दरजी, थान का थान कपड़ाओन लेकर लखपती साहूकारन ने दरवज्जा पर खड़ा रख सकूँ।—दो बात भली की करी, नराज होओ तो अपणी बला से, मास्टर ने घर में घुसाओ कि आगलग्या कालाचोर ने।—मियाँ-बीबी राजी तो कइँ करे काजी ? कपड़ाओन, कयरई हो तो लियाँ जाऊँगी। आगलग्या मास्टर का कपड़ाओन भी तो भौत है। मजूरी भी लम्बी-चौड़ी होय तो इन गरीबन का कपड़ा में कौन माथो खपाय ?'

गुस्सा पीकर तमसा बोली, 'सबेरे स्कूल जाने से पहले सत्यप्रकाश कपड़े तुम्हारे घर पर पहुँचा जाएगा। आप जाओ यहाँ से !' 'तमसा ने पीठ फेर ली तो सावित्री को लंगड़ाते-लँगड़ाते निकल ही जाना पड़ा। दरवाजा खोलकर तमसा फिर मशीन के सामने आ बैठी।

रात काफी बीत चुकी है। सब तरफ सुनसान छाया हुआ है, पर उसने सत्य से देरी का कारण भी नहीं पूछा। बराबर ही तो देर से आता है आजकल। पूछने पर आखिर वही तो उत्तर है—मैं कोई लड़की तो नहीं ! —जान-पहचान वाले दोस्त नहीं होते किसी के ? —संबंध तो सबसे रखना ही पड़ता है।—क्या किसी के साथ मिलूं-बैठूं, हँसू-खेलूं भी नहीं ? —तू बच्ची तो नहीं कि सब बातें समझानी पड़ें। —रात अभी हुई ही कौन सी है ? —बाहर देख, कितना भीड़ भड़का है, किवाड़ बन्द कर घर में बैठे रहने से तो लगता ही है ! —सो, तमसा चाहे स्त्री जाति हो सत्य-प्रकाश तो नहीं है। वह तो हँसेगा-खेलेगा, दिन और रात उसके लिए क्या मानी रखते हैं ? –वह अपनी मर्जी का मालिक होता जा रहा है, उसके पंख खुल गए हैं।

खाना खाने बैठा तो बोला, 'आज तो काफी कपड़े लिए बैठी है। सोने का इरादा नहीं है क्या ?'

कहे सावित्री के साथ घटे दुपहर के कदाकार काण्ड की कथा बेटे से ? समर्थ हो रहा है तो क्या कर सकेगा उसका उपचार ? —पर मन मसोस कर बोली, 'शिब्बू की माँ जल्दी मचा रही है न कपड़ों की।'

'तू इतना खटती क्यों है माँ ? —दो-दो घरों का काम और फिर यह रात

भर सिलाई ! अब तो मैं भी काफी कुछ ले आता हूँ ! अब तो सोचता हूँ' मिल जाए तो नौकरी कर लूँ !'

'और पढ़ाई-लिखाई का ? —बी० ए० कर ले बेटे, तो चाहे तो मुझे आले में बिठाकर पूजा किया करना। तू जो कमाता है वह होता ही कितना सा है रे ?—और अब तो तू पढ़ने में भी उतना समय कहाँ लगाता है ? —पास हो जाता है सो तो ठीक है, पर आगे की पढ़ाई तो मेहनत माँगती है न !'

'किसने कहा कि मेहनत नहीं करता ?'—

'कहेगा कौन ? —क्या मैं खुद नहीं देख सकती ?'

'जानता हूँ किसने कहा होगा। —उस मास्टर के बच्चे ने ही तो भिड़ाया होगा ! और क्या-क्या भिड़ाया है उसने ?' तमक कर सत्यप्रकाश ने कहा।

'मास्टर का बच्चा ? —महेश जी को तू मास्टर का बच्चा कहता है ?' दृष्टि उठाकर तमसा ने देखा कि सत्यप्रकाश की आँखों में दो क्रूर बाघ हिंसा के लिए छटपटा रहे हैं, जिन्हें चेष्टा करके भी रोक पाना उसे सहज नहीं लग रहा है। मन का कोई भूला-भटका हिरन उसके पंजे में कहीं फँस न जाए इसलिए तमसा ने दृष्टि नीचे कर ली।

'अच्छा ! तो लफंगे महेश्वर साहब महेशजी तक हो गए हैं ?—खूब !'

'लफंगा ?' तमसा के मुँह से अकस्मात् सत्यप्रकाश की वाणी ही प्रतिध्वनित हो उठी।

'सारा शहर कहता है। घर-बार, माँ-बाप, किसी का कोई ठिकाना नहीं। पूछे कोई तो कहेगा, पाकिस्तान में रह गया सब कुछ ! वहाँ तो सभी महल-अटारियाँ, राज-पाट छोड़कर आए हैं ?'

'तमसा ने उत्तर न देकर कपड़े को मशीन में फँसाया और पहिया घुमाकर उसकी खटरपटर में अपनी झुंझलाहट छिपाने की चेष्टा की। अपनी बहक में सत्यप्रकाश कहता रहा, मेहनत नहीं करता। यह नहीं कहता वह कि किसी खरस्टान लड़की के साथ घूमता-फिरता हूँ ?—जैसा कि वह खुद है ?'

पर अपने-आप में खोई मशीन के साथ तमसा खुद मशीन बन गई थी। एक हाथ पहिया घुमा रहा था, दूसरा कपड़े को ठेलता जा रहा था। देखकर सत्यप्रकाश ने कहा, 'सीं तो रही है, पर नीचे की बाबिन से धागा भी आ रहा है ?'

सचमुच बाबिन में धागा शेष हो चुका था, तमसा जान ही नहीं पाई थी। लम्बी साँस लेकर बोली, 'पागल ही हो गई हूँ। किसी दिन मुझे भी पागलखाने न जाना पड़ जाए कहीं।'

पागलखाने के साथ उसकी जितनी स्मृतियाँ जुड़ी हुई हैं, वे आँखों की कोर में भाप बन कर दृष्टिपथ को धुँधलाने लगी, किंतु बारबार पलकें गिराकर उसने दृष्टि साफ की और बाबिन से रील निकाल कर उसमें धागा लपेटने लगी। सत्यप्रकाश उसी तरह थाली पर बैठ खाना भकोसता रहा। उसकी दृष्टि तत्काल कोई अवरोध न पाकर शायद क्लारा के साथ बीती संध्या की स्मृति से खेलने लगी थी। धागा पिरोने के लिए पहिया घुमाकर तमसा ने सूई नीचे करनी चाही, पर पहिया कुछ अधिक घूम गया और बाएँ हाथ की आगे बढ़ी तर्जनी में सूई गड़ गई। 'उफ्' कहकर अँगुली को बाहर निकाला तो खून उभर आया था। तमसा ने अँगुली मुँह में डाल ली।

देखकर सत्यप्रकाश बोला, 'निकल आया न खून ?—उस मनहूस का शकुन ही ऐसा है। बात करने में ही जब अशुभ हो तो जहाँ उसके पैर पड़ जाएँ वहाँ ?' और वह व्यंग्य से मुस्करा दिया।

'सप्पू !' तड़प कर तमसा ने कहा।

'मैं जानता हूँ, तुझे अच्छा नहीं लगेगा। जादू कर रक्खा है न तुझ पर उसने !'

दोनों की नजरें मिलीं। तमसा की आँखों में भी कुचली हुई नागिन की फुत्कार उभर आई थी उसने कहा, 'होश में है रे तू ?'

'क्यों ?—क्या नशा करके आया हूँ ?—नशा मैं नहीं माँ, वह मास्टर करता हैं, महेश्वर—तेरे महेशजी !—नशे में आदमी को अपनी बातों पर काबू नहीं रहता, और काबू न रहे तो फिर बातों पर ही क्यों ?—आगे और किसी हरकत पर ही क्यों हो ?'

'तू समझता है तेरा मास्टर यहाँ शराब पीकर आता है ?'

'मैं ही क्या समझता हूँ, सारी दुनिया समझती है ?'

'सारी दुनिया समझे या न समझे, तू तो समझता ही है। तुझ जैसे उग्रभाग्य को जन कर कृतार्थ हुई सप्पू, कि तू ही आज मुझ पर पाप धरने लायक हो गया है।'—अधिक वह कह न सकी, कंठावरोध के साथ ही आँखों के आगे अँधेरा छाने लगा तो रक्तसने हाथ से ही उसने अपनीं आँखें छिपालीं। सत्यप्रकाश का खाना मानो समाप्त ही नहीं होना चाह रहा था। तमसा को भी खाना हो सकता है, इसकी उसे चिन्ता ही नहीं थी। मुँह का निवाला उतारने के लिए गिलास उठाई तो एक ही घूंट में सब पानी गटक गया, और बोला, 'मैं तो चुप हो जाऊँगा माँ, पर दुनिया का मुँह कौन पकड़ेगा ? इज्जत रहती है तो दुनिया की निगाह में ! मेरी निगाह को कौन पूछता है ?'

'मुझ दुनिया से सरोकार नहीं है सत्य !' तमसा ने शक्ति बटोर कर कहा, 'तुझे संदेह हो तो शाम को तू यहाँ क्यों नहीं रहता ? यही तो कहती रहती हूँ। जाने कहाँ-कहाँ किस-किस के साथ मारा फिरता है और जाने क्या-क्या सीख आता है। पहले तो कभी मुँह में जीभ ही नहीं थी !'

'और अब कपाल पर दो आँखें और वगल में दो कान भी उग आए हैं।'

'इसीलिए क्या यह सब ऊल-जलूल बकने का गौरव पा गया है ?—अपने ऐव देखते बनता नहीं।'

कटोरदान की रोटियाँ शेष हो चुकी थीं। झल्लाकर सत्यप्रकाश ने हाथ धो लिए, लोटे का सारा पानी थाली की छोटी कोर से उपट कर फर्श पर फैल गया, पर बिना चिन्ता किए वह उठा और तमसा के सामने उकड़ूँ बैठते हुए बोला, 'बोल, क्या ऐब देखे हैं मेरे तूने ?—क्या मैं शराब पीता हूँ ?—क्या मैं लड़कियाँ लिए······'

तमसा ने सत्यप्रकाश के आगे बढ़ाए हुए मुँह पर खींचकर एक तमाचा जड़ दिया और कहा, 'शर्म नहीं आती निर्लज्ज, यह सब वकते ?—देखता नहीं, कितने उपकार किए हैं उसने तुझ पर ?'

गाल सहलाते हुए सत्यप्रकाश बोला, 'अच्छा किया माँ तूने, मेरी आँखें खोल दीं। अब तक तेरे हाथ से कभी यह प्रसाद नहीं पाया था। उसके उपकार इतने मँहगे होंगे यह नहीं जानता था !—खैर, अपनी मर्जी की तू मालिक है, और अपनी मर्जी का मैं !—गुस्सा रह गया हो तो यह गाल वाकी है माँ—'और उसने दूसरा गाल माँ के सामने बढ़ाया, पर तमसा के सामने अंधकार के सिवा कुछ न बचा था। मशीन पर रखे हाथ पर माथा टिकाए वह निश्चेष्ट बैठी थी। वही बोला, 'नहीं मारती अच्छा !—घर में सो तो जाऊँ न ?'

कोठरी में एक ओर बिस्तर बिछा हुआ था। कट-छँट कर दरी काफी छोटी रह गई थी, पैताने टाटा का एक थैला बिछा था। ऊपर कतरन से भरी एक कथरी और उस पर तमसा की पुरानी साड़ी की साफ खोल चढ़ी हुई थी। कमीज खूंटी पर टाँग कर लेटते हुए सत्यप्रकाश ने कहा, 'अवतक बच्चों में गिना जाता था, कोई मुझे कुछ कहता न था। तुम क्या करती और क्या सहती हो, यह भी मेरी जिम्मेदारी न थी। पर दुनिया मेरी ओर अँगुली उठाकर कानाफूसी करती है, और बिना वात ही मुझे जिम्मेदार ठहराने लगी है। तुम न समझो, पर मैं तो मुँह पर घूंघट डालकर नहीं जाता बाहर।'

तमसा ने मुँह उठाया। चेहरे पर रक्त की एक बूंद भी न थी, और अविराम बहे हुए आँसुओं में सारी कांति बह चुकी थी। अपराधी की भरी-वाणी में उसने

कहा, 'सचमुच तू बड़ा हुआ सत्य ! घर का मालिक तू ही तो है सदा से, सब कुछ तेरी ही तो जिम्मेदारी है। मैं तो जो कुछ हूँ, तेरी परछाईं ही तो, तेरी परवरिश सेवा के लिए तेरी दासी भर ! जो तेरी माँ थी वह तो मर गई तेरे पिता के साथ ही !—ले मेरे इन हाथों को तू काट डाल, जिनसे मैंने तुझे मारा······मेरे मुँह पर इतने तमाचे मार कि मैं इसे कहीं दिखाने लायक न रहूँ घूँघट में भी !' कंठावरोध से वह आगे कह न सकी।

'इस घर का मालिक ?—सारी दुनिया जानती है कि इस घर की मालिक तू है। मैं कौन ?—कहेगी तो मैं ही निकल जाऊँगा। पर जबतक हूँ, उस हरामी का नाम मेरे सामने न आए तो ही अच्छा है। और करवट बदलकर सोने के लिए उसने मुँह सीं लिया।

तमसा कबतक मशीन पर पूर्ववत् सिर टिकाए बैठी रही, कोई नहीं जानता। सारी रात, और सारा जीवन ही वह इसी तरह सिर टिकाए पड़ी रहे तो कौन आकर उसे उठाएगा ? जाने कब यन्त्रचालित-सी उठी वही, मशीन ढँककर एक ओर रखी। सत्यप्रकाश सो रहा है, गहरी निर्द्वन्द्व निद्रा में। गाल पर तमसा का आघात अब उसकी चेतना में नहीं है, किंतु तमसा के मन-मुकुर में तो वह कदाकार बिम्ब ही स्पष्टतर होता जा रहा है। मक्खन जैसे मुलायम कपोल पर अँगुलियाँ मानो रक्त में तैर कर उभर आई हैं। अँगुलियाँ नहीं, फन फैलाकर सांप उठ खड़े हुए हैं। तमसा को डस नहीं लेते सो केवल इसलिए कि उसे इतनी शीघ्र यंत्रणा से छुट्टी नहीं दे देनी है। सामने आले में रक्खी बालकृष्ण की मूर्ति के सामने जाकर उसने सिर नवाया। सत्यप्रकाश को नहीं, क्या उसने अपने बालकृष्ण को ही चपत नहीं मारी है ?—हे प्रभो, तुम जो चाहो, मुझे दंड दो, किंतु मेरे सत्यप्रकाश की रक्षा करो, उसे कुछ भी न हो। वह तो तुम्हारा ही रूप है प्रभो। तुम ही तो इस रूप में मुझे प्राप्त हुए हो भगवन् !—मूर्ति को आँखों में भरकर उसने नीचे सोये हुए सत्यप्रकाश की ओर देखा। कितना सुन्दर लगता है नींद में भी ! जिस गाल पर उसने निर्दय प्रहार किया है क्या उससे सटाकर वह प्रहार अपने गाल पर नहीं ले सकती ? कन्दील की मुलायम रोशनी में वह सत्यप्रकाश के पास ही बैठ गई, और मनभर कर निहार लेने के बाद उसके शरीर पर झुकी कि उसके आहत गाल को चूम ले, अपने अधरों के कोमल स्पर्श से उसे सहला दे—कि मानो तमसा के मुँह पर किसी ने कसकर एक तमाचा मार दिया। सत्यप्रकाश के मुँह से एक तेज विचित्र गंध बिजली का झटका बनकर पलभर में ही उसके सारे बदन में कौंध गई—तम्बाकू की नहीं है यह गंध, वह पहचानती है उस गंध को। सत्यप्रकाश तो अभी कल से चोरीछिपे पीने लगा है

पर उसका पति ज्ञानप्रकाश तो बीड़ियों पर बीड़ियाँ फूँका करता था !—इस गंध से तो जैसे तमसा का सारा अंतर तोड़मरोड़ कर निचोड़ा जा रहा है, और यदि समस्त शक्ति लगाकर उसने अपने आपको सम्हाल न लिया तो उसे अभी वमन हो जाएगी !—उसने कहा था न, कि क्या वह नशा करके आया है !—तो क्या यह शराब की गंध है ? यदि गंध ही ऐसी उबकाई पैदा करे तो उसका सेवन ?—सत्य क्या सचमुच शराब भी पीने लग गया है ?—हे भगवान्, तभी तो न जाने क्या ऊल-जलूल बक गया है ! और यह क्या पहला ही अवसर होगा ? उसकी आँखों के आगे अँधेरा छाने लगा। कन्दील की यह रोशनी भी क्यों ?—सहज ही उसका हाथ कन्दील की कल पर पहुँच गया और ज्योति की वह क्षीण शिखा भी काँप कर उस क्षण की निबिड़ता में खो गई। तमसा वहीं नंगे फर्श पर दोनों हाथों में सिर टिकाए सारा शरीर सिकोड़कर औंधी ही लेट गई। कोठरी का अँधेरा मानो नंगा होकर सारी चेतना पर फैलने लगा।

अँधेरी रात और कालकोठरी के कठोर अँधेरे में पलक खुले हैं या बन्द, तमसा के लिए बेमानी हैं। उसके लिए सर्वत्र एक जैसा घना अँधेरा है। कोई रूपाकार या भाषा न हो अँधेरे की, किन्तु आज तो वह रंगों का सार चुराकर तमसा की आँखों में साकार हो गया है, कानों में मुखर हो उठा है और छा गया है सारी चेतना पर स्थान और काल की समस्त गोचर-सीमाएँ परिव्याप्त करके !

वह कौन अँधेरे के रंगों में संकेत कर रहा है ?—उसका पति, सत्यप्रकाश का पिता ज्ञानप्रकाश ? अँधेरे का उदर फाड़कर ज्ञान का प्रकाश मूर्त हो रहा है—पर, सत्यप्रकाश को मारा है न तूने !—तेरे हाथ की अँगुलियाँ उभर आई हैं, देखती है न ?—देख हथेली खोल कर ! यह सन हुआ रक्त-याद है न वह कहानी, अंग्रेजी नाटिका से सुनाई थी !—सभी समुद्रों का पानी भी इस रक्त को नहीं धो सकता पिशाचिनी ! देखती नहीं, मक्खन जैसे गाल पर अँगुलियाँ नहीं, दूध के समुद्र में रक्त की धाराएँ तैर आई हैं ! क्या दृष्टि पथरा गई है ? !—घनी दाढ़ी-मूँछ में भटका रक्तहीन यह चेहरा तो सूरजपुर की कैद की कोठरी में छोड़ आई थी न, बहुत पीछे !-यह गुलाबी चेहरा तो, ज्ञान के प्रकाश से दीप्त, सत्यप्रकाश का है !—ना-ना, यह तो उन्हीं का है !—भूल हुई, क्षमा नहीं चाहिए—इस हाथ को तोड़ दो, काट फेंको इसे !—चांडालिनी का ही तो करतब है ! हाँ-हाँ ले लो, भार होगया है सत्यप्रकाश नहीं मेरे देवता ! यह प्राण !...पर कंकालसार ये हाथ-अस्थियों का कंकाल...सांस घुटती जा रही है न . ब्-ब्-बोल कैसे निकलें, ग्-गला जो फँसा रखा है !—एक बार देख लेने दो न, बस एक बार फिर निकाल लेना इन आंखों को ! ...ओ माँ...ये अँगुलियाँ ग्-गड़ी जा रही ..ओ-माँआँआँ और पलकों पर मढ़ी

हुई मानो शीशे की चादर को एक चीख के साथ तमसा ने सरकाया, क्या पलकें झँप रही हैं उसकी ?—नहीं, अँधेरा वैसा ही घनीभूत है। छाती की धकधक अँधेरी-नीरवता में इतनी मुखर ही उठी है मानो किसी दूसरे कमरे में हथौड़े चल रहे हैं। ऊपर के झकोरे से पसीने के बावजूद कभी हवा का हिलोरा उसके बदन को छू जाता है . यह फुत्कार नहीं, साँस है गहरी नींद की, नशे में भूली गहरी नींद की। तमसा ने हाथ फैला कर टटोला। वही तो, पैर हैं सत्यप्रकाश के ! तब कितने नन्हें-नन्हें से, कोमल-कोमल थे ? नहीं, यह तो उसी की गरम साँस है। फुत्कार ? नागिन है वह ? —हाथ नहीं, फन फैलाकर डस लेना चाहा था न ?—तभी तो घूर रही थीं उनकी आग्नेय आँखें ! —भूल ही चुकी थी उस स्पर्श को। कितना ठण्ठा, निष्प्राण, सतृष्ण ?···गले की धमनियों का सारा ही रक्त चूस जाना चाहता था क्या ? —चूस क्यों नहीं लिया ?

कितना समय हो गया ? —सब कुछ तो सूना हो गया। —वह स्पर्श जिससे रोमांच हो जाता है, अब नहीं है, कहीं नहीं। कभी होगा भी नहीं। कुछ न पाकर यह आग जो अपने ही को जला रही है, एक दिन सब कुछ स्वाहा कर आप ही बुझ जाएगी। —सावित्री ने कहा था न ··ओह ! कहाँ वे और कहाँ यह महेश ?—अरे सत्य, तू समझता क्यों नहीं ? समझेगा कैसे ? मन में ईर्ष्या की आग सुलग रही है न ! —उस आसन पर कैसे किसी अन्य को बिठा सकती है तेरी माँ ? —देख न अपनी सूरत—उस समय दो बरस का ही तो था, तब भी वही मूर्ति क्या स्पष्ट नहीं हो चुकी थी ?—वही नाक, वही आँखें !—स्पर्शबोध तो आज भी वही है रे !—तुझे छाती से सटाती हूँ तो जैसे···अरे, सोने दो न ! नींद आ रही है···थक तो गई ही हूँ। ···क्यों परेशान कर रहे हो···अबोध्य न बनो इतने···यह साड़ी फट जाएगी न···क्यों हो रहे हो इतने अधीर ? ···कहीं भागी जा रही हूँ क्या ··रोशनी नहीं-नहीं, बुझा दो इसे, मेरी सौगन्ध सत्य रो पड़ेगा न···ओह, यह अङ्गारे क्या रख दिए ओठों पर ?···मुँह दूर करो जी···यह बीड़ी की गन्ध···छोड़ो न···साँस भी नहीं ली जाती। ओठ पर क्या दाँत ही गड़ा दिए हैं ? शर्म नहीं आती ? खून उभर आया तो देखकर पड़ोसिनें ही क्या कहेंगी ?···यह पिघली आग जैसी क्या उतार दी है मेरे गले के नीचे···पिसी जा रही है न छाती ·· बड़े शठ हो। नहीं बोलती जाओ···कभी नहीं ! नहीं खोलती आँखें, क्या मुझे लज्जा नहीं लगती ? तुम्हारे जैसी निर्लज्ज हो उठूं ·· अच्छा, अब बहुत हो चुका ·· लेट भी जाओ अब, चुपचाप ·· शिश्श् ·· बोलोगे नहीं एकदम, वरना ·· यह अट्टहास ?—हाय राम कर दी न रोशनी ? ·· अरे तुम ? ··· तुम ? ·· म्-म्-म्-महेश, तुम्हारी यह मजाल ? · इसलिए प्रश्रय दिया था तुम्हें ? ठहरो, भस्म करती हूँ अभी। एक सती को भ्रष्ट करके उसका लड़का छीन लेना

क्या इतना सहज है ? कहाँ छिप गए—चोर ? —डर गए न ? कायर ? —अकेली हूँ तो · मौत जैसी ठण्डी इस नंगी अभ्रभेदी चट्टान पर · चट्टान भी हिल उठी है ?—लुढ़क पड़ेगी ? थामने के लिए कोई सहारा · नीचे कितना गहरा, कितना अन्धेरा··· क्या है वहाँ ? कुछ तो नहीं दीखता · क्या भूमिकम्प है यह ? अन्धेरे का यह कालकूट पहाड़ करवट बदल रहा है ? ·· साँप की तरह यह क्या लिपटा जा रहा है शरीर से ? —लिपटता ही जा रहा है। —कितनी चेष्टा करे और ? —पैर डगमगा रहे हैं···सारा पहाड़ ही डोल रहा है···ओ माँ, यह तो किरणों का साँप है, प्रकाश का साँप !···क्यों खींचे जा रहा है रे सत्य ? —गिर पड़ूंगी न ··यह पहाड़, यह चट्टान ···यह गिरी, गिरी चट्टान सिर के ऊपर लुढ़कती हुई, यह यह···

किरणों की रज्जु ऊपर पहाड़ के शिखर पर कुण्डली मारे बैठी है, यह चट्टान अभी पीठ से सट कर पीस देगी···सब कुछ शेष हो जाएगा तमसा का। पीछे मुड़कर देखने का साहस ही कहां है ? आँखें बन्द हो रही हैं, क्या सदा के लिए नहीं ?··· अब और साँस नहीं ठहर पाती ··ली ही कहाँ जा पाती है ?··· घुटती जा रही है···फैला हुआ है यह चारों ओर···घना कुहरा, आस-पास, ऊपर-नीचे, शरीर के भीतर से भी जो जड़ता उभर रही है वह भी तो कुहरा ही है···साँस नहीं, वही जड़ता, निबिड़ता···जमती जा रही है···ठोस ··अब स्वप्नलोक की विरलता नहीं··· घुमड़-घुमड़ कर जमती ··ज्-ज्-ज्-जमती···जा रही ई ई ··घन्-घनता···नि बि-ड़्-तू अ · आ···आ···

●

उल्काओं के पत्तन

भीतर ही नहीं, बाहर भी साँझ की उदासी गहरी हो चली थी। तमसा का खाना बन चुका था। चिपककर सूख गए आटे को छुड़ाने के लिए तमसा परात में पानी डाल चुकी थी। आग जल रही थी, यद्यपि चूल्हे से बाहर निकली जलती हुई लकड़ियाँ परात के पानी में डूबकर शीतल होने का राह देख रही थीं।—चूल्हे के अङ्गारों को बाहर निकाल कर तवे से ढँक देने का प्रयोजन है। अन्य शेष काम में पाँच सात मिनिट से अधिक नहीं लगते, किन्तु जब किवाड़ पर धक्का देकर महेश्वर ने भीतर प्रवेश किया तो वह आधे घण्टे से चूल्हे के पास ही अन्यमनस्क बैठी थी। राह देखती हुई लकड़ियाँ यूँ हीं बुझ चुकी थीं, अङ्गारे राख हो गए थे, और गीला आटा हाथ पर ही सूख चला था। आते ही महेश्वर ने कुछ कहा है; पर क्या कहा है तमसा को कुछ खयाल नहीं रहा। उत्साह दिखाकर बोली वह,

'आओ आओ, तुम्हारी ही राह देख रही थी। चाय पियोगे न ? —चूल्हा भी इसीलिए नहीं बुझाया।'

'चाय जरूर इनकार करने की वस्तु नहीं है। पर चूल्हा तो बुझा हुआ है। देखता हूँ, यह मुद्रा तो किसी योगी के ध्यान की मुद्रा है।'

'योगी का ध्यान भाग्य में होता तो तर जाती। उठूँ या दरी खींच लोगे ?—बुझ गया हो तो भी गरम तो है चूल्हा !! अभी आग पकड़ लेती हैं लकड़ियाँ !—कितने दिन बाद आए हो ?'

अलगनी से दरी खींचकर उसी पुरानी जगह बिछाते हुए महेश्वर बोला, 'कितने दिन ? —अभी उस दिन ही तो आया था, हफ्ता-भर भी तो नहीं हुआ।' और दीवार का सहारा लेकर वह बैठ गया।

'सात दिन कम होते हैं क्या ? —जानते हो, कल फिर वह समूची रात गायब रहा।

'पूछा नहीं कहाँ रहा ?'

'पूछने से बताता वह ? —कह तो तभी दिया था न कि लड़की नहीं है वह कि चिन्ता की जाए। —बार-बार क्या पूछूं ? —अब तो पता अपने ही तौर पर लगाना होगा। —तुम कह रहे थे, कुछ आगे टोह मिली ?' —और पतीली में पानी डालकर उसने चूल्हे पर चढ़ा दी। लकड़ियाँ धुआँ देने लग गई थीं।

'टोह तो मिली है, पर बहुत उत्साहजनक नहीं। कॉलेज तो जाता है, पर वह होता ही कितना-सा है ? पढ़ाने वाले पढ़ा देते हैं, कोई कितना पढ़ता है इससे वहाँ मतलब नहीं। हाजिरी भी 'हाँ' कहने भर से मिल जाती है, वहाँ 'हाँ' चाहे जिस मुँह से निकली हो।' सत्यप्रकाश प्रथम श्रेणी में मैट्रिक पास करके कॉलेज में प्रवेश ले चुका था।

'संध्या को कहाँ रहता है ?'

'प्रायः तो उसी आवारा लड़के मँगरू के साथ या उसके गुट के साथ, जहाँ जुआ चलता है। —वहाँ जब नहीं होता तब कहाँ जाता है इसका पता लगाना है। मुझे इसी की चिन्ता है।'

'चिन्ता ? — कोई खास बात देखी है क्या ? —बीड़ी-सिगरेट पीने की बात तो मैंने बताई थी।'

'वहाँ तक तो ठीक भी है। एकदम से छोड़ी मैंने भी कहाँ है ? —पर··· सत्यप्रकाश को आँखों से देखा नहीं, पर मँगरू के साथ, और अकेले भी, उसे अंग्रेजी शराब की दूकान का चक्कर लगाते लोगों ने देखा है। —लो, खो गई न फिर अपने आप में ?—पानी खौल रहा है। डालो उसमें कुछ चाय-वाय।'

लम्बी साँस लेकर तमसा उठी। टाँड पर रखी शीशी से हथेली में कुछ चाय उड़ेली और पतीली में छोड़कर पतीली को नीचे उतार लिया। एक छोटी पतीली में दूध था, उसे चूल्हे पर चढ़ा दिया।

'कितनी बार उठती-बैठती हो ? —मुझसे कहा होता तो मैं ही उतार देता।'

'उठना-बैठना ही होता तो क्या दुःख था ? जीवनभर तो गिरती-पड़ती रही हूँ।'

'तबतक मैं जो नहीं था !'

'और अब ?' अतीत की उस रात के दुःस्वप्न की झाँई के लिए अजीब दृष्टि से उसकी ओर देखकर वह बोली।

'उठाऊँगा तुम्हें ! गिरने कदापि नहीं दूंगा !'

'डर है। कहीं अपने उत्साह में मुझे और भी गहरे न गिरा दो !' और पास रखे कप-प्लेट में उसने कपड़ा रख कर चाय छानी, और ऊपर से दूध-चीनी डालकर

चम्मच से हिलाते हुए महेश्वर के सामने सरका दी। महेश्वर तमसा की ओर देखता ही रहा !

'मिथ्या कहती हूँ ?—इस तरह क्या देख रहे हो ? कभी देखा नहीं ?'

'हर क्षण ही नई जो लगती हो !'

'मुझे पाप लगेगा महेश ! तुम नहीं जानते, मैं एक निष्ठावान शास्त्रज्ञ ब्राह्मण की कन्या हूँ !'

'खुद भी तो उतनी ही निष्ठावान और शास्त्रज्ञ हो ! है न ?—पर देखतो मैं रहा हूँ। पाप लगेगा तो मुझे !–और अगर नर्क भी जाना हुआ तुम्हारे लिए या तुम्हारे बदले, तो वह भी स्वर्ग होगा !—अपने लिए चाय नहीं बनाई ?'

सिर हिलाकर तमसा ने कहा, 'नर्क की सीमा में इतनी अंधेरगर्दी कहाँ चलती है ?'

'स्वर्ग में चलती है क्या ?–तब तो अपना स्थान निश्चित स्वर्ग में ही होगा !'

'मजाक नहीं महेश ! तुम मुझे इस तरह घूरा मत करो। मुझे भय लगता है !'

'पर यह तो मेरी आँखों का दोष हुआ !' प्याले को मुँह से लगाकर वह बोला, 'एक दिन इन आँखों पर नाज था मुझे, किसी पर नहीं टिकती थीं। रोक रखने के लिए ही चश्मा लगाता था !'

'और अब वे अड़ गई हैं !—अड़ीले टट्टू की अपेक्षा क्या वे मुँहजोर तुरंग भले नहीं थे ?' क्षणार्ध के लिए दोनों की दृष्टियाँ मिलीं। मुस्कराहट भी लक्ष्य कर ली महेश्वर ने ! बोला,

'संस्कृत ही नहीं, हिन्दी के बिहारीलाल और दुलारेलाल को भी पढ़ चुकी हैं आप !'

'नहीं-नहीं ! मुझे बदनाम मत करो महेश ! मेरे पिता बड़े विद्याव्यसनी थे, व्रजभाषा में कविता भी करते थे ! उनका ही एक दोहा है...जाने दो। चाय पियो, ठंडी हो रही है !'

चाय का कप उठाते हुए महेश्वर ने कहा, 'यानी तुम्हारा मतलब है तुम खुद...'

'मेरा मतलब कुछ नहीं ! मेरी बात ही क्या है ?—पढ़ा तो था पर योग्य पिता की योग्य पुत्री नहीं हो सकी। जो पढ़ा, वह भूल जाने के लिए ही तो। नारी के जीवन में उस सबकी आवश्यकता ही क्या है ?—साथ दिया तो, देखते तो हो, खाने-परोसने और सीने-पिरोने की कुछ जानकारी ने !—'वह भी कितनी अधूरी ?–

चाय तक तो बनाकर ढंग से पिला नहीं सकती ! यह काढ़ा क्या तुम जैसे रसिकों को अच्छा लगता होगा ?'

'किसने कहा कि मुझे अच्छा नहीं लगता ?'

'सत्य ही कहता था कि तुम उन बड़े बड़े होटलों में ही चाय पीते हो जहाँ चाँदी के बर्तनों में ही वह परोसी जाती हो ! अपनी इच्छा से चाय, चीनी, दूध— भला वे ढंग मैं कहाँ जानती हूँ ?'

'पर वह तो मेरे जंगलीपन का दास्तान है। अब तो मैं ऐसी ही चाय पसन्द करने लगा हूँ। इन दिनों अगर सत्यप्रकाश देखता तो कहता कि मैं अब उन होटलों में नहीं जाता। आदमी तो अब बन रहा हूँ।'

'आदमी बन रहे हो ?—तबतो सचमुच मुझे तुमसे डरना चाहिए !—हिन्दू विधवा को हर आदमी से डरना चाहिए न !'

'यानी, अबतक मुझे बच्चा ही समझ रही थीं ?—जानती हो ? मेरी उम्र चालीस के करीब है !'

'उम्र का बोझ ही सब कुछ है क्या ?—मैं क्या सत्तर की बुढ़िया नहीं लगती ?'

'बिलकुल नहीं ! मेरी आँखों से पूछो, सोलह न हो, पर बीस से तो एक दिन अधिक नहीं !'

'इसी उम्र में मुझे सत्य का वरदान मिला था महेश ! बीस की उम्र में ही माँ सरस्वती ने यह वीणा मेरी गोद में रख दी थी।—और आज ? इन अनगढ़ हाथों ने ही उसके तार ढीले कर दिए हैं !'

'तुम कविता क्यों नहीं करतीं ?'

'तुम लोग उसे पहचानते नहीं न। तुम्हारी स्थूलदृष्टि शब्दों के आवरण में लिपटी कविता को ही तो पहचानती है। अस्तित्व तो उसका शब्दों से परे है। माँ के आँसुओं को तुम कविता...'

'रहने दो अपनी इस कविता को आँखों में ही। इतना रो-रोकर तो हर स्त्री कविता बन जाएगी।'

'स्त्री अगर कविता न होती तो पुरुष क्या उससे बँध पाता ?'

'लेकिन तो भी वह पुरुष को ढकेलती क्यों है ?'

'हर क्रिया की एक प्रतिक्रिया होती है न ! और तब भी कई स्त्रियाँ इसका अपवाद भी हैं !'

'और तुम हो इस अपवाद का भी अपवाद ! आदमी से डरती हो, पर तुम्हारे सामने आदमी है ही कौन ?'

'मैं स्वयं सत्तर की जो हूँ, सभी तब क्या सत्यप्रकाश नहीं हैं मेरे सामने? अपने मन का चोर मैंने तुम्हें पकड़ा दिया है, इसलिए यह न सोच बैठना कि मैं भी पकड़ ली जा सकती हूँ। चोर को पकड़ा देकर तो मैं और भी निर्भय-निश्चित हो उठी हूँ! कभी मत सोचना कि मैं कोई शह दे रही हूँ तुम्हें!'

शेष घूँट में चाय समाप्त कर प्याले को आगे सरकाते हुए महेश्वर बोला, 'तुमतो सदा गलत समझ लेती हो। शायद तुम्हें अब भी विश्वास नहीं है कि तुम्हारे निकट होने पर किसी को अभद्र विचार स्पर्श भी नहीं कर पाता। और वैचारिक-स्तर पर बातचीत में तो आपत्ति हो ही क्यों?'

माँजने के लिए इकट्ठा करके बर्तनों को मोरी पर रखते हुए तमसा ने कहा, 'सतर्क होने का अवसर तो मिल जाता है महेश, लेकिन कामनाएँ भी तो सिर उठाने लग सकती हैं!'

'तब तो पुरुष की तपस्या को फल मिल जाता है—क्या भाभी कहकर पुकारा करूँ?'

'तुम अबाध्य हो महेश! तमसा कहकर ही पुकारा करो न, यदि बहन कह-कर नहीं पुकार पाते! छोड़ो इन बातों को! अंधी गलियों में भटकने की अपेक्षा चौराहे पर बैठ जाना क्या बुरा है?'

'पर मनुष्य की कामना तो पहाड़ फोड़कर राह बना लेती है!' सतृष्ण-दृष्टि से महेश ने कहा।

'मैंने तो अत्यन्त बचपन से ही कामनाओं को कुचलते रहने का काम किया है।—परम संतोषी और सौम्य स्वभाव के आचारनिष्ठ पिता; कथा-वाचन और पुरोहिताई से क्या कभी घर के अभाव मिट सकते हैं? माँ चिड़चिड़ी न होती तो ही आश्चर्य होता! बड़ी बहन उज्वला मां को गई थी, और पिता का पक्ष लेकर मैं माँ के लिए दूरतर हो गई।—शायद नजर न लग जाए इसलिए भी, माँ कहती थी काली, पर पिता ने उज्वला के साथ मेल बिठाकर कर दिया उसे तमसा! मैंने पिता की प्रीति पाई तो वे अपना वैभव मुझे देने लगे, चाहे मैं उस समय उसकी पात्र न रही होऊँ। उनकी कथाओं और पुरोहिताई में मैं भी रस लेने लगी। कितने आनन्द-पुलक में वे माँ से कहा करते कि इस छोटे यजमान ने जितना सुख मुझे दिया है, बड़े वह से बड़ा असामी मुझे नहीं दे सकता!'

'तुम्हारे पिताजी सचमुच श्रद्धेय हैं!'

'श्रद्धा उन पर माँ भी करती थी, पर उससे तो अभाव मिट नहीं जाते न! गृहस्थी का भार तो माँ पर आ पड़ा था। भूख लगने पर हम ही क्यों, पिताजी भी

तो उसी के सामने थाली फैलाते थे ! रूखे स्वभाव के लिए माँ को ही कैसे दोष दिया जा सकता है ?'

वर्तनों पर राख मली जा चुकी थी, केवल धोना शेष था और सारा कार्य अभ्यस्त हाथ आपही करते चले जा रहे थे, किन्तु धोने के लिए बालटी में हाथ डाला तो पानी नहीं था। मुस्करा कर महेश्वर की ओर देखकर वह बोली, 'कुछ कष्ट करोगे ?—बातों में ध्यान नहीं रहा ! उठकर मटके से पानी देना होगा ! मेरे हाथ तो राख से भरे हैं !'

'यह क्या कष्ट है ?' कह कर महेश्वर उठा और लोटे से पानी उड़ेलते हुए बोला, 'तुम्हारे पिता देवता थे, और देवताओं के लिए यह दुनिया सचमुच बड़ी निष्ठुर हैं !'

'बच्चों की जठराग्नि ने अगर झुलस न दिया होता तो माँ का हृदय भी उतना ही कोमल और दिव्य होता ! वेचारी कितनी मेहनत करती थी ?—घर-घर का कूटना-पीसना, खेतों में गोड़ाई-निराई और फिर अपनी खुद की गृहस्थी का सारा काम !'

अपनी जगह पर बैठकर महेश्वर ने पूछा, 'तुम दोनों बहनें हाथ नहीं बटाती थीं क्या ?'

'उज्वला तो माँ के मुँह लगी हुई थी न ! वह काम करती ही क्यों ? माँ का संरक्षण जो था ! रही मैं ! और पिताजी मेरा पक्ष लेते थे इसलिए माँ की दृष्टि में बिगड़ती जा रही थी। बल्कि पिताजी के पास बैठकर पढ़ने-लिखने में जितना समय बरबाद करती थी उसकी क्षतिपूर्ति भी करनी पड़ती थी !'

'यानी मेहनत तुम भी माँ से कम नहीं करती थीं !'

'सो ही तो कह रही हूँ कि बचपन से ही कामनाओं को कुचलते रहने का अभ्यास किया है मैंने !—और एक दिन सामान्य-सी न समझी गई बीमारी में अकस्मात् ही पिताजी चल बसे तो माँ के ऊपर दो-दो कन्याओं का बोझ और पिताजी का अच्छा खासा ऋण भी था। उज्वला का बोझ तो उसी वर्ष एक खाते-पीते दूध के व्यवसायी दूजवर के साथ विवाह करके उतार दिया गया। इससे कन्या का ही नहीं, ऋण का बोझ भी कम हो गया, बल्कि जीजी और जीजाजी मेरी समस्या में भी माँ की सहायता करना चाहते थे। मेरा वाग्दान भी कर दिया उन्होंने बिना माँ की सलाह लिए !'

'अच्छा ! कौन और कैसा था वह सौभाग्य का धनी, सत्यप्रकाश के पिता ही न !'

गले में आ फँसी वाष्प को उठजाने का अवसर देकर तमसा बोली, 'नहीं, वे तो प्राप्त हुए थे नाटकीय तौर पर ! यह व्यक्ति सम्पन्न तो था, उम्र भी कोई खास न थी—मैं पन्द्रह में पैर बढ़ा रही थी तो वे पैंतीस से हटा रहे होंगे !—मैंने देखा नहीं, लेकिन सुनती थी, पढ़ाई-लिखाई शहूर-सलीके से एकदम शून्य, दूध-व्यवसायियों की दिनचर्या तो जानते हो न ?—सबेरे दो बजे से उठकर बाहर के गाँवों से साइकिल पर दूध लाकर सूर्योदय से पहले घर-घर बाँट-वेच आना और फिर दुपहर दो बजे से रात आठ बजे तक वही कार्यक्रम ! पैसा काफी कमा लेते हैं, पर उसके सिवा उनके जीवन में और कुछ भी नहीं रहता। घर की स्त्रियाँ भी सबेरे-शाम दूसरों के घर पानी भर-भर कर पैसा जोड़ने के काम लाई जाती हैं !—रूखा खाते हैं, मोटा पहनते हैं !' बर्तनों को एक ओर सजाकर हाथ धोते हुए उसने कहा, 'माँ ने भी नहीं देखा था पर सुना उसने भी था कि—अब किसी की निन्दा-स्तुति से लाभ ही क्या है ! बल्कि सौभाग्यशाली ही है वह। अभी भी भला-चंगा जीवित है अपनी भरीपूरी गृहस्थी में मग्न ! सूरत-शक्ल कोई चाटता तो है नहीं। रंग भी दो ही होते हैं, काला या गोरा। चेहरा भी कोई किसी का सपाट नहीं होता, आँख-नाक-कान मुँह इतने गढ़े हों तो चेचक के कुछ और छोटे गढ़े हो जाने से क्या अन्तर हो जाता है ?—वल्कि रूपवती भार्या शत्रु की तरह रूपवान पति भी तो शत्रु हो सकता है।'

साँस रोक कर महेश्वर ने पूछा—'अच्छा ! पीछा कैसे छूटा उससे ?'

'जीजी-जीजाजी ने तो विवाह की तिथि भी तय करदी थी। पर माँ को भी पसन्द नहीं थे वर महाशय ! भीतर ही भीतर पता लगाकर उसने मालूम किय कि कहीं किसी कस्बे में एक सजातीय लड़का अध्यापकी करता है। पढ़ा-लिखा, खाता-पीता, उम्र से तब यही बाइस-तेइस वर्ष, कमी केवल यह कि जायदाद के नाम कस्बे में केवल एक कच्चा झोंपड़ा और घरमें माँ के सिवा कोई नहीं। चुपके से माँ गई उस गाँव मंगलियावास और बात कर आई लड़के तथा लड़के की माँ से। सुशील, पढ़ा-लिखा और देखने-सुनने में भी भला, लड़का माँ को पसन्द आ गया था। जीजाज कि निश्चित तिथि के अनुसार ब्याह की तैयारियाँ होती रहीं। गाना-बजाना, हँसी-ठिठोली, हल्दी-कुंकुम, सब रिवाज के अनुसार चलते रहे, केवल निश्चित तिथि के एकदिन पहले आधीरात को मंगलियावास से वर अकेला ही आया, जिन्होंने देखा, उन्होंने समझा कि विवाह में शामिल होने कोई मेहमान आया है। पिताजी का एक पुरोहित साथी था, चुपके से उसे बुला भेजा गया और उसी तरह बन्द दरवाजे में लग्न सम्पन्न करा के रात ही रात बेनी-जमाई को बिदा कर दिया गया। सी

देखते हो न, मेरी कामनाएँ मेरे आगे कहीं सिर उठाने का अवसर भी नहीं पा सकी हैं !'

'और तुम्हारे जीजी-जीजाजी ?' साँस रोके हुए महेश्वर ने पूछा।

'तबसे उन्होंने हम लोगों से बोलचाल भी बन्द कर रखी है !'

'एक बात पूछूँ ?—पूछना नहीं चाहिए, किन्तु तुम इतनी निकट लगने लगी हो, कि पूछे बिना रहा नहीं जाता ! यह निकटता तुम चाहे महसूस न करती होओ !'

तमसा ने आँखे उठाकर महेश्वर की ओर अभिभूत होकर देखा, उसकी दृष्टि अपने में ही लीन थी। तमसाका स्वर काँप उठा, बोली—'स्त्री का हृत्तंत्र बड़ा प्रबल होता है सो यूँही नहीं महेश ! है ही क्या मेरे पास कि कोई अपना बने और मैं स्वीकार न करूँ ?—लेकिन स्त्री के भाग्य में यह सुख भी कहाँ है ?—उसकी नियति तो...खैर, तुम पूछो। यथासाध्य उत्तर देने का प्रयत्न करूँगी !'

'तुम्हारा विवाहित जीवन सुखी था ?' उसके स्वर में भी अब वह उत्तेजना नहीं रही थी !

'सरल अवश्य नहीं था, रहा प्रश्न सुख का। यदि तृप्ति न हो तो सुखका अर्थ ही क्या हुआ !—तुम नहीं जानते शायद कि वे पागल हो गए थे ! मेरा विवाहित जीवन उनकी वैसी अवस्था में ही बीता ?

'सत्य ने कुछ ऐसा आभास दिया था शायद !–लेकिन विवाह के समय तो स्वस्थ थे वे ?'

'एकदम स्वस्थ थे, जैसा कि एक सामान्य व्यक्ति होता है। किन्तु विवाह के कुछ ही समय बाद उनकी माँ का देहान्त हो गया ! और भावुक होने के साथ कुछ शंकालु स्वभाव के भी थे। यदि कोई ध्वस्त विचारों से मनको दाल दे तो शंकालु हो उठना स्वाभाविक ही है !'

'तुमने एक बात कही थी, रूपवती भार्या शत्रु ! इस कथनको तुम्हारे मन पर किसने उतारा भई, तुम्हारे पिता ने या ...'

'इसे मन पर कौन उतारेगा ?—यह तो नीतिशास्त्र का पहला श्लोक है !' वह किंचित मुस्कराई भी।

महेश्वर गंभीर ही बना रहा, बोला, 'किन्तु इस उक्ति के साथ तुम्हारे मन में पिता की शक्ल उभरती है या अपने पति की ?'

'भार्या शब्द के साथ तो...'

'पति ही की शक्ल उभरती है।' महेश्वर ने वाक्य पूरा किया। तमसा ने मानो ध्यान नहीं दिया बर्तनों को समेट लेने के बाद वह अन्त कार्य निपटाने लगी।

महेश्वर भी विचारों में खोया रहा। उसकी तन्द्रा तब टूटी, जब तमसा ने ही पूछा, 'क्या सोच रहे हो ?'

'तुम्हारे जीवन की दुःखभरी गाथा ! एक कुरूप गँवार व्यक्ति हटाकर दूसरे सुरूप, शिक्षित और समर्थ व्यक्ति को विवाह के आसन पर बैठाकर भी तुम सुखी नहीं हो सकी ! स्पष्ट है।'

'कौन कहता है ?—विवाहित जीवन के वे चार-पाँच वर्ष ही तो मेरे समस्त जीवन की सार्थकता के वर्ष हैं !'

'सार्थकता तो दुःख में से भी प्राप्त हो सकती है, बशर्ते कि सुखको जीवनकी सार्थकता न समझा जाए !'

'पर मुझे दुःख था, यह भी कोई कैसे कह सकता है ?'

'क्रोध न करो तो कहूँ !'

'नहीं करूँगी !'

'मुझे पता नहीं सत्यप्रकाश के पिता पागल क्यों हो गये थे, किंतु लगता है उनका तुमपर अनन्य विश्वास नहीं था ! तुम खुद ही कह चुकी हो कि वे शंकालु स्वभाव के थे। इसके अलावा रूपवती भार्या शत्रु, यह उनके मनके स्वर थे, चाहे कहा कभी उन्होंने न हो। कम-से-कम तुम्हारे मन में यह बहम जरूर रहा कि तुम्हें लेकर वे मन ही मन ऐसा सोचते हैं !'

'पर यह तो तुम उनकी बात कह रहे हो !

'अपनी बात भी तो तुमने कह दी है ! आसन से हटाए हुए उस व्यक्ति के प्रसंग में नहीं कहा तुमने कि सौभाग्यशाली वह, अपनी भरीपूरी गृहस्थी के साथ भला-चंगा हैं !—अपने जीजी-जीजाजी का तुम्हें कोई खबर नहीं, पर उस कुरूप व्यक्ति की तुम्हें खबर है ! अपनी तुलना के प्रयत्न में उसे याद करते रहने में ही तुम्हारी भावना व्यक्त हो जाती है बल्कि किसी मनोविद से पूछो तो कहेगा कि अन्तर्मन में कहीं तुम सोचती हो कि अगर इस गृहस्थि की अपेक्षा कहीं वह गृहस्थि होती···'

'महेश।'

'गुस्सा नहीं हो सकोगी, वादा किया है तुमने। और···अच्छा, आगे नहीं कहूँगा।'

चूल्हे की चौकी पर बैठकर तमसा बोली, 'जब इतना कह चुके हो तो मनमें क्यों रखते हो ? अगर तुम्हारे मन में कोई गलतफहमी हो तो मालूम तो हो।'

'दूर नहीं करोगी उसे ?' हँसकर महेश्वर बोला, 'अच्छा। सच कहो, तुम्हें अपने पागल पति से प्रेम था ? —याद रखो, जिससे प्यार होता है, उससे भय नहीं

होता, कभी हो नहीं सकता।' तमसा उत्तर में मौन रही तो महेश्वर ने ही कहा, 'सुख समझ कर स्वीकार किया हो, पर मिला तो तुम्हें दुःख ही है न ?'

'दुःख तो मुझे सत्य से भी कम नहीं मिला है। और यह जो कुछ तुम कुरेद-कुरेद किए जा रहे हो, वही क्या दुःख पहुँचाना नहीं है ?'

'पर सत्य तो तुम्हारा पुत्र है, तुम्हारे ही रक्त और मांस का अंश।'

'उसके पिता मेरे मन का अंश नहीं थे क्या ?'

'मन तो संस्कारों से बनता-बिगड़ता रहता है न ! रही तरुणाई और सुन्दरता, वह तो पति की राह नहीं देखती।'

'मातृत्व की राह तो देखती हैं न। यह क्यों भूल जाते हो कि पत्नी बनकर ही माँ बन सकी हूँ ? स्त्री के जीवन की सफलता माँ बनने के अलावा और क्या है ?'

महेश्वर किंचित हँसकर बोला, 'इस मैथुनी सृष्टि में मादाओं की यह नियति तो सभी प्रजातियों में है। किन्तु सभ्य मानव वैज्ञानिक-उन्नति से बोतलों में बच्चे निर्माण करके इस नियतिको चुनौती दे सकेगा।'

बोतलों से जो बच्चे पैदा होंगे वे यांत्रिक मनुष्य हो सकते हैं महेश, मानव-शिशु नहीं। नौ माह तक उदर में अपना रक्त देकर मां शिशु का निर्माण करती है। —अभिमन्यु...'

—किन्तु एकाएक दोनों चौंक पड़े। बाहर बन्द दरवाजे पर कुछ आहट हुई, मानों किसी ने साँकल को टटोला। तमसा ने कहा, 'कौन ?'

उत्तर नहीं मिला, किन्तु विशेष प्रकार की आहट हुई। महेश्वर ने हाथ पर बँधी घड़ी देखकर कहा, 'देर जरूर हो गई ; बातों में खयाल ही नहीं रहा, लेकिन सत्यप्रकाश हो तो उसे बोलना चाहिए।—मुझे भी चलना चाहिए अब...' और वह उठ खड़ा हुआ। लेकिन तमसा के चेहरे पर जैसे किसीने राख मल दी थी। महेश्वर ने आवाज दी, 'सत्यप्रकाश।'

उत्तर न पाकर आगे बढ़कर महेश्वर ने किवाड़ खोलना चाहा, पर दरवाजा बाहरसे बन्द था !

महेश्वर चिल्लाया, 'यह क्या बदतमीजी है ?' लेकिन बाहर कोई आहट नहीं हुई। महेश्वर ने तमसाकी ओर देखा, और उसे देखकर डर कर बोला, 'क्या हुआ तुम्हें ?'

'मेरी मौत...' और एक दीर्घ निश्वास के सिवा आगे वह कुछ न कह सकी !

किवाड़ पर मुक्के बरसाते हुए महेश्वर बोला, 'कौन है बाहर ?—दरवाजा क्यों नहीं खोलते ?'

तमसाने किसी तरह शक्ति बटोर कर कहा, 'बाहर उन्होंने शायद ताला लगा दिया है महेश !—शायद कई दिनों से वे इसी अवसर की ताक में थे !'

'वे कौन ?'

'पड़ोसी-पड़ोसिने !—आज उन्हें अवसर मिल गया !'

'किस बात का अवसर ?'

'हमें बदनाम करने का !—मैं तो कहीं मुँह दिखाने योग्य भी नहीं रही महेश !' और वह भी उठ खड़ी हुई, 'यह अच्छा है कि तुम मौजूद हो ! मैं गले में रस्सी डाल कर 'और वह रस्सी के लिए आगे बढ़ी। लेकिन तभी महेश्वर ने आगे वढ़कर उसके कंधे पकड़ लिए और कहा,'

'क्या पागलपन कर रही हो ?—तुम मरोगी क्यों ?'—जैसे साँप ने डस लिया हो, इस तरह झपट कर तमसा ने महेश्वर का हाथ झटक दिया और कहा, 'छि:छि:, यह क्या करते हो ?'

'कहताहूं, अगर यह पागलपन करना चाहोगी तो मैं किसीकी पर्वाह नहीं करूँगा और सारी दुनियाँ के सामने तुम्हें हाथों में उठाकर यहाँसे निकलूंगा। तुम्हारी जगह अगर मेरी सगी बहन होती, तो क्या इस तरह हाथ पर हाथ धरे मन मसोस लेता ?'

'और यह जो ताला लगा हुआ है ?' व्यंग और आश्वासन दोनों उसके स्वर में आ मौजूद हुए।

'अगर उन्होंने नहीं खोला, तो दरवाजा तोड़ डालना होगा !'

'तमाशा तो खूब होगा महेश, पर मेरे लिए अब ठौर कहाँ है ?—सचमुच जबतक तुम पास हो, मरने में मुझे कुछ भी बाधा नहीं होगी। जीवनका इतना-सा सुख तो ले लेने दो !'

'तमसा...'

बीचही में रोक कर तमसा ने कहा, 'जिसे कहने से पाप लगता है उसे जीभ पर नहीं आने दिया जाएगा !—पर तुम मेरा कष्ट क्यों नहीं समझते ? देख तो रहे हो ! बाहर लोग इकट्ठा हैं। सत्य न आजाए तबतक वे दरवाजा नहीं खोलेंगे। बताओ मैं क्या मुँह लेकर जीवित रहूँगी ?'

'पर तुमने किया ही क्या है ?'

'तुम्हारे साथ बन्द किवाड़ों के भीतर जो मैं देखली गई हूँ ! इनकी कल्पना क्या किसी साहित्यकारकी कल्पना से कम उपजाऊ है ? मुझे मर जाने दो महेश, जीवन से मुझे रत्तीभर मोह नहीं है !'

'तो एक काम करें ! चलो, मिट्टी का तेल छिड़क कर दोनों एक साथ क्यों

न चिता-प्रवेश कर जाएँ ? तुम्हारी आवश्यकता का क्षण, क्यों न मेरा भी यह सुयोग हो ? जीवन का मोह मुझे भी नहीं है !'

'तुम्हारा सुयोग ?'

'वरण-त्यौहार न सही, मरण-त्यौहार तो पाजाऊँगा !' और उसने आगे बढ़कर जब तमसा का हाथ थाम लिया तो मानों तमसा होश खो चुकी थी।

बाहर की कानाफूसी का स्वर रह-रह कर भीतर पहुँच जाता था। तमसा ने कहा, 'पर तुमपर तो एक भार भी है। तुम पर उसे छोड़कर ही तो मैं निश्चित मर सकती हूँ !'

'सत्यका भार न ?--पर तुम्हारे बिना वह क्या मैं उठा सकता हूँ !—तो ठीक है, हम दोनों ही जिएँगे, अपने लिए नहीं, सत्य के लिए !—तुम देखो, मैं अभी किवाड़ खुलवाता हूँ !'

तमसाका हाथ छोड़ कर महेश्वर दरवाजे पर गया और मुक्के मारता हुआ बोला, 'मैं कहताहूँ, दरवाजा खोल दो ! बाद में अगर कुछ हुआ तो मैं जिम्मेदार नहीं हूँगा !' बाहरसे हँसीके बीच गुलाबदासका स्वर सुनाई दिया, 'होगा उसकी जिम्मेदारी आपकी होगी ही कहाँ जनाब ?—भुगतना तो औरतको पड़ता है न ! बहुत हुआ तो परेशानी कुछ सत्तू बाबू को उठाना पड़ जाए··'

'अच्छा। देखता हूँ कितना दूध पिया है माँ का बदतमीज ने !'—और जरा-सा जोर लगाकर ही महेश्वर ने लकड़ी के किवाड़ को उसकी चूल से अलगकर लिया तो वह दूसरे किवाड़ पर लटक गया। पलक झाँपते महेश्वर बाहर निकल आया। सामने ही गुलाबदास सख्ते की हालत में खड़ा था। महेश्वर ने आव देखा न ताव और हाथ पकड़कर बगल में एक घूंसा जमाते हुए बोला, 'बोल कमीने, कहेगा फिर कभी किसी शरीफ औरत के हक में ऐसी टुच्ची बात ?' और एक और घूंसा दूसरी बाजू में जमा दिया उसने।

दो-चार औरतें देखते देखते ही सहम कर बगल की खोली में घुस गईं। गुलाबदास चिल्लाया, 'अरे दौड़ो यह गुंडा मुझे मार रहा है !' पर महेश्वर ने उसका मुँह दबा दिया तो 'गों गों की आवाज ही निकल पाई। कमरे में छिपी उसकी रखैल नायन दहाड़ी, 'हाय राम, इस मरदुए का हियाव तो देखो, चोरी होर सीनाजोरी ! एकतो सांड बनकर राँडों में मुँह मारे, होर मुस्टंडा ऊपर से धौंस जमाए ! कोई बचाओ, दौड़ो····' पर तबतक गुलाबदास की अच्छी पूजा हो चुकी थी। शोर सुनकर ऊपर से रामचरण और रामसहाय के अलावा और भी कुछ मनचले आदमी आगए। गुलाबदास को महेश्वर के चंगुल से छुड़ा लिया गया।

क्रोध के मारे महेश्वरकी त्यौरियाँ चढ़ी हुई थीं। चश्मा एक ओर गिरा पड़ा था। रातके अंधेरे के बावजूद उसकी आँखों में तैरते खूनको देखा जा सकता था !

ऊँचे हाथ उठाकर नायन चिल्लाई, 'ओ सतवन्ती चरतारीबाई ! भार निकर कै देखतो सई ! यो खसम भीतर करम फोड़कर अब भार क्या करम फोड़ रिया है ?'

दूसरी किसी औरत ने कहा, 'हाय राम, काँई कलजुग आगियो। राँडां खसम को खसम करले, होर कोई भलो लोक आँगली उठाय तो वींने मरवाई दे !— च्-च्-च्-च्...'

'ये रंडीवाड़ा हियां क्यूं मचा रख्याहे पर ?—दरद होय तो अपने डेरे ले जाय न ! मना कुण करे ?' किसी दूसरे व्यक्ति ने कहा। महेश्वर गुर्राया, 'सामने आए न ! भीतर क्यों छिपा बैठा है ?

'बड़ा तीसमारखां है। ले आ, हो जाए दो-दो हाथ ! मुनमिया गुलाबदास समझ रख्या है ?' कहकर वह व्यक्ति आगे बढ़ना चाहता था पर रामचरण ने उसे रोक लिया और कहा, 'जाने दे भाई, पतले गोब्र में ढेला डालने से अपना ही बदन खराब हुवे हैं !'

और रामसहाय ने महेश्वर का हाथ पकड़कर आगे खींचते हुए कहा, 'जाने दीजिए मास्टरजी, इन ओछे लोगों के मुँह लगने से क्या लाभ ?—शोर-शराबा सुनकर अगर पुलिस आ टपकी तो सोचिए, उस बेचारी औरत की क्या गत हो जाएगी ?' महेश्वर ने यह भी देख लिया कि झूलते हुए किवाड़ों के बीच एक स्त्री लँगड़ाती-लँगड़ाती तमसाकी की कोठरी में घुसी है। सावित्री के बारे में वह तमसा से सुन चुका था। किसी गैर के सामने आत्महत्या जैसी कोई क्रिया निष्पन्न नहीं की जा सकती। वह कुछ प्रकृतिस्थ हो रहा था तभी दूर से उसे सुनाई दिया, 'लो, कमाऊ पूत सत्परकाश बाबू आगिए। सम्हल के उस्ताद !'

सत्यप्रकाश के पैर लड़खड़ा रहे थे। कि हाथ की अँगुलियों में सिगरेट उलझा हुआ था। भीड़ देखकर वह खड़ा हो गया और बाला, 'कौन रन्‌रन छोड़, क्-क्या बात है यार ?'

'तमाशा होरिया है तेरे घर पे प्यारे ! छक कर आरिया है न ?—पे' ले से ही जान रख्या था ?'

'माँ से क्-कहना मत यार !—इधर क्या ब्-बन्दर-खेला हो रहा है ?–किधर है रे ब्-बन्दर ?' आगे बढ़ा वह ! सबने समझ लिया कि वह नशे में है। महेश्वर ने आगे बढ़कर कहा, 'सत्यप्रकाश !'

'अँ·· आप ·· कौन स्-स्-र, आप ?—बन्दर कहाँ है सर···माँ ने पाला

पाला है क्या ? ओरे रनछोड़, किधर है यार ब्-बन्दर ?—नजर ही नहीं आता !' महेश्वर ने सत्यप्रकाश का हाथ पकड़ लिया तो रणछोड़ बोला, 'सत्परकाश, हुशियार रहना भई, कदी नोंच ले !'

'अरे यार, ये तो सर हैं मेरे !' तू नई जानता ?—म्-मुझे पढ़ाते थे न !'

'अरे भाई, आजकल बन्दरकी सकल कुछ बदलने लगगई है !' एक दूसरे व्यक्ति ने कहा, 'रातका बखत भी तो है। अँधेरे में कुछ कम दिखाई देता है न ! आँखें मलकर देख, पहचान लेगा !'

अधिक तमाशा न होने देने के लिए महेश्वर ने सत्यप्रकाश को भीतर ले जाना चाहा तो सत्य ने कहा, 'पकड़ते क्यूँ हो सर ?—मैं नशे में नईं हूँ।—अरे, इस किवाड़ को क्या हुआ यार ?—नशे में लड़खड़ा रहा है न ?—अरे, ताला लगा है बाहर तो !—कित्ती सफाई से निकाला है किवाड़ को ? कुर्बान जाऊँ ! अरे मुनीम काका हैं क्या ?—क्या नायन काकी आज भी नईं है घर में ?'

'देख, तेरे बाप ने क्या हालत करी है मेरी ?' गुलाबदास ने रुआसे स्वर में कहा !

'मेरे बाप ?—काका शराब पी है क्या ? —मेरा बाप !–हऽ हऽ हऽ हऽ'

'माँ का खसम, ये जो तेरा हाथ पकड़े है न !–बेचारा बाप सुरग में बैठा माथा पीटता होयगा !'

महेश्वर ने घुड़क कर कर कहा, अभी कसर बाकी है क्या ?

'तुजसे कौन बोले ?–मैं तो अपने पड़ोसी सत्परकाश से बात कर रिया हूँ ! कित्ता धरमातमा था बिचारे का बाप, और पतनी की तो पूजा करता था नित्त ! पर वाह रे औरत-जात ! वड़े लोक यूँई नईं कहे हैं तिरिया चरित्तर पुरुसास्स भाग्गम्.........'

'ये मुनीम काका क्या कहते हैं सर ?'

'तुम भीतर चलो। मैं सब समझाता हूँ !'

ग्यारसीदास ने फबती कसी, 'समझाने वाले मास्टरजी एक ही हैं भई ! बेटेको ई नहीं, बेटेकी माँ को भी पढ़ा दिया है। चलो उद्धार हुआ बिधवाका !—बोलो, सियावर रामचन्द्र की जय !

'हम नईं जाएँगे सर !' सत्य ने कहा, 'आप यहाँ क्यूँ आए ? ये तो आपका धर नईं है !'

'अरे घर क्या, घरवाली भी इनोंकी ई है सत्तू !'

दरवाजे में से सिर निकाल सावित्री ने कहा, 'हुइ गयो सो तो हुइ गयो भई ! अपना-अपना घर जाओ ! हिंया कईं नंगाओन को नाच हुइ रियो है ?'

'फरक बस इत्तोई हे कि नंगाओन कपड़ा पहर-पहर कर नाच रिया हे !' कोई औरत बोली !

'मौसी, क्या बात है ? मेरी समझ में नई आता ! माँ कहाँ है ?' सत्यप्रकाश ने सावित्री से पूछा !

'पैर भारी हुई गयो सो भीतर बैठी है !' नायन बमकी।

अँधेरे में कस्तूरी की माँ बोली, नायन के आगे पेट कबतक छिपे ?' सभी लोग मुस्कराने लगे।

खून का घूट पीकर महेश्वर ने सत्यप्रकाश को भीतर खींचले जाने की चेष्टा की तो हाथ छुड़ा कर उसने कहा, 'मैं नई जाऊँगा भीतर !-म्-माँ कहाँ है ?—बाहर आ माँ !—आज फैसला हो जाए !'

'तू भीतर आजा रे सत्परकाश ! माँ बुला रई है !' सावित्री ने कहा !

'नई भीतर नई ! उसे बाहर भेजदो मौसी। फैसला होगा तो पाँचों के सामने !' और वह वहीं नीचे फर्श पर बैठ गया।

हाथ पकड़कर महेश्वर ने कहा, 'क्या बक रहे हो ?-कुछ होश है तुम्हे ?'

'होश, खूब है सर !-तुमको नई है जो दूसरों के घर मुँह मारते फिरते हो ! आज तुमारी उस टरेसा को देखा था।-आज माँको भी देखता हूँ !-आ न मां। शरमाती क्यूँ है अब ? मैं तो बच्चा हूँ !'

भीतर कुछ धमाके की आवाज हुई तो मुड़कर सावित्री ने कहा, 'हाय राम, काँईं हुयो ?' और वह शीघ्र ही भीतर अदृश्य होगई। महेश्वर भी भीतर लपकनेको उद्यत हुआ तो सत्यप्रकाश ने कस कर उसके पैर पकड़ लिए और कहा, 'नई सर अब नई जाने दूंगा। मां मर गई तो मर जाने दो।—छुट्टी हुई।—तुम्हें नई जाने दूंगा ! ये घर मेरा है। शरम हो तो चले जाओ यहाँ से। अरे रणछोड़ भैया, जरा पुलिस को तो बुलादे यार !'

क्रोध में भरकर महेश्वर ने सत्यप्रकाश को एक चपत जड़दी और कहा, 'मूर्ख, नशे में नहीं जानता कि क्या कर रहा है ?—जानता है किसमें तेरा भला है और किसमें बुरा ?'

सत्यप्रकाश उठ खड़ा हुआ, 'ये नशा तो तुमने पिलाया है सर !--मार दिया, पर भीतर नई जाने दूंगा ! अरे पड़ोसियो, मुझे बचाओ, दौड़ो ! यह गुंडा मुझे मेरे घरपर ई मार रहा है !'

दोनों में हाथापाई हुई तो गुलाबदास, ग्यारसीदास रणछोड़ आदि भी बीचमें कूद पड़े। गुलाब दास ने पीछे से एक घूंसा जमा दिया। जोश और भीड़ के बीच महेश्वर अकेला पड़ गया ! 'मारो सालेको' 'मारो सालेको' 'आना भूल जाए

फिर इस मुहल्ले में' आदि नारों के साथ महेश्वर से बदला लिया जाने लगा। नीचे गिर पड़ता, पर भीड़ ने हाथों पर उठा लिया और पिटाई करने लगे।

भीतर तब तक सावित्री के उपचार से तमसा को होश आ गया था। भीड़ की नारेबाजी से स्थिति समझने में उसे संशय नहीं रहा। दौड़कर दरवाजे पर आ पहुंची वह और चिल्लाई, 'मैं कहती हूँ, जो कुछ हुआ उसकी जवाबदार मैं हूँ।—मास्टर को छोड़कर अगर अभी आप अपने-अपने घर नहीं लौट जाते तो देखो, यह मैं अपने ऊपर मिट्टी का तेल छिड़ककर आग लगाती हूँ!'—सभी ने हैरत के साथ देखा कि तमसा ने हाथ का कन्दील अपने सिर पर उठा लिया है और भग्न द्वार पर साक्षात् काली विध्वंस के लिए तत्पर खड़ी है। लेकिन बोला सत्यप्रकाश ही; 'वाह माँ, बन्दर नचाने का खूब तमाशा किया है।'

कड़क कर तमशा बोली, 'मैं तेरी माँ नहीं। और यह घर मेरा है, तेरा नहीं! किराया मैं देती हूँ गुलाबदास बोला, 'हयादार औरत हो तो ऐसी हो भई!'

सत्यप्रकाश बोला, 'पर माँ, इस घर से अच्छा तो सरजी का ही घर है। मेरे गरीब पागल बाप की निशानी, इस टूटे-फूटे घर में तू शोभा नइं देगी माँ!' तमशा के हाथ से कन्दील छूट पड़ा और वह गिरी! कन्दील के ऊपर गिरती तो आग पकड़ लेती, पर सावित्री ने उसे सम्हाल लिया। साड़ी ने तो लौ पकड़ ही ली। लोगबाग बुझाने में लग गए।

सत्यप्रकाश की ओर किसीका ध्यान न था। वह बरबराया, 'ठीक है मां!– घर मेरा नइं, तेराई है। – तू किराया देती है। तू ई सम्हाल, म्–मैं चला, म्मेरा क्या है?–कुछ भी नई!—मैं कौन? और वह जिधर से आया था उसी, ओर बढ़ने लगा।

तमसा की साड़ी तो बुझा दी गई। पर लटकते हुए दरवाजे से टकरा कर उसके सिर से खून निकल आया था। खून देखकर धीरे-धीरे लोग वहाँ से खिसकने लगे।

उधर सत्यप्रकाश जब बीसाजी की चाल के मुख्य अँधेरे दरवाजे पर पहुँचा तो बाहर सड़क पर मटरगश्ती करते हुए सिपाही ने पूछा, 'अए, ये गुलगपाड़ा क्या है?,

'बन्दर का नाच हो रहा है भई, बन्दर का नाच!'

'क्या बकता है?—रातको कहीं बन्दर का नाच होता है?—पी रक्खी है क्या?'

'पी तो रक्खी ई है!—पीता नहीं तो जीता कैसे?—तुम नहीं पीते जमादार?'

'अच्छा तो तूने ही यह शोरगुल मचा रक्खा होगा। चल, थाने पर चलना होगा !'

'खाने पर ?—चल भाई, खाने पर ई सही। पी लिया है तो खा भी लूं !—किधर चलूं ?'

'इधर !' और एक धक्का देकर बोला, 'स्साला, हरामी का पिल्ला खाएगा स्साला। चल, थाने पर तो चल!' पुलिस के कर्तव्य की इतिश्री हुई ! सत्यप्रकाश थाने पर पहुँचा दिया गया।

महेश्वर भी अधिक ठहर नहीं सकता था। सावित्री को उसने दस रुपए के साथ कुछ हिदायतें दीं, और तमसाके होश आने के पहले ही वह वहाँ से चल निकला।

●

अति-परवलयक-वक्र

सत्यप्रकाश ने वह रात कहाँ बिताई, तमसा नहीं जान पाई। उस रात वह जीवित ही कहाँ थी कि प्रतिदिन की घटनाओं का उसे बोध होता?—वैसे भी वह दो-चार बार रात-रात भर बाहर रह चुका है। शिकायत उसके विरुद्ध कुछ थी नहीं, रात भर थाने में बिठाए रखकर सबेरे उसे छोड़ दिया गया, पर घर वह हस्बमामूल रात को ही देर से लौटा। हाथ लगाते ही किवाड़ खुल गए। कन्दील की बत्ती अवश्य चमक रही थी, पर प्रकाश उसका कहीं न था। कल घुमाकर उसने बत्ती उसकाई, देखा कि माँ इसी बीच कोने में फैली चटाई पर मुँह फेर कर लेट गई है, मन, शरीर और पुत्र से ही नहीं, अपने अस्तित्व से भी दूर। बिना बोले सत्यप्रकाश ने भी हाथ-मुँह धोए और कटोरदान खोलकर खाने पर डट गया। खाने से निपट कर दूसरे कोने में उसने दरी डाली और बिना कन्दील की बत्ती कम किए वह भी लेट गया। फिर उसे पता नहीं कि माँ ने खाया या वैसी ही लेटी रही और कन्दील आप ही तेल चुक जाने से बुझ गया या किसी ने उसे बुझाया।—और यह अनबोला शुरू हुआ तो चलता ही चला गया। तमसा ने कभी कुछ बोलने की चेष्टा की तो उसने मुँह फिरा लिया। सबेरे ही वह अपनी किताबें लेकर निकल जाता है। उतनी सुबह कॉलेज नहीं लगता। और रात यदि लौटता है तो दस-बारह से पहले नहीं। तमसा रात को ही इतना खाना बनाकर रख देती है कि सबेरे उठकर भी वह कुछ खा ले। कभी खा भी लेता है। यों माँ-बेटे एक-दूसरे से दूर होते चले जा रहे हैं।

उस कदाकार कांड के बाद दूसरे ही दिन तमसा ने अनुभव कर लिया कि उसके लिए बाहर निकलने का सुयोग नहीं रह गया है, और खाना बनाने की नौकरी उसके बस की नहीं रह गई है। आसपास सारे अंचल में वह प्रसंग सहस्र-जिह्व होकर लोगों के कानों में प्रविष्ट हुआ है और असंख्य-रूपों में हवा में फैल चुका है। दो दिन के बाद ही पौ फटने से पहले वह सेठ के यहाँ जाकर अपनी असमर्थता व्यक्त कर आई। सेठानी स्वयं भी बहुत कुछ सुन चुकी थी और सोच ही रही थी

कि किस तरह ब्राह्मणी का जवाब दे, सो तमसा ने स्वयं ही आकर समस्या हल कर दी।

महेश्वर ने साहस अवश्य नहीं खोया था। दूसरे ही दिन वह ठीक समय पर आ पहुँचा पर तमसा ने उसे भीतर ही से फटकार दिया। शिब्बू की माँ सावित्री प्रतीक्षा कर ही रही थी, उसने महेश्वर को अपनी कोठरी में बुला लिया और यह भार अपने ऊपर ले लिया कि जबतक तमसा की मानसिक अवस्था सुधर नहीं जाती, वह तमसा की बराबर खोज-खबर लेती रहेगी और उसे किसी तरह का कष्ट नहीं होने देगी। यदि कोई खास बात हुई तो वह तत्काल महेश्वर को सूचना देगी। महेश्वर ने अपना पता भी उसे दे दिया। कहना न होगा कि इस काम के लिए महेश्वर ने सावित्री के जरिए तमसा की आर्थिक-आवश्यकताओं की भी व्यवस्था कर दी। लोभ यही कम न था, किन्तु सावित्री की आशा और भी बढ़ी-चढ़ी थी। महेश्वर जैसा रोबीला नौजवान ग्राहक पट जाए तो कितना अच्छा हो? सीधी आर्थिक सहायता तमसा स्वीकार नहीं करेगी इसलिए महेश्वर सिलाई के लिए अधिकाधिक कपड़ों की व्यवस्था करने लगा और उसको सहज ही तमसा की पूरी-पूरी खोज-खबर मिलने लगी।

तमसा की वितृष्णा दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी। प्रकट में इस दुनिया से उसका कोई नाता-रिश्ता नहीं रह गया था। इस घर में अब उसका प्रयोजन ही क्या रह गया था?—आदत के अनुसार नित्य उठकर घर साफ करती है, पर किसके लिए?—खाना बनाएगी, पर खाने वाला कहाँ उसकी चिन्ता करता है या राह देखता है?—कपड़े सीती है, कि कुछ पैसा कमा सके, पर क्यों?—जिस सत्यप्रकाश को मनुष्य बनाने का उस पर भार था, वह हाथ से निकल गया है। मनुष्य इतना बड़ा तो हो ही गया है, बने या बिगड़े, स्पष्ट ही उसे तमसा की अपेक्षा नहीं है। पता नहीं, कॉलेज भी जाता है या नहीं, घर से अवश्य सबेरे ही पुस्तकें लेकर निकल जाता है, चाहे कॉलेज दस बजे से पहले शुरू ही न हो। पूछे भी तो कैसे? अपने ही घर में बेगानी जो हो चली है वह। पता नहीं, अखबार बेचता है या नहीं। लेकिन तब शाम कहाँ बिताता है?—मंगरू-मिसरी जैसे साथी इर्द-गिर्द बने ही होंगे। खर्च के लिए पैसे कहाँ से जुटाता है? मुँह से न माँगे क्या इसीलिए उसे कष्ट उठाना होगा?—आखिर जो कुछ तमसा ने पेट काट कर बचा रखा है वह है किसके लिए?—मानो उसकी राह में तमसा रुपए बिखेरने लगी। एक नोट कभी उसके कपड़ों के पास, कभी कटोरदान की आड़ में तो कभी पुस्तकों के पृष्ठों में। अगर कभी कोई नोट तमसा को गायब मिलता तो उसके मन को शांति मिलती,

उसे अपने अस्तित्व का बोध होने लगता। उस रात मशीन लेकर भी बैठती; चाहे कुछ समय बाद ही उसका मन व्यर्थता के भार से भर जाता।

उधर सत्यप्रकाश का जहाँ क्लारा के साथ नया सम्पर्क पल्लवित-पुष्पित हो रहा था, वहाँ मंगरू-मिसरी का पुराना सम्पर्क भी नए आयाम लेकर विकसित हो गया था। ऐसी ही एक शाम—

'बस इयार, अब खलास ! संझा हो ली, दड़बे में ई नई निकार देनी है।' और अहमद ने हाथ के पत्ते नीचे पटक दिए।

मिसरी ने अहमद की ओर आँख मार कर कहा, 'वाह बेटे, बड़ा उस्ताद है। इस बेर जीत लिया सो अकड़ रिया है। पर गाँठ बाँध ले, उधार नई करूँगा अगर लेना निकर गया तो ! हां !'

'होर कदी देना निकरा तो ?—तू धार मत कर जिगर, पर अपनी इयारी देख, अपन धार कर लेंगे।' और पास पड़े अमरूदों में से एक उठाकर पूरा ही मुँह से कुतरना शुरू कर दिया।

देखकर जमना ने भी अपने पत्ते नीचे बिछा दिए और कहा, 'ले जोड़ ले सत्तू पेंट। अपना तो यार, दियाला पिट गया आज। अलसुमे स्साली विस टम-टम का मुँह दिख गया था न।'

'बड़ा यारबाज बनता है स्साला। माँ को देखा है विसकी ?—धुलाई कर देगी कदी स्साले की।'

'विसके तो रोजई मस्का लगाता हूँ, पर नाक पर मक्खी भी नईं भिनकने देती स्साली। माँ कसम, किसी दिन मौका मिला तो ले उड़ूँगा अंधेरे में। जद कदी सबेरे-सबेरे विसका मुँह दिख जाता है तो सारा दिन तड़पड़ाते ई बीतता है।—कित्ते पेंट बने रे सतवे ?'

सभी ने पत्ते बिछा दिए थे। सत्यप्रकाश ने देखकर अपने पत्ते भी फैला दिए और कहा, 'अपनी तो यह दुर्री 'बची है भई।' और पास रखे कागज-पेंसिल उठाकर पॉइंट जोड़ने लगा।

धौली उस्ताद ने दो रुपये का नोट पटक कर कहा, 'भई, अपना तो जोर करने का बखत हो रिया है, अपन तो चलते हैं। इस छोरियों के खेल का क्या, अखाड़े में कोई हरा दे तो समझूं। और देख रे सतपरकाश, टेंट में कुल जमा-पूँजी अपने पास ये ही लोट है। जास्ती पेंट मत जोड़ देना, नईं तो साले की अखाड़े की मिट्टी में सब सिट्टी भुला दूँगा।'

'मैं तुम्हारे अखाड़े में शागिर्दी करने जाता ही कहाँ हूँ उस्ताद' हँसकर सत्यप्रकाश ने कहा।

'तोई तो साले की जनानी सकल हो रई है। आजाया कर न अखाड़े में। माँ का बहाना भी तो अब नइँ है। जरा जोर करेगा तो हाथ में मछलियाँ तैरने लगेगी दो महीने में ही। अच्छा भई, तुम्हारा हिसाब करते रहो। मैं चल दिया। जय बजरंग बली की।' और धौली उस्ताद उठकर बाहर हो लिए।

धौली उस्ताद के पहलवानी शरीर की सभी कद्र करते हैं। पैसे की धौली उस्ताद को चिन्ता नहीं रहती। उनकी पूँजी है शरीर की ताकत। सम्पत्ति नहीं है उनके पास, इसलिए शक्ति के साथ उसका सामंजस्य बनाए रखने की उनकी इच्छा और चेष्टा स्वाभाविक है।— किसी के पास पैसा है किन्तु शारीरिक कमजोरी या और किसी सामाजिक विवशता से वह अपने दुश्मन को नींचा नहीं दिखा सकता, तो धौली उस्ताद उसकी समस्या हल कर देंगे। दस का नोट और दुश्मन की शिनाख्त मिल जाए बस। अँधेरे-उजेले उसी दिन मौका देखकर दो धौल उसे टिढ्ढाकर कहेंगे, 'समझ लिया न ?—आयन्दा कदी अमुक के साथ और कुछ किया तो खैर नई है। मैंने तुम्हें पहचान लिया है और तुम मुझे पहचान लो। बस। 'यों अधिक बड़ा नोट मिलने पर धौल उलटकर पहले आसामी पर भी पड़ सकता है। उनकी दोस्ती-दुश्मनी व्यक्ति के साथ नहीं, पैसे के साथ है। धौल जमाने की क्रिया में दक्ष होने के कारण ही शायद उनका नाम धौली उस्ताद हो गया है।

सत्यप्रकाश पॉइंट जोड़ने में लगा था। मँगरू ने नीचे पड़े दो रुपये के नोट को उठाकर कहा, 'क्या बात है ?—पैंट जुड़े ?—मुंह क्यूँ लटक गिया ?'

जवाब में कागज सरका कर जेब से पाँच का एक नोट निकाला और कहा, 'तीन आने जमना लौटाएगा मुझे, डेढ़ रुपया मिसरी को और सात आने अहमद को। धौली उस्ताद की तरफ तो एक रुपया सात आना ही निकला, वह मँगरू का।

सत्यप्रकाश के हाथ से पाँच का नोट छीनकर मँगरू बोला, 'धौली उस्ताद के नोट से बाकी बचे—अहमद ने बीच ही में कहा, विस नौ आने की चा'पानी हो जाए सबकी।'

मँगरू ने कहा, चा' पानी नइँ बे। सुनो तुम लोग। ये सत्परकाश खेल-वेल तो जानता नइँ, इसे मानना होगा कच्ची गोटी। और अपन सब तो किसी न किसी तरे कमाई लेते हैं, ये बिचारा कड़की में है। कच्ची कुलड़ी की हार नइँ होती। एक रुपिया सात आना में छोड़ता हूँ। मिसरी और एमदा भी छोड़ें इस्से पानेवाला अपना हिस्सा। जमना से जो पैसा मिले और धौली उस्ताद के बाकी बचे नौ आने में अगर तुम लोग चाहो तो 'चा पानी पियो या झिंगन के हिंया जाकर गला तर करो।'

मिसरी बोला, 'अगर इत्ता दरद है तो हमेरा पावना तू ई दे दे न मँगरू ?— खेल में कच्ची या पक्की क्यूँ ? कदी सत्तू जीत जाता तो ? होर कड़की क्या ? वो ऊँचे मकान वाला स्साला मास्टर वो क्या यूँ ई मेहरबान है ? सतवे को कम मोटा आसामी मत समझना मँगरू।'

'तोई तो मैं कऊँ, झट से निकार के पाँच का पत्ता पेश कर दिया, 'अहमद बोला, 'अपने खुल्ये (जेब) में तो स्साले ऊनरे (चूहे) डंड पेले हैं।'

सत्यप्रकाश ने मँगरू को पीछे ढकेलते हुए कहा, 'देखो भाई, तुम्हें मतलब होना चाहिए अपने-अपने पैसे से। जिसका जितना पावना है मैंने अपने हिस्से का पहले ही रख दिया है। कच्ची-पक्की का मैंने सवाल ही नहीं उठाया। मेरी निजी बातों से तुम्हें कोई मतलब नहीं।

'अरे वा' गुलखेरू, निजी बात क्यू नइँ करेंगे ? दोस्ती करी है कि मजाक ? होर मास्टर की बात ऐसी क्या हुई ? स्साला रोज तेरे घर के चक्कर नइँ लगाता ? मेरे हिंया क्यूँ नइँ लगाता ? मेरे हिंया भी है मेरी बड़ेरी मैन चम्पा। हुसन में नइँ तो क्या, उमर में तो तेरी माँ से छोटी ई है……।

'देख वे……' सत्यप्रकाश उठ खड़ा हुआ और शायद मिसरी के ऊपर हाथ चला ही बैठता पर मँगरू ने उसे रोक लिया और कहा, 'बैठ यार, गुस्सा मत हो। ये मिसरी तो स्साला समझता कुछ नइँ। एकदम बूदम है। पर हिंया कोई गैर नइँ है भई। और देखो, तुम सब स्साले माँ के भड़वे हो। सत्तू तुम सबसे जास्ती पढ़ा लिखा और सरीफ है। आइन्दा से और कुछ कहलो, पर इसकी माँ और उस स्साले मास्टर की कब्भी कोई बात नहीं करेगा। बस्स सत्परकाश ? अब माफ कर दे और गुस्सा थूक दे। अरे यार, हम लोग तो मूरख हैं, बिना सींग-पूँछ के ढोर, एकदम ढोर।'

मिसरी बोला, 'अपनी तो स्साली माँ ई नइँ है, नइँ तो करे कोई विसकी बात जित्ती मन चाहे। माँ नइँ तो स्साली चम्पा मैन तो है, मन खोलकर करो न विसकी बात प्यारे।'

अहमद ने हँसकर कहा, 'होर बड़ी मैन तो माँके बरोबर ई होवे है। विसकी नइँ तो हमेरी माँ तो है यार, विसकोई याद करले कोई। ये अमरूद विसकी मेरबानी काई तो नतीजा है' फिर बेशर्मी की हँसी हँसकर बोला, 'यूँ मत समजना कि विसने खुसी-खुसी दिए हैं। देना तो खुसी-खुसी विसने जिनगी में सीखाई नइँ। अपन तो बस्स, वो गई बगीचे में सूड़े (सुए) ताड़ने होर भर लिया पीछे से अपन ने खोला। लो खाओ न इयार, तुम लोग भी।' और उसने अमरूद आगे सरका दिए।

भूरी कुँजड़ी का लड़का अहमद इस चौकड़ी में इसलिए खप जाता था कि बदौलत हर मौसिम में फल-फूल और शाक-सब्जी मिल जाया करती थी इन्हें। बाप उसका जाने कब मर चुका था। माँ खेतों से खरीद लाकर शाक-सब्जी बेचती, साल दर-साल मौसिम में आम-अमरूद आदि की आई फसल के दरख्त खरीद लेती। पक न जाए तब तक उनकी रखवाली भी करनी पड़ती। अहमद अगर इसके लिए बगीचे में भेजा जाता तो वहाँ से वह चुपके से खिसक जाया करता, और पीछे तोते और बन्दर कच्चे फलों को ही बरबाद कर देते। इन दिनों अमरूद का मौसिम है। घर से निकलता है अहमद तो झोला भर लाता है। दोस्त लोग खेलते रहते हैं और कच्चे-पक्के जैसे हाथ पड़ जाएँ पूरे के पूरे अमरूद दाँत से कुतरकर चबाते रहते हैं। माँ जान ही नहीं पाती कि पेड़ों पर नहीं बल्कि घर की चारदीवारी में ही बड़े-बड़े तोते और बन्दर उसको चरका दे जाते हैं।

मिसरीलाल की माँ मर चुकी है और बाप गठिया से ग्रस्त पीछे चौक में पड़ा गुड़गुड़ाता और उससे फुरसत मिली तो मुँह से बड़बड़ाता रहता है। चौकड़ी अक्सर उसी के घर पर जमती है। बाप की चिन्ता न मिसरी करता है न उसकी चंडाल-चौकड़ी। मिसरी की बड़ी बहन चम्पा हो तो वह करती है।

जमना शहर के छँटैल गुण्डों में गिना जाता है। उसकी पूंजी धौली उस्ताद की तरह शरीर की ताकत नहीं, पर अकल की बारीकी है। चींटे की तरह वह नहीं चिपटता कि टूट जाए पर छूटे नहीं। वह बिच्छू की तरह डंक छुआकर आनन-फानन में बिजली चमका कर छूमंतर हो जाता है। जरूरत पड़ने पर साँप की तरह बल खाकर हमला करता है और फन फैलाकर खड़ा भी हो जाता है, लेकिन फन कुचलने का मौका वह आने ही नहीं देता। उसने सत्यप्रकाश के लिए दोस्ती का इजहार किया और एक दस का नोट निकाल कर बोला, 'माँ तो क्या यार, अपन तो स्साले बाप को भी दोस्ती के बीच में नइँ आने देते। रख अपना पाँच का लोट अपने जेब में। और इसमें से जो बच जाए वो भी तेरा। ये अपनी दोस्ती का नजराना है जिगर। इनकार करेगा तो नराज हो जाऊँगा।'

'तू तो साले केरिया था कि सुभे विस टमटम का मुँह देख्या है?' अहमद बोला।

'भोदू ई रिया रे कुँजड़े। टमटम का चमचमाता मुँह क्या पैसे के रास्ते में आड़ आता है? वो तो जरा मुस्का दे बस, दिल में सारे दिन गुदगुदी चलती रहवे। और ये लोट तो सुभे बस की भीड़ में एक बाबू ने हिफाजत के लिए कूल्हे की पाकिट से निकाल कर अपना बटुआ सामने की जेब में रखा। अपन ने देख लिया। एक

जमजाट लुगाई को थोड़ा धक्का दिया और वो उसके सीने से जा टिकी। बस इतने में उसका पाकिट खाली। घर पौंच कर माथे पर हाथ मार लिया होगा स्साले ने।'

मिसरी बोला 'बेफिजूल मुझे पाण पे चढ़ा रिये हो यार। अच्छा सत्परकाश, अपणे हिस्से का डेढ़ रुपिया भी तू रख। होर तुजे चाहिये तो ये ले दो लोट। रात स्साली चम्पा मैंन इग्यारे बजे आई। समजी कि सो रिया हूँ। टपरे में बाँस के नीचे कोई चीज खसोलती हुई मैं देखई रिया था। सुबेरे बुढ़ऊ की देखरेखकर वो तो गई दवाखाने और हुवां टटोलकर देखता हूँ तो छींतरे की पोटली में एक पांच का और दो दो-दो के लौट बँधे पड़े हैं। सब मारने से तो पता चल जाए, सो एक मार लिया।'

मँगरू ने कहा, 'यार मिसरी, कसिम खुदा की, तेरी बहन चम्पा भी लाखों में एक है। देख बुरा मत मानना। हाँ, दोस्ती पहले और सब वाद में।'

'रोकता कौन है तुजे ? मन में आए जो बक न। नेकी-बदी अपणी अपणे साथ। दो बरस बड़ी सो माँ बरोबर तो हैई। जित्ता चहिए उत्ता पैसा-कौड़ी देती है और ऊपर से यूँ भी मारई लेता हूँ। सच्ची बात तो या है ठोंठ रँगने को अगर वो स्साले उस डाक्तर को लूटती है तो ओठ तर करने को अपण क्यू नईं उसी के दिखाए रस्ते चलें ? जिनगानी-जवानी अपणी भी चार दिन की है। जैसी वो वैसे अपण।'

जमना बोला, 'औरतें भी क्या-क्या जगह ढूँढ़ती हैं पैसा छिपाने के लिए ? चोर बेचारा करेई क्या।

'मेरी अम्मा तो स्साली कदी तो गोदड़ी की खोल में होर कदी घटी की चाकली में छिपा कर रक्खे हैं। अपन भी सातवें फलक से जमीन पर फुदकती चिड़ी भाँपनेवाले हैं। आज एक रुपैया हुवां से ई बरामद किया है। ये लो अपनी तरप से एक रुपैया। पर इयार, एक पारटी जरूर हो जानी चाहिए आज मजेदार पारटी। झिगन कल्लाल हमेरा बड़ा दोस है। वढ़िया दारू पिलाएगा।'

'अच्छा बेटे। कलाल से भी यारी गाँठ रक्खी है ?' जमना ने अहमद की पीठ थपथपाई।

मँगरू ने कहा, 'चलेगा रे सत्परकाश' ? पर तुझे तो पार्ले की तरफ अखबार देने जाना होगा न।

और इशारे के लिए उसने सत्यप्रकाश की जाँघ पर हाथ रखकर आँख को कुछ सिकोड़ लिया।

सत्यप्रकाश कुछ कहे उसके पहले ही मिसरी ने कहा, 'अरे हाँ' तुजे भी तो विस बमपिलास से मिलना होगा। वो तुजेई मुबारक, पर यार, कदी-कदी हुवांकी बिलाइती सराप हमें भी चखा दिया कर? सत्परकाश को तो वो मेम-छोरी भी पिला देती होगी।'

'तू जाएगा किस मुँह से स्साले हिंजड़े?—नाम डुबो आया सबका! खारिज था तो कसम किस भड़वे ने दी थी तुझे हुवाँ जाने की!' मँगरू ने ताना कसा।

'वो क्या मामूली बमफटाका है स्साली?' मिसरी ने कैफियत दी, 'चूल्हा-भट्टी हो तो कोई बिचारा भभका कर बुझा भी दे, पर वो तो अवाड़ा है कुम्हार का, कई-कई दिन तक चेत्याई रहवे। विस सुरसा से तो तूई निपट? अपण तो बस, जरा ओठ तर करवा दिया कर? क्यों सतवे?'

सत्यप्रकाश उठ खड़ा हुआ, नोट सब नीचे ही पड़े रहे, और बोला, 'मुझे तो भई, न कलार के यहाँ अहमद के साथ जाना है और न वीनस पालर मंगरू के साथ। अखबार अब नहीं वेचता इसका यह मतलब नहीं कि करने को मुझे कुछ है ही नहीं?'

'तो क्या इत्ती बखत घर जाएगा?—कदी घर पर वो मास्टर का बच्चा मिल गिया तो दिलगीरी बढ़ ई जाएगी प्यारे!' जमना बोला तो सत्यप्रकाश की आँखें लाल होने लगीं। लेकिन वह कुछ कहे उसके पहले अहमद ने कहा, 'इयार सत्परकाश, खुल्येमे सिगरट फिगरट है क्या?—इदरतो सब बीड़ी छाप हैं। स्साली गला पकड़ती है वो!'

सत्यप्रकाश ने जेब से पैकेट निकाला और सारा ही उसके सामने फेंक दिया। मँगरू भी नीचे पड़े सब नोट समेट कर उठ खड़ा हुआ और बोला, 'जमन्ये, तैंने फिर वई वात छेड़ी न?— अब आगे कदी इसके सामने इसके घर की बात चलाई तो मुंह लाल कर दूँगा। और सुनो, तुम सब दो घंटे में डीलक्स सिनेमा के मोड़ पर मिलना, चाहे इस बीच झिंगन की दूकान पर भी हो आओ। मैं सत्परकाश को लेकर हुवांई मिलूंगा।—और सत्परकाश, ये जेब में रख। तुझे बखत जरूरत चहिएंगे।' और उसने नोट उसकी जेब में भर दिए।

जमना ने कहा, 'क्यूं भई सत्परकाश, सच्ची बुरा मान गया?—क्या इत्ती मजाक का भी हक नई है अपन को?—अच्छा, माफ कर दे। आयन्दा नई करेंगे।—होर दोस्ती तो बखत पड़ने पर देख लेना, पसीने की जगे खून नई बहा दें जिगर, तो मुंह पर थूक देना, चाहे वो मास्टर का बच्चाई हो।'

मिसरी बोला, 'होर सत्तू, पैसे कौड़ी का तलब हो तो अपने से सरम मत कर दोस्त। चम्पा मैन जिन्दाबाद।—मांई है स्साली।—भली तो है हीं। वो भी

क्या करे विचारी ?—पेट की खातिर कुछ तो करनाई पड़े है। बाप तो तू जानता है कदीका रिटैर हो लिया।—दस बरस की उमर मेंई सब बजन पड़ गिया तो बिचारी करती ई क्या ?—यो डाक्तर सिन्ध से आयाई था। दवाखाना तो विसने भौत बाद में खोला विसी वखत तो चम्पा की तनखा चार से बढ़ाकर दस करी थी। स्साली मां को वी विसी बरस मरने की सूझी थी। दवाखाने में ई थोड़ा-भौत दाई का काम सीखा, और उमर का फायदा भी मजबूरी से उठायाई। बढ़ऊ तक ने एक दिन कह दिया कि कमाने-खाने की बस एकई उमर है। आदमी पिच-पन बरस में रिटैर होता हे तो औरत पैंतीस में ई फिस बोल जाती है दारी। कच्चर-बच्चर से बची रहे तो पाँच साल हौर समझ लो।—सो यार, अगर तुझे बुरा लगा हो तो अपनी चम्पा को दस गाली दे ले।'

'तेरा घर किदर है इयार ? कदी-कदी साग-भाजी पौंचाऊँ तो ?' अहमद ने कहा।

मँगरू ने सत्यप्रकाश का हाथ पकड़ कर कहा, 'चल, अपन चलते हैं। बकने दे इन्हें।'

मिसरी बोला, 'हम डीलक्स सिनेमा के मोड़ पर तुम्हारा रस्ता देखेंगे। इत्ते में बुढ़ऊ को देख आऊँ। पानी-सानी कर दूँ बिचारे की। नई तो पानी-पानी चिल्लाताई चीं बोल देगा।'

'भइया मँगरू, बिलैती सराप की बात मत भूल जाना।' अहमद बोला, लेकिन तब तक मँगरू सत्यप्रकाश का हाथ खींचे बाहर निकल चुका था।

× × × ×

एक के बाद एक, सात दिन बीत गए, सत्यप्रकाश घर नहीं लौट रहा है। दो-तीन रात तो प्रतीक्षा रही—एक-एक दो-दो रात का नागा तो वह पिछले कई दिनों से करता आ रहा था। फिर प्रतीक्षा का स्थान चिन्ता ने लिया और अब निराशा ने ले लिया है। तो क्या सत्य ने भी तमसा को छोड़ दिया ? पता लगवाए तो किससे ? महेश्वर को तो वह जानबूझ कर अलग हटाती जा रही है, वरना नित्य ही क्या वह लँगड़ी किसी न किसी बहाने उसकी सिफारिश नहीं करती ?—आता तो वह प्रतिदिन ही है, तो क्या उसी विकल्प का सहारा ले ? लेकिन उसी के कारण तो सत्य उससे भाग रहा है ? यदि सत्यप्रकाश लौटकर नहीं आया तो इस सूनी कोठरी में अब और उसका निर्वाह नहीं होगा। दाँतों के बीच जो बची रहती है वह जीभ है, कोई रसीला कोमल खाद्य नहीं। कठोर वस्तु हो तो दाँत भी काफी नहीं होते, बादाम या सुपारी को फोड़ने के लिए पत्थर या सरौता

चाहिए। तमसा तो यों ही अबला है, कोमल, मीठास-सुगन्ध-रस-रंग से भरी, दाँतों को तृप्ति ही नहीं, गुदगुदी भी प्राप्त हो तो वह कैसे बच पाएगी ?

क्या कोई एक कमरा अन्यत्र किराए से नहीं मिल सकता ? धर्मशाला में भी तो एकाध दिन के लिए टिका जा सकता है। सत्यप्रकाश उसकी खोज-खबर तो जरूर रखता ही होगा। उसके चले जाने पर आ जाए घर शायद ? इस नर्क-कुण्ड में कैसे रहे वह ? पास-पड़ोसी कोठरी के सामने आते-जाते ही उसे सुनाने के लिए फबतियाँ कस देते हैं। यह पड़ोसी गुलाबदास तो अपनी रखैल के बहाने रोज ही उसे गाली-गलौज और धमकियाँ सुना देता है। किवाड़ बन्द होने से ही तो आवाज बाहर नहीं रह जाती।—और यह सावित्री ?—निकल जाए यहाँ से तो उससे भी पिंड छूट जाएगा। रोज आकर सहारा क्या देती है, स्मृति कुरेद जाती है। महेश···उसकी स्मृति को तो दूषित चिथड़े की तरह घूरे पर ही जला देना चाहिए। कहती है उसका मकान काफी बड़ा है, खुद जाकर देख आई है हराम-जादी। अगर उसे थोड़ा-सा भी संकेत मिल जाए तो वह तमसा के ऊपर सब कुछ निछावर कर सकता है। नहीं, इसमें तमसा को सन्देह नहीं है, लेकिन तमसा का अधिकार क्या है कि उससे कोई आशा की जाए ? सत्य यहाँ आए और तमसा को न पाए तो क्या सबसे पहले वह महेश के यहाँ ही उसकी खोज नहीं करेगा ? गहीं-नहीं। अपने मन पर तमसा का पूरा काबू है। सत्यप्रकाश आ जाए एक बार घर, तो उसे कुछ नहां चाहिए, उसकी विद्यमानता में ही रात जब वह सोलेगा तो तमसा गले में रस्सी लपेटकर छत से लटक जाएगी। रस्सी यही अलगनी की खोल लेगी और छत की वह बल्ली इतनी मजबूत तो है ही।

ऐसे ही विचारों में खोई हुई थी वह, दिन काफी चढ़ आया था कि उसके बन्द दरवाजे पर किसी ने दस्तक दी तो सुनकर भी तमसा ने अनसुना कर दिया।

फिर दस्तक के साथ किसी अजनबी आवाज ने पुकारा, 'तमसा देवी, कमरा नम्बर तेरह ?'

'क्या है ?' भीतर से ही तमसा ने कहा।

'आपका खत है।'—तो डाकिया है। उसका खत—दिल धड़क उठा तमसा का। साल दो साल में अगर कभी कोई खत आया है तो किसी दूर-पास के रिश्ते-दार की शादी या गमी की खबर ही लाया है, अक्सर गमी की ही। शादी में तो गरीबों को स्मरण करने की सुधि ही किसे आती है ? मिलने के सब उपाय व्यर्थ देखकर कहीं उसने ही तो यह चाल नहीं चली है ? तमसा ने उत्तर दिया।

'ठीक से देखिए, किसी दूसरे की होगी।'

'कोठरी नम्बर तेरह। तमसा देवी यहीं रहती हैं न?' और दरवाजे की सेंध से हरे रंग का अन्तर्देशीय पत्र बढ़ा। मन मारकर तमसा उठी, सेंध को कुछ चौड़ी किया और पत्र लेकर चाहती थी कि किवाड़ पुन: बन्द कर ले कि लँगड़ाती-लँगड़ाती सावित्री ने दरवाजे पर दर्शन देकर कहा, 'काँई हुइ रियो है दरी? किनकी है चिट्ठी? महेसुरजी की है काँई? मरी मरद जात ने इत्ती भी खबर नईं रहवे। विनको काँई जाए? कोई देख भी ले तो मुसकिल तो लुगाई जात की है।'

दरवाजे को खोलना पड़ा। भीतर प्रवेश करने लगी तो तमसा के मन में आया भिड़ा दे किवाड़ कि पिचक जाए। पर क्रोध को रोककर उसने कहा—

'तुम भी क्या अंटशंट कह जाती हो जीजी—सत्यप्रकाश का पत्र है।'

'सत्परकाश को है काँई? आग लग्यो म्हे काईं जानती। चलो अच्छो हुयो, ठिकानो तो लग्यो। हम तो तमके पहलाँई कह्यो थी। मुँह मीठो करवानो होगी अब तो।'

'पर ठिकाना है कहाँ?'

'यो तो लिख्यो होगो नी कि चिट्ठी कहाँ से गेरी है?'

'अभी पढ़ी ही कहाँ है? खोली भी तो नहीं।'

'अभी खोली भी नईं? बजर छाती है तमारी भी। जिन्ने नौ महीना पेट में रख्यो, एक घड़ी भी आँखाओन से दूर हुई जाय तो अपनने तो आगलग्यो चैनई नईं पड़े।'

चैन तमसा को भी कहाँ पड़ रहा था? पर यह चुड़ैल सामने से तो हटे। उसकी उपस्थिति की परवाह न कर आखिर तमसा ने पत्र खोला और आँखों से वह उसे पीने लगी। सावित्री निवाके उसके चेहरे पर दृष्टि गड़ाए रही। शायद उसे तब भी विश्वास नहीं हुआ था कि पत्र सचमुच सत्यप्रकाश का था, महेश्वर का नहीं। क्या करे? पढ़ी-लिखी तो है नहीं—पर यह क्या? तमसा आँखें गाड़े पत्र ही में खो गई है। तमसा की आँखें बड़ी हैं, पर इतनी बड़ी तो किसी स्त्री की उसने पहले देखी नहीं। और यह क्या, उसके मुँह का रंग क्यों उड़ा जा रहा है? चेहरा रक्तहीन, सफेद फक।

'मजे में तो है नी दरी?' सावित्री ने टोंका। 'काँईं लिख्यो है?'

'लिखता है कि घर की अपेक्षा वहाँ पर सुखी है।' मरे हुए स्वर में तमसा ने उत्तर दिया।

'अपन के और कईं चाहिए? कठा से लिखी है? कद आएगा?'

'ठिकाना उसने नहीं लिखा और लिखा है कि मुझे तलाश करने की कोशिश मत करना।'

'क्यूँ ?'

'क्या कहूँ जीजी, कुछ समझ में नहीं आता। जाने क्या इस जले तकदीर में लिखा है।' और उसने अपना बायाँ हाथ कपाल पर दे मारा। न उसकी वाणी स्थिर रह सकी न उसकी आँखें। पैर भी काँपने लगे तो तमसा नीचे बैठ गई सिर पकड़े हुए। सावित्री भी बैठकर उसकी पीठ सहलाने लगी।

'कांईं हुयो दरी ? मजे में है तो फिकर किन बात को ? आए तो यो घर नईं आए तो मरजी विनकी। कईं भी रहे सुख से रै वे। माँ-बाप और कईं चाय ? बेटी परनाई परायो घर बसाय, बेटो परनायो न्यारो होय। आगलग्या जगत की याई तो रीत है।'

'परनाया अलग होता तो एक सन्तोष तो होता जीजी ! वह तो कुछ समझता ही नहीं।'

'सब समजे है आजकल का छोराओन। अपनने तो लगे क कोई छमक-छन्दा ने कामण कर दियो है। उमर भी तो हुई गई है। आ जाय अब तो कोई लड़की देखी क खूंटा से बाँधने को इन्तजाम कर दो। अपन ने तो ईं वास्तेई किरसन और क्रिसना दोई का हाँथ पीला कर दिया। आप अपनी निबेड़े अब।'

'सत्यप्रकाश घर लौटे तो।'

'झक मारकर आएगो। आएगो नईं तो जाएगी कठे ? दो-चार दिन सबर रख दरी। अछता-पछता कर पग रगड़तो आगलग्यो आप आएगो।'

'वह तो लिखता है कि मेरे लौटने की आशा मत करना। समझ लेना कि मैं तुम्हारा पुत्र नहीं हूँ, अगर मुझे खोजने की कोशिश की तो···' तमसा से आगे बोला नहीं गया।

'तो काँईं करेगा ?' सावित्री ने आगे कचोटा।

'सारी दुनिया में बदनाम कर दूँगा। बदनामी फैलने से तो डरोगी न ? कि यह शर्म भी नहीं रही ? अपने मास्टर से भी कह देना कि अपनी नौकरी को खतरे में न डाले कहीं।'

'यो बेटी है कि सात जनम को दुसमन ? आग लगे ऐसा बेटा-बेटीन में···'

तपसा ने सावित्री के मुँह पर हाथ रखकर कहा, 'अपशकुन मुँह से मत निकालो जीजी।'

'बड़ी माँ बने है दरी। हमके भी तो देख। जड़ने को दुक्ख हमने भी कम नहीं उठायो, ये कोई आसमान से नई टपक पड्या। आज का दिन क वास्ते कईं नौ महीना पेट में रख्यो ?'

लम्बी साँस लेकर तमसा बोली, 'पर मेरे वंश का तो एक ही दीपक है जीजी !'

'दो होय न कई नियाल करे ? अपणी राय माने तो विनको नामई मत ले अब। आनो होयगो तो झख मारकर पग पटकतो आयगो ! और विन विचारा मास्टर को कई दोस है ? विन्ने तो तू अब कदी आँख से भी नई देखे ! नित्त आकर खबर ले जाय बिचारी घरवाली भी इत्ती खयाल नई रक्खे !'

'उन्हें इस पत्र की बात न कहना जीजी। और कहना कि अब मुझे मेरे हाल पर ही छोड़ दें ! क्या पता, शायद इसीलिए सत्य न लौट रहा हो ? मैं उसके मन को खूब समझती हूँ, बड़ा जिद्दी है न ! और सच न मानोगी जीजी, मैं तो इन मास्टरजी को जानती ही न थी। इनकी बड़ाई करते उसका मुँह नहीं थकता था। और अब तो जाने किसने उसकी बुद्धि पर पत्थर डाल दिया है !'

'तमारी अकिल पर तो जरूर पड्यो है दरी ! आगलग्या इन जगत में कौन किणका होय ? अपनो जो भलो चिन्तै सोइ अपनो ! और चार दिन की चाँदनी और मौत अन्हेरी रात ! तब घर को घणी नई पूछे तो बेटा कोई क्यों दोस दो ? ले दरी, भौत देरी हुइ गई। शिब्बू ने दूध देनी है।' और फिर उठ खड़ी होकर बोली, 'कदी कोई चीज-वस्त की जरूरत होय तो सरम मत करजे। और महेसुरजी ने कुछ कहनी होय तो खुदई कहनी अच्छी है। तेरे कनेई भेज दूँगी।' और वह लँगड़ाते-लँगड़ाते जाने लगी। तमसा कहती रही, 'नहीं जीजी, मेरी सौगन्ध। यहाँ आने को कहा तो मैं गले में रस्सी लगा लूँगी !'

तमसा जमीन पर ही लेट गई, और वितृष्ण नेत्रों के सामने सत्य का पत्र आ गया। पढ़ तो रही थी, पर जो लिखा वह मानो उसकी समझ में ही नहीं आ रहा था। पढ़े हुए को फिर पढ़ती और फिर भूल जाती। कोई छोटी नौकरी पा ली है, कौन-सी नौकरी पा ली है ? पढ़ना छोड़ दिया ? अभी उम्र ही क्या है, एकाध साल और कॉलेज में रहकर बी० ए० हो जाता तो अच्छी-सी नौकरी का हकदार हो जाता ! भूल चुका है कि उसका कोई घर है......घर नहीं लौटेगा अब—सच-मुच भूल चुका है ? भूल गया है कि अँधेरे कमरे में बैठी उसकी माँ उसी की राह में अपने जीवन की साँसें गिन रही है ? कैसे समझ ले कि वह सत्य की माँ नहीं है ? माँ नहीं है तो इस शून्य जगत में वह है क्या ? माँ, उसकी सबसे बड़ी दुश्मन ? माँ

कभी अपनी सन्तान की दुश्मन हो सकती है ? तब उसे आज यह दिन क्यों देखना पड़ता ? बदनामी ही नहीं, और कई उपाय हैं जिनका उपयोग करने से वह नहीं हिचकिचाएगा अगर महेश्वर ने कभी उसे खोजने की कोशिश की······कई उपाय, क्या हैं वे ? उसके मित्र···गुण्डे-बदमाश···नहीं-नहीं, सत्यप्रकाश इतना नीचे कैसे उतर जाएगा ? वह तमसा का पुत्र है, एक सती ब्राह्मण नारी का !

सजल नयनों को पत्र पर फैलाए भावना लोक में इतनी गहरी खो गई थी वह कि दो खोली आगे रहनेवाले मुनीम गुलाबदास की रखैल नायन मुँह पर हाथ भर का घूंघट मारे एक हाथ में कुछ कपड़े लेकर भीतर प्रविष्ट हुई तो उसने जाना ही नहीं ! 'सो रई हो कईं सतपरकाश की माँ ? एक काम पड़गियो ?'

तमसा हड़बड़ाकर उठ बैठी, सत्य का पत्र उसने तह करके ब्लाउज में रख लिया । नायन से उसका कभी बोलचाल नहीं था । कपड़े सहेजते हुए बोली, 'क्या बात है ?'

'विनके लिए एक पायजामो बना दो दरी । नापके लिए पुरानी भी लाई हूँ !'

'इन दिनों मेरी तबीयत ठीक नहीं चल रही है । पहले के कपड़े ही नहीं हो पाते । नये कैसे ले लूं ?'

'अरे भई, आठ आना नईं, दस आना ले लीजो । जरूरी में चइये विनके ! मैंने ई तो किया विनसे के पड़ोस में ई गरीब बिधवा ने दो पइसा की पराप्ती होय तो बाहर क्यूं जाय ? मसीन तो है ई तमरे हिंया !' और घूंघट को थोड़ा ऊपर खिसकाकर वह तमसा के पास ही उकड़ूं बैठ गई ।

'तुम्हारी मेहरबानी है कि मेरा ध्यान रक्खा । पैसे की कोई बात नहीं । न दोगी तो भी माँगूंगी नहीं । इतने से काम का क्या पैसा लूंगी ? लेकिन सच, अभी तो, लगता है मुझे ज्वर भी है !'

'हाँ भई, पइसा की तो तमने अब जरूरत भी कई है ? मैं तो भूलई रई थी । अब तो रस्तो भी साफ हुई गयी । सरमदार सपूत ने हाथ पकड़ कर निकारई दियो । विन मुसंडा की ई चिट्ठी है नीं ? खूब चौड़ा-चपटा हुइ न ऐस करो भई । अब तो तमारोई बखत है !'

तड़पकर तमसा बोली, ज्यादा बकबक करने की जरूरत नहीं है । कपड़े रख दो । कल रात को लिए जाना इसी समय । और चलती बनो यहाँ से !'

'जाऊँगी तो सरी ई । तमारी पत्तल में मुँह थोड़ी मारनी है ! सोना को

मुर्गी पालकर पइसा की कइं परवा है तमारे ! पण एसोई हे चरतारीबाई तो वीं दिन म्हारे घरवाला ने ई क्यूँ अपणा खसम से पिटवा दियो ?'

तमसा को रुलाई आ गई। हाथ जोड़कर बोली, 'अपनी खोली में जाकर चिल्ला निर्लज्ज ! कर यहाँ से काला मुँह !' और उसने कपड़े उसके मुँह पर दे मारे !

'थारी या मजाल लुच्ची राँड ? सौ-सौ उन्दरा खाकर मिन्नीबाई तीरथ जात्रा करने चली है ? समझ कईं रख्यो है म्हने ?' और अचानक ही तमसा का हाथ पकड़ कर उसने इतने जोर से धक्का दिया कि तमसा नीचे लुढ़क गई। नायनने घूंघट को ऊपर खिसका लिया और वह तमसा पर विकराल रूप धारे चढ़ बैठी और लगी दोनों हाथों से उसपर मुक्के बरसाने। दुःख और वेदना से तमसा चीख-चिल्ला भी न सकी, मानो अचेत होकर निश्चेष्ट पड़ी रही। नायन आई ही थी झगड़ा शुरू कर उस रात की गुलाबदास की पिटाई का बदला लेने के लिए। तमसा समझ गई थी। अगर उसने आह-ऊह भी की तो पासपड़ोस आ इकट्ठा होगा। बचाएगा उसे कोई नहीं और महज एक तमाशा खड़ा हो जाएगा। नायन बकती भी रही पर आहिस्ता से कि कोई सुन न ले, 'हौर पिटवाजे अब कोई भला मानस के ! इत्ती प्यारी है यार, तो बैठ क्यूँ नईं जाय धड़ल्ला से विनका घर में ? बड़ी बिरामणी बने है ! करम तो भंगी चमारन जैसा करे है हौर...'

पर तमसा ने जब कोई चेष्टा ही नहीं दिखाई तो नायन डरी, कहीं कुछ हो तो नहीं गया तमसा को ? तमसा के हाथ की एक चूड़ी टूट जाने से हाथ से खून निकल आया था। आँखें फाड़कर नायन बहते हुए खून को देख रही थी कि पीछे से दरवाजे पर कठोर पुरुष कंठ की आवाज आई, 'यह क्या है ?'

मुँह फिराकर नायन ने देखा कि दरवाजे पर तो वही मास्टर रुद्र रूप लिए खड़ा है तो एक बार तो धक् से रह गई, पर तुरन्त होश सम्हाल कर उठ खड़ी हुई। जाति की नायन थी, प्रत्युत्पन्नमिति बोली, 'अरे बचाओ, यो मरदुआ औरत जात पर हाथ उठावे है !'

महेश्वर भी चौंक उठा। एकाएक इस अकारण दोषारोप से घबराकर दरवाजे से हटा कि नायन जगह पाकर तीर की तरह बाहर निकल आई और अपनी कोठरी में भीतर घुसकर कंडी चढ़ा दी।

तीसरा पहर बीत रहा था। चाल में इस समय शान्ति रहती है। पुरुष सभी काम पर बाहर गए होते हैं और महिलाएँ शाम के चूल्हे-चौके की तैयारी में लग जाती हैं। नायन ने समझबूझ कर ही समय चुना था। बदनामी वह ले ही चुकी थी। अगर अचानक वह मरदुआ न आ टपकता तो जीभ की खुरदरी भी मिटा लेती ! देख भी लिया हो मरदुए ने तो अब भय क्या है ? वह अपनी खोली में

है, और बन्द दरवाजे पर भीतर से कुंडी चढ़ी हुई है ! घर में घुसे भी तो कैसे घुसेगा ?

तमसा ने गर्दन उठाकर देखा । क्या सचमुच वही है ? उसके मुँह से निकला, 'महेशू··· ।'

'नाराज न होओ, तमसा । कहोगी तो तुरत चला जाऊँगा । पर यह सब क्या है ? कौन थी वह चुड़ैल ? तुम्हारी यह क्या हालत हो रही है ? क्या कर रही थी वह ?'

तमसा सहज होकर उठ बैठी । अस्तव्यस्त कपड़ों को ठीक किया । रुँधे हुए गले से बोली ।

'मुझ ले चलो यहाँ से महेश ! यहाँ मेरा दम घुट जाएगा, और मैं मर भी नहीं सकूँगी । मुझे इस नरक से बाहर निकाल लो, मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूँ ।' और बिखरे बालों से ढँका अपना मस्तक उसने महेश्वर के सामने फर्श पर टिका दिया ।

महेश्वर आतंकित हो उठा इस अप्रत्याशित व्यापार को देखकर । बोला, 'तुम्हारा आदेश अमान्य नहीं होगा बहन ! पर बात क्या है ? चलने के लिए तो मैं खुद तुमसे कितनी बार कहना चाहता था ? चलो, इसी क्षण चलो । जबतक मैं जीवित हूँ तुम्हारी तरफ कोई आँख उठाकर भी नहीं देख सकेगा, खुद मैं भी नहीं । इसका तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ ! पर, यह औरत कौन थी ?'

उस रात जिस मुनीम से तुम उलझे थे उसकी रखैल नायन थी । सीने के लिए कुछ कपड़े लाई थी मैंने इनकार कर दिया इसलिए उलझ बैठी ।' तमसा ने प्रकृतिस्थ होने की चेष्टा करते हुए कहा ।

'छीना-झपटी भी कर गई ?—आसार तो कुछ···

'वह कोई बात नहीं । बोल-चाल जरूर कुछ हो गई । ओछे लोग हैं न ।—पर महेश, यहाँ मेरा और रहना दूभर हो गया है । चाह कर मैं यहाँ मर भी नहीं सकती । मुझे किसी दूसरी जगह पहुँचा दो ।'

'चलो, मेरा घर तुम्हारे लिए ही है । मैं उसे मन्दिर बना लूंगा ।'

'तुम्हारा घर ?–फिर वही प्रवञ्चना ?'

'तुम्हारा यहाँ रहना प्रवञ्चना नहीं है ?'

कुछ क्षण चुप रहकर तमसा ने पूछा, 'आज स्कूल नहीं गए ?'

'नहीं । तीन-चार दिन से मैंने छुट्टी ले रखी है ।' –पूछोगी क्यों ?–इसलिए कि मैं पागल होता जा रहा हूँ तुम्हारी यह अवस्था देखकर । मैं कहीं भी अपने होश-

हवास दुरुस्त नहीं रख पाता। जब से तुम्हारी उस पड़ोसिन से पता लगा कि सत्यप्रकाश इन कई दिनों से घर नहीं लौटा तुम्हारे खयाल से मैं परेशान हूँ। मैंने पुलिस की सहायता भी ली, पर सत्यप्रकाश का अभी कोई पता नहीं लगा पाया।'

ब्लाउज से निकाल कर तमसा ने सत्यप्रकाश का पत्र महेश्वर के सामने किया तो पूछा, 'यह क्या है ?'

'पढ़ देखो !' महेश्वर पत्र पढ़ने लगा तो वह उठी और अपने हाथ-मुंह धो लिए। पूछा, 'पढ़ लिया ?'

'हाँ ! पर इससे तो कुछ पता नहीं लगता।'

'पता लगाने की क्या अब भी जरूरत है ?' कुछ क्षण सोचती-सी रहकर तमसा ने कहा।

'जरूरत ? कहती क्या हो ? वह बचपना करे तो क्या हम भी वही करने लग जाएँ ? एक दिन वह अवश्य अपनी भूल समझेगा, पर क्या तब तक माँ-बाप हाथ पर हाथ धरे बैठे रह सकते हैं ?'

एकाएक तमसा विह्वल हो उठी और महेश्वर की बाँह पकड़ कर बोली, 'मैं निर्भर करूँ तुमपर ?' महेश्वर फर्श की ओर देखता रहा तो तमसा ही बोली, 'तुम्हारे सिवा अब और किस पर विश्वास करूँ ?'

'मेरी कमजोरियाँ तुमसे छिपी नहीं हैं तमसा, लेकिन···'

'नहीं, कमजोरियाँ नहीं। तुम्हें दृढ़ होना पड़ेगा। मैंने जीवन भर किसी का विश्वास नहीं पाया। नहीं जानती, पति का भी पाया या नहीं। विश्वास न पाकर भी मैंने तुम्हारा करना चाहा है। अपनी इस आवश्यकता के क्षण में अगर तुम्हारा सम्बल चाहूँ तो तुम्हारी कमजोरी से तो मैं नष्ट हो जाऊँगी !' आँसू उसके कपोलों पर लुढ़क चले और वह कहती रही, 'मृत्यु ने भी मुझे आश्रय नहीं दिया। उस रात से ही हर क्षण मर जाना चाह रही हूँ। दो-तीन बार प्रयत्न कर देखा ! पर··· कहाँ अटके हुए हैं मेरे प्राण···नहीं जानती···' और उसका स्वर रुँध आया।

'अब से तुम्हारा और सत्यप्रकाश का भार मेरा हुआ। चेष्टा करूँगा कि तुम्हारे विश्वास के योग्य बनूं।'

एक लम्बी साँस ली तमसा ने और कहा, 'कहाँ पहुँच गई हूँ ? इस देहली के बाहर—जानती हूँ कि यह वह बिन्दु है जहाँ पहुँच कर लौटना सम्भव नहीं रहता। शायद मेरा देवता मुझे निराश नहीं करेगा। शायद तुम्हारी गृहस्थी में तुम्हारे बच्चों की सेवा-टहल में ही मुझे कहीं सत्यप्रकाश मिल जाए।'

महेश्वर के अधर फैले, 'यह तृष्णा भी तुम्हारे योग्य नहीं है तमसा ! जिस आसन पर तुम्हारी कामना मूर्त हुई…कह लेने दो आज पहली और अन्तिम बार बहन, तुम उसपर सुशोभित नहीं हो सकी तो वह खाली रहने के लिए ही है। अच्छा, मैं बाहर चलकर वहाँ नीम के नीचे तुम्हारी प्रतीक्षा करता हूँ। क्या-क्या ले चलना है समझा दो। बाद में सुविधानुसार ताँगे से पहुँचवा दिया जाएगा।'

'कुछ नहीं सिवा पहनने के कपड़े और मेरे इन बालकृष्ण की मूर्ति के ! हे भगवन्…' और एक दीर्घ निःश्वास के साथ उसके नत नयनों से टपटप आँसू फर्श पर गिरने लगे।

महेश्वर उठ खड़ा हुआ। बोला कुछ नहीं। केवल एक दृष्टि निक्षिप्त कर दरवाजे से बाहर हो लिया। किवाड़ को आपही बन्द हो जाने की आदत है। वह बन्द हो गया।

●

ब्रह्माण्ड-रश्मि

'क्या लोगी ?—सैंडविच, ऑमलेट, स्क्रेम्वल्ड......'

'ना-ना, वह सब कुछ नहीं। पेट में बिलकुल जगह नहीं है। एक हॉट कॉफी, बस !'

महेश्वर ने बैरे को इशारे से बुलाया और दो हॉट कॉफी का ऑर्डर देकर सामने बैठी टरेसा की ओर दृष्टि डाली। सारे कॉफी हाउस में उसके सौंदर्य का प्रकाश बिखरा पड़ रहा था। भारतीय वेश में नारी के लिए अंग-गोपन के क्षेत्र में जो अचेतन सतर्कता निहित रहती है उसके स्थान पर टरेसा के व्यवहार में चेतन असतर्कता अंग-प्रदर्शन को ही प्रोत्साहित करती है। आदमी नामक पक्षी को फँसाने के लिए पींजरा किस तरह का हो यह टरेसा जानती है। निखरा हुआ रंग, न किसी रूज-पाउडर का मुहताज और गोलाइयों में खिचा हुआ गदराया गात्र, न किन्हीं अंगों को अप्राकृतिक उभार देनेवाले पैड का अपेक्षी। जब वह आई थी तभी दर्शक मुग्ध हो गए थे—ऊँची एँड़ी के जूतों पर फुदकती हुई, सिर से खिसके हुए आँचल को लहराते हुए वह आई थी पंखों से पानी काटकर आगे बढ़ने वाली राजहंसिनी की तरह ! महेश्वर पहले ही पहुँच कर वहाँ बैठा उसकी राह देख रहा था। मुस्कराकर जब टरेसा ने दूर से ही महेश्वर के संकेत का उत्तर दिया था तो दर्शकों की दृष्टि उससे हटकर महेश्वर के भाग्य से जा टकराई थी।

'क्या डिनर ले चुकी हो ?'

'तुमने नहीं लिया ?—देन ह्वाई नॉट ऑर्डर फॉर इट ?—मैं फ्री हूँ। तुम खाते जाना, मैं बात करती रहूँगी। मैं तो रेअर-कस्टमर के बार्बेक्यू से आ रही हूं।'

'आइ नौ !—तुम्हारे पार्लर पर ही मुझे खबर लग गई थी।—ना, मैं घर पर ही खाऊँगा ! क्या ड्रिंक-इंक भी गटक आई हो ?—'

'ड्रिंक तो मैंने छोड़ दिए उसी रात से ! आफ्टर दैट नाइट मेअरिश एक्सपीरिएंस, कौन उसे दुहरा सकता है ?—डोंट वरी, वी फिनिश कॉफी एण्ड देन गो टु पार्लर ! दैट गर्ल इज फीवरिश टु मीट यू !'

'ह्विच गर्ल ?' बैरा टेबल पर दो कॉफी और पानी के गिलास रख गया !

'तुमसे कहा नहीं जिसने मेरे लिए यहाँ वेट करने को ?—शी इज नीरा, नीरा रॉस, माइ मेजर पार्टनर ! इजंट शी चार्मिंग ?'

'मैंने खयाल नहीं किया। मुझसे क्यों मिलना चाहती है वह !—मुझे जानती है ?'

'तुम स्लिप देकर जो आए थे !—पूछते हुए मुझे या उसे, जो आते हैं, अक्सर कस्टमर्स ही तो होते हैं ! फिर तुम जैसे दिखनौटे जवान को तो देखकर ही जान नहीं लिया जाता ?'

'तुम्हीं उसकी वकालत क्यों करती हो ? कह तो चुकी हो कि वह काफी चार्मिंग है !'

'हम में जेलसी नहीं है !' मुस्कराकर उसने कहा, 'पार्टनर हैं न !—कह सकती हूं, इट विल बी ए नाइस डिनर ! यू वांट रिग्रेट हर इन स्पाइट ऑफ हर एज !'

'क्या मतलब ?—शी सीम्ड क्वाइट यंग !'

हँसकर टरेसा बोली, 'सोलह साल की तो उसकी लड़की ही है !—पूरे पैंतालीस की है !'

'लेट हर वी !—उसने तो कहा भी था वहीं वेट करने के लिए !—क्या तुम ट्यूशन भी करती हो ?—'

'उसने कहा था न ?—ग्राहकों को किसी तरह उलझाए तो रखना होता है न ! वह बेचारी क्या जाने कि हमारा संबंध बिजिनेस का नहीं है ! लेकिन मैंने तो तुम्हारे बारे में उससे कह रखा है !'

'तभी तो वहाँ बैठकर ही राह देखने को कहा था ! बल्कि पूछा भी था हॉट या कोल्ड ड्रिंक के लिए !

मुस्कराकर टरेसा ने पूछा, 'हॉट और कोल्ड का मतलब समझते हो डार्लिंग ?'

'क्यों नहीं ? हॉट याने चाय-कॉफी, कोल्ड याने यही सोडा-जिन-ह्विस्की !'

'नहीं समझे डीयर। वहाँ के माहौल में चाय-कॉफी-शराब-शरबत सब ठंडे झंडे के नीचे चलते हैं। गरम चीज का मतलब……' और वह एक मतलब भरी गूढ़ हँसी हँस दी।

'यह बात है ! तब तो कॉफीहाउस आने की बनिस्बत मुझे उसके बताए हुए कमरे में जाना चाहिए था !—गरमागरम विभाग की इंचार्ज क्या वही है ?'

'अच्छा हुआ कि स्लिप छोड़कर तुम यहाँ चले आए ! मैंने कहा था न कि शी इज ए प्रक-इनफैक्ट । शी इज ए निम्फोमैनिएक !'

'निम्फोमैनिएक ?–गुड गॉड !—और तुम मुझे फिर वहीं ले चलना चाहती हो ?'

'मैं साथ रहूँगी न !—जल्दी खत्म कर लो कॉफी, बेचारी राह देख रही होगी !'

महेश्वर ने पॉकिट से सिगरेट केस निकाल कर एक सिगरेट जलाई और कॉफी की चुस्कियों के साथ सिगरेट के कश निगलते हुए बोला, 'मैं नहीं जा सकूँगा । मुझे घर लौटना है और जल्दी भी ! जल्दी खत्म कर लो तुम भी !'

'किंतु पार्लर में एक कमरा मेरा भी तो है, बिलकुल मेरा । कोई हमें वहाँ डिस्टर्ब नहीं करेगा !'

'स्लिप देकर आया था इसलिए रुक भी गया, वरना चला भी गया होता !'

'चले गए होते तो क्या तुम्हारे फ्लैट पर नहीं पहुँच जाती मैं खुद ?'

'इसी डर से तो रुक जाना पड़ा !' टरेसा ने प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा तो महेश्वर ने कहा, 'बात यह है कि गए कुछ दिनों से मेरे यहाँ एक मेहमान आकर टिका हुआ है । नहीं चाहता कि उसके मन में किसी तरह की गलत फहमी पैदा हो ।'

'कौन है यह महमान ?—कुछ परेशान-से भी दिखाई देते हो । परेशानी क्या उसी को लेकर है ?'

एक तरह से ।–याद है तुम्हें, जब हम पहले पहल सिनेमा हाउस में मिले थे तब मेरे साथ एक लड़का था, जिसे बाद में मैंने अपनी सीट दी थी और मैं तुम्हारी बगल वाली सीट पर बैठ गया था ?'

'आइ सी, तो उसी से डरकर मुझे अपने फ्लैट पर नहीं ले जाना चाहते ? लड़कों में अभी रुचि बनी है ?'

'डोंट वी स्टुपिड । —वह मेरे पुत्र के समान है । मेहमान वह नहीं, उसकी माँ है ।'

'उसकी माँ ? —लेकिन, वह तो काफी उम्र वाली होगी, मुझसे तो ज्यादा ही ।'

'ह्वॉट डु यू मीन ?' –प्लीज, डोंट बी ह्वलगर अबाउट हर ।'

टरेसा ने हँसकर कहा, 'परेशानी उसी को लेकर है ? —क्या बहुत सुन्दर है ?'

तमसा की सुन्दरता का खयालकर महेश्वर सहज हो उठा। बोला, 'तुम क्या सोचती हो ?'

'तो चलो न। एक बार दिखला दो। सो ही तो कह रही हूँ। जेलसी का तो हक ही कहाँ है ?'

'आज नहीं टरेसा, और किसी दिन ले चलूंगा।' और उसने कॉफी शेष कर ली।

'और किसी दिन, क्या वह काफी दिन ठहरेगी ?'

'तुम्हारा यह स्वर तो स्पष्ट ही जेलसी का है टरेसा।'

'स्त्री जो हूँ।' फिर एक लम्बी साँस लेकर कहा, 'शायद नहीं हूँ, जिसे अपना शरीर बेचना होता है, वह स्त्री नहीं होती। किन्तु वह भी तो···मेरा मतलब, जब तुम्हारे यहाँ···'

'मैं समझता हूँ तुम कहना क्या चाहती हो। —वह एक आदर्श नारी है, पूर्ण पतिव्रता।'

'जरूर तुम उसे प्यार करते होगे। पर वह तो तुम कहते हो···'

महेश्वर ने कहा किञ्चित मुस्कराकर, 'पूर्ण पतिव्रता है। नहीं जानता, वह प्यार को समझती भी है या नहीं। —पर कॉफी पियो न। ठंडी हुई जा रही है। इसने क्या कसूर किया है ?'

प्याला उठाकर टरेसा ने एक ही घूंट में खाली कर दिया। महेश्वर ने कहा, ठंडी हो गई। और मँगवा दूँ ?

'ना—ना, बिलकुल नहीं। ओठों पर जीभ फिराकर उसने पूछा, 'अधिक पूछूं तो प्रिय नहीं होगा न।

'पूछो। दो बात तुम्हें यूँ ही बता दूँ, एक तो यही कि मुसीबत में पड़कर वह मेरे आश्रय में आई है। दूसरी बात यह कि उसका अस्तित्व, कह लो व्यक्तित्व ही शरीर की सतह से बहुत परे है।'

'मैं समझी नहीं। अगर तुम्हारा मतलब हो कि उसके साथ तुम्हारा शरीर सम्पर्क नहीं है तो फिर तुम्हारी उसमें दिलचस्पी क्यों है ?—और उसका वह लड़का, वह क्या साथ नहीं है ?'

'नहीं। —और दिलचस्पी की बात पूछी न ? —ईश्वर को मानती हो तुम ?'

हँसकर टरेसा ने कहा, पहले मानती थी। स्टेप फादर तो पूरे तैंतीस करोड़ देवताओं के भक्त थे, उनमें से एक मैं भी थी शायद। इसीलिए मुसीबतें भी तैंतीस

करोड़ आई उनके सामने और मेरे भी। और मनसे जैसे-जैसे इन असंख्य भगवानों की छाप मिटती गई, मुसीबतें भी आप ही काफूर होने लगीं। अब तो ईसाई हूँ, पर फेद ईसाइयत में भी नहीं, केवल इंसानियत में रह गया है। जरूरत पड़ने पर चर्च संडे को ही नहीं, वीकडेज में भी जा सकती हूँ, पर ग्राहक ढूंढ़ने इसी जन्म के लिए, भगवान के लिए नहीं।

'ईश्वर को मैं भी नहीं मानता। सच, जो मानते हैं वे ईश्वर को नहीं, मुसीवतों को मानते हैं, किन्तु तब भी वे ईश्वर को मानना नहीं छोड़ते। मैं इस देवी को मानने पर विवश हूँ, यह जानते हुए भी कि इससे अगर कुछ मुझे मिला तो वह निराशा और मुसीबत के सिवा और कुछ न होगा।'

'विधवा है वह ?' टरेसा ने पूछा।

महेश्वर ने आश्चर्य से पूछा, 'तुमने कैसे समझा ?'

'परतन्त्र जो वह नहीं रहती। अगर उसमें दृढ़ता हो तो पुरुष उसकी भक्ति करने लगता है। दृढ़ता न हो तो वह, पुरुष की भक्त बन जाती है। विवाह एक कैद है न। हिफाजत और पेट-भराई की गैरंटी तो है ही, बल्कि स्वास्थ्य का भी ध्यान रखा जाता है। लेकिन कैदी तो कैदी, जेलर क्या खुद उसका कैदी नहीं हो जाता ? हर कैदी को दूसरे का पहरेदार होने का वहम, पर इससे आजादी की प्यास ही तो वढ़ती है। कैद की हिफाजत न रहने से विधवा को अपने पैरों पर खड़ा होना पड़ता है इसलिए भी उसमें आत्म विश्वास बढ़ा हुआ होता है।'

'देअर यू आर राइट। आत्म विश्वास की तो वह पहाड़ है। कोई उसे डिगा नहीं सकता।'

कॉफी हाउस लगभग खाली हो चुका था। कुछ ही ग्राहक शेष रह गये थे। महेश्वर ने घड़ी देखी और कहा, 'समय वहुत हो गया टरेसा। सोचा था शायद तुमसे मिलकर जी हलका हो जाएगा, लेकिन...'

तुम्हारे मन पर से उस देवी का भूत नहीं उतर सकी।' और उसने कन्धे को कुछ खम दिया कि उसकी साड़ी कन्धे से खिसक कर कमर पर आ टिकी। गले पर कंधों के बाहरी सिरे तक खुला चोली का अर्द्धवृत्त बाहुमूल से आगे न बढ़ने के कारण दो अंगुल चौड़ी पट्टी का ही रह गया था। नीचे चोली और भी उदार है, छिपाने की समस्त चेष्टा को चुनौती देकर वक्ष का उभार उन्मुक्त होने के लिए मचल रहा है। शिखरों पर दृष्टि स्थिर हो जाना चाहे किन्तु कंचुकि-बन्ध के ऊपर ही शिखरों के वीच की उपत्यका प्रारम्भ हो जाती है, जिसमें दृष्टि सरलता से फिसल जाती है और तव नीचे बहकर त्रिवली में अटकती-भटकती अनावृत नाभि-कुण्ड में

ही निक्षिप्त होती है। महेश्वर ने देखकर भी अनदेखा कर दिया। एक लम्वी साँस लेकर अधजली सिगरेट उसने एशट्रे में मसल दी।

'लेकिन तुमने उसकी परेशानी तो बताई नहीं डीयर ? सुनकर उसकी न सही, शायद तुम्हारी ही परेशानी का कुछ छोर पाया जा सके ?' और उसने महेश्वर का हाथ पकड़ लिया।

महेश्र ने अपने आप को संयत किया। उसने सिगरेट केस से एक और सिगरेट निकाल कर जलाई और मुस्कराकर कहा, 'सिगरेट मैंने प्राय: छोड़ ही दी थी, लेकिन फिर पीने लग गया हूँ। मन के ऊपर तनाव हो तो और अधिक तलव लगती है।'

टरेसा ने साड़ी के आँचल को यथास्थान कर लिया और कहा, 'सोचा था कि 'पुरुष के तनाव को कम करने में स्त्री को कोई परेशानी नहीं होती। —देखती हूँ कि तुम्हारा तनाव तो और ही किस्म का है। मैं स्त्री हूँ शायद इसीलिए तुम अपनी स्त्री विषय की कमजोरी नहीं पकड़ाना चाहते।'

'नहीं टरेसा। वह कमजोरी नहीं, वह तो एक दृढ़ता है। मैंने तमसा के पुत्र की बात कही थी न ?'

'तमसा ? —यू मीन, उस मेहमान का नाम तमसा है ?—हाउ स्वीट ?—जैसे कविता की पंक्ति हो।'

'वह स्वयं एक कविता है टरेसा। एक बार देखोगी तो अपने आपको भूल जाओगी।'

'तो बताते क्यों नहीं ?—मैं तो सिर के वल अभी चल पड़ने को तैयार हूँ।'

'समय आने पर जरूर देखोगी टरेसा।—याद है न तुम्हें वह लड़का ?'

'चार-पाँच वरस की बात क्या याद रह सकती है, खासकर तव जव कि हमारे बीच वह दीवार बन कर आया हो।'

'दीवार वह रहा नहीं। लेकिन वह तो तुम्हें बहुत अच्छी तरह जानता है।'

टरेसा ने हँस कर कहा, लड़कों में दिलचस्पी मेरी नहीं डीयर। नोरा की हो सकती है। लेकिन अगर वह नोरा के हत्थे चढ़ गया हो तो छुटकारा कठिन है। हुआ क्या है उसे ?'

'वह गए कई दिनों से घर से गायब है।'

'पुलिस में रिपोर्ट नहीं की ?'

'उससे लाभ क्या होता ? अब तो वह वालिग भी हो रहा है।'

'तो फिर ?—वालिग क्या कोई जीवन भर माँ की गोद में पड़े रहने के लिए होता है ? टेल दैट गर्ल—आइ मीन, क्या नाम बताया था डीयर ?'

'तमसा······'

'कितना प्यारा नाम है ?—और टरेसा से मिलता-जुलता भी है न ?—मेरी ओर से तुम उनसे कहना कि बालिग है वह तो किसी माँ की गोद में नहीं, बल्कि किसी सोलह-साला लड़की की गोद में मुँह दुबकाए बैठा होगा। अब लौटेगा तो वहू के साथ ही लौटेगा।—पता लगाया, किन लड़कियों के साथ रब्त--जब्त था 'उसका ?—पढ़ता रहा हो तो सहज उसके स्कूल-कॉलेज से पता लग सकता है।'

'पढ़ता था कॉलेज में, पर अब कुछ दिनों से छोड़ दिया है। कहीं नौकरी करता है शायद। रही तमसा की बात, सो तुम नहीं जानती मां का दिल कैसा होता है ?'

'माँ नहीं हूँ, सो क्या अपनी इच्छा से ? चलो, यह सुविधा तुम्हीं कर दो, तुम्हारे बच्चे की माँ बनने में गौरव ही अनुभव करूँगी।–लेकिन, नहीं। मजा कहीं है डीयर। डोंट टेक इट सीरियसली। माँ बनी नहीं, पर हूँ तो किसी माँ की बेटी ही न। नहीं सुनाई थी अपनी माँ की क्या मैंने ?'

सिगरेट को एशट्रे में रखकर महेश्वर ने कहा, 'मानना पड़ेगा कि सब माँएँ एक धातु की नहीं होतीं तमसा के बारे में कुछ कहूँ तो कहोगी अतिशयोक्ति कर रहा हूँ। मजेदार बात यह कि किसी स्कूल का उसने मुँह नहीं देखा, अंग्रेजी शायद वह कुछ नहीं जानती। दूसरों के घर का खाना बनाकर और दूसरों के कपड़े सी–सीकर मजदूरी करके उसने अपना और अपने पुत्र का पेट पाला है और इसी बल-बूते पर अपने प्राणों से प्यारे पुत्र को उसने कॉलेज तक की शिक्षा दिलवाई है। आँखों से देखे बिना ऐसी बातों पर विश्वास नहीं होता। मैं स्वयं भी इन तथ्यों पर जम कर बहस कर सकता हूँ, पर यहाँ हार गया हूँ।'

'आइ कैन सी दैट।–अच्छा, माँ के रूप में उसका व्यवहार कैसा है ?'

'जितना कुछ मैं समझ सका हूँ, एक तरफ तो वह बड़ी इमोशनल है, लेकिन अपने आपको इंटलेक्चुअली रेश्नलाइफ करने से भी नहीं चूकती। शायद इसी कैंची में उसका मन कटता जा रहा है।'

'तुमने कहा न कि वह लड़का मुझे खूब जानता है ?'

'खूब से मतलब यह कि तुम्हारा नाम टरेसा है और तुमसे मेरा सम्बन्ध है। उसके कुछ साथी हैं शायद, वे तुम्हें और अच्छी तरह जानते हों।–सत्यप्रकाश उनके दल में बाद में मिला है।'

'सत्यप्रकाश ?–यही क्या तमसा देवी के पुत्र का नाम है ?—छरहरा बदन, लम्बा चेहरा, कड़ेपन की झाँई लिए गोरा रंग, उभरी हुई नीलाभ आँखें···'

'देखा है तुमने उसे ?—सत्यप्रकाश है उसका नाम···'

'नाम शायद ऐसा ही कुछ है।—क्या वह इस ब्यूटी पार्लर से भी सम्बन्धित है ?'

सो तो तुम्हीं कह सकती हो। नोरा के चंगुल में फँसे लड़के तुम्हें मालूम ही होंगे। यह भी उनमें है क्या ?

'उसके मित्रों को पहचानते हो ?—एक किसी का नाम मँगरू हो···'

'अरे हाँ। मैं तो भूल ही गया था। यही तो है वह लड़का जिससे उसकी मारपीट हुई थी सिनेमा हाउस में टिकिट बेचते समय।—क्या सचमुच तुम्हारी नोरा के हत्थे चढ़ गया वह ?'

'नहीं, नोरा नहीं। वह तो उस मंगरू के पीछे दीवानी है। पर उसकी एक लड़की का जिक्र किया था न, सोलह-सत्रह की ? अगर सत्यप्रकाश वही हो तो, तुम्हारी तमसा देवी की बड़ी मुसीबत होगी।'

'उसका पता है तुम्हें ? कहाँ है वह ? कुशल से है न ? तमसा को तुम सचमुच प्राणदान दोगी टरेसा !'

'पता नहीं इस समाचार से उन्हें तसल्ली मिलेगी या परेशानी। और अगर यह लड़का वह न हो ? बेकार मानसिक चिन्ता बढ़ाने से लाभ ? बेकार की परेशानी तुम्हें भी क्यों हो ?'

'तुम जो कुछ जानती हो, बेझिझक कहो टरेसा। इस अनिश्चय में ही क्या कम परेशानी है ? कहाँ है वह ? क्या अभी नहीं मिला जा सकता उससे ? नोरा की वह लड़की पार्लर में ही तो होगी !'

'रहते वे यहाँ नहीं हैं। लड़की हो भी, पर लड़का तो—क्या कहूँ डीयर, वह जेल में है।'

'जेल में ? कहती क्या हो ? भगवान के लिए मजाक छोड़ो !'

'कहा न मैंने, शायद यह लड़का वह न हो।'

महेश्वर ने जैसे नहीं सुना। बोला, 'तो तुम यह भी जानती होगी कि वह जेल कैसे गया ?'

'जानती हूँ। लेकिन सारी बात गोपनीय रखी जा रही है। मामला बड़ा नाजुक है। तुमसे कहने का मतलब यह होगा कि बात तमसा देवी के कान में जाएगी। उनसे अभी न कहो, तो भी मामला वीनस ब्यूटी पार्लर से सम्बन्धित हो गया है। नोरा की लड़की को देखा तो होगा तुमने ?'

'मुझे खयाल नहीं है।'

'पूरी बात मुझे भी नहीं मालूम। पार्लर और खासकर नोरा के व्यक्तिगत मामलों में मैं कोई खास रुचि नहीं लेती। हिसाब-किताब भर देख लेती हूँ अपने मन के सन्तोष के लिए, वाध्यता कुछ भी नहीं है।'

'मैं जानता हूँ!'

'निम्फो तो है, पर साथ ही लालचिन भी बड़ी है यह नोरा। अपनी लड़की को बिजिनेस में तो जरूर नहीं घसीटना चाहती पर उसकी सुन्दरता का लाभ उठाना चाहती है। यह लड़का उस लड़की क्लारा की मुहब्बत का रोग ले बैठा है। यहाँ तक तो ठीक है, पर वह लड़की भी उस लड़के की चाहत का रोग ले बैठी है।'

'यानी सत्यप्रकाश के लिए उस बंधन को तोड़ना बड़ा कठिन है। कैसी है यह लड़की?'

'उसकी माँ से अधिक सुन्दर, और स्वभाव में उससे विपरीत। मिशन स्कूल से शायद सीनियर या जूनियर कैम्ब्रिज कर लिया है। लड़का कहीं किसी मिल में टाइमकीपर की नाइट शिफ्ट में काम करता था। दोनों ने मिलकर शायद नोरा से ब्याह की परमिशन माँगी होगी तो उसने पाँच हजार का दाँव लगा दिया लड़की पर।'

'कहती क्या हो? अपनी लड़की पर दाँव? उसकी खुद की लड़की है?'

'लड़की अगर खुद लड़के के प्रेम में न फँस गई होती तो नोरा पाँच क्या पचास हजार का दाँव लगा सकती थी। लड़की है इस काविल। इसके अलावा, और भी कुछ हो सकती है उसकी चाल। लड़की के बहाने ही सही, यह लड़का भी कम दिखनौटा नहीं है।'

महेश्वर ने कुछ सोचकर कहा, 'यानी पैसा न जुटा सकने से लड़के ने कुछ वायलंस कर डाला?'

'नहीं डीयर, वह पाँच हजार पैदा करने में सफल हो गया!' और वह खाली कप से खेलने लगी।

'मिल में टाइमकीपर की सर्विस······क्या, कहना चाहती हो उसने चोरी की कहीं?'

'पूरा किस्सा तो नहीं जानती। पर सुनती हूँ पेपर्स में भी तो वहुत कुछ छपा था। देखा नहीं?'

'मैंने ध्यान नहीं दिया। तुम कहो न जितना कुछ जानती हो।'

'तलब बँटने का दिन था शायद। और इस लड़के ने उस क्लर्क को चाय के बहाने काफी देर तक उलझाए रखा। फिर योजनानुसार बार में शराब पिलाई और सिनेमा के बहाने उसे दूर ले जाकर राह में ही हलका कर दिया।'

'तब तो उसके साथ और भी साथी होंगे। क्या वह स्वीकार करता है कि सब कुछ उसने किया ?'

'स्वीकार न किया हो, पर पुलिस ने जब हिरासत में ले लिया है तो डंडे के जोर से स्वीकार कराते देर ही क्या लगती है ?'

'डंडे के जोर से तो पुलिस निर्दोष को भी दोषी बना देती है। पैसा मार लेने के लिए खुद वह क्लर्क भी तो इस तरह लुट जाने का झूठा बहाना गढ़ सकता है। और भी किसी को लिया है हिरासत में पुलिस ने ?'

'क्या पता ? वैसे कहा तो यही जाता है कि उस क्लर्क को फुसलाया इसी लड़के ने था। पुलिस को होटल या शराबघर से गवाही जुटाने में क्या मुश्किल होती है ?'

'रकम उस लड़के के पास बरामद हुई ?'

'वह कैसे होती ? जहाँ पहुँचना चाहिए था वह तो वहाँ पहुँच गई !'

महेश्वर ने टरेसा के मुँह पर खेलती हुई मुस्कान की ओर ध्यान नहीं दिया। उसे तो मानों सघन-अघोर जंगल में दीए की टिमटिमाती लौ दीख गई थी और अन्धकार होने के पहले ही दौड़कर उसका मन वहाँ पहुँच जाना चाहता था। बोला, 'इतने बड़े साहस का कार्य सत्यप्रकाश के लिए सम्भव नहीं है।'

'अच्छा है कि वह सत्यप्रकाश न हो। लेकिन डीयर, अगर तुम्हें कहीं प्रेम का रोग लगा होता तो समझ सकते कि पाँच हजार तो क्या जीवन को ही दाँव पर लगाने का साहस प्रेमी अनायास कर गुजरता है। प्रेम की चौखट पर दुनिया की सारी शराफत चौपट हो जाती है। देअर्स नथिंग अनफेअर इन वॉर एण्ड लव्ह।'

'टरेसा...'

'कहो। रुक क्यों गए ?'

'तुमने कहा न, मुझे प्रेम का रोग नहीं लगा ?'

'कहो तो सौ बार कह सकती हूँ ! तुम क्या जानो पीर पराई ?'

'जानता हूँ टरेसा। और अगर यही लड़का हो तो इम्तिहान भी दे सकता हूँ।'

'लड़के को तुम्हें दिखाया जा सकता है।'

'कैसे ?'

'नारी की मोहिनी से। उस थाने का एक जूनियर इंस्पेक्टर मेरा मित्र है।'

'तो उठो। अभी चलें। अय बॉय, बिल ले आओ, जरा जल्दी।'

'लेकिन अभी ? इतनी रात को ? अगर उस इंस्पेक्टर की अभी ड्यूटी न हुई ?'

'तुम्हारी रूप माधुरी तो रहेगी ड्यूटी पर । उससे प्रभावित न हो ऐसा माँ का लाल पैदा नहीं हुआ ।'

'क्यों वनाते हो ? एक ऐसे माँ के लाल क्या तुम्हीं नहीं हो ?'

'मैं ? तव मैं यहाँ आया ही क्यों था ? लड़के की बात तो बाद में खुली है ! और प्रभाव छाए हुए भी हों मुझ पर, उससे यह कैसे हो गया कि तुम्हारा प्रभाव नहीं होगा ? आज की गर्ज ही तुम्हें दिखाई दी है ?'

'बहस क्यों करूँ ? मुँह की बात मान लेने की ही मेरी शिक्षा रही है । ठीक है, अभी चलें हम, लेकिन अगर वह लड़का सत्यप्रकाश ही हुआ तो क्या करोगे ?'

'उसे बचाना होगा ।'

'वह मेरी रूप माधुरी कर सकेगी इसमें सन्देह है । मैं खुद भी तो इसी तरह प्रताड़ित हो चुकी हूँ । तब मुझे बचाया था तुमने । उसे बचाने के लिए कम से कम पाँच हजार का प्रबन्ध तो करना ही होगा और जो रुपया नोरा के हाथ में पहुँच गया हो, वहाँ से वह निकल सकेगा, इसमें भी सन्देह उतना ही बड़ा है ।'

'तुम्हें पक्का विश्वास है कि रुपया नोरा को मिल गया है ?'

'उनका एंगेजमेंट तक हो चुका है । क्लारा की अँगुली में अँगूठी मैंने खुद देखी है ।'

'इस एंगेजमेंट को भी तोड़ना होगा तब ।' बेअरा आया तो उसे पाँच का नोट पकड़ाया महेश्वर ने ।

टरेसा ने कहा, 'यानी, वच्चों का दिल तोड़ोगे ?'

'जीवन को टूटने से तो वचाना होगा । पर पाँच हजार रुपए···मेरे पास तो कभी एक माह की तनख्वाह के अलावा एक पैसा भी अधिक नहीं रहा । उधार भी कौन देगा इतनी बड़ी रकम मुझे ?'

'बीमा नहीं है तुम्हारा कोई ?'

'वीमा ?' हँसकर महेश्वर ने कहा, 'बीमा किसके लिए ? पगली, वीमा मरने वाले के लिए तो होता नहीं, वह होता है पीछे बचे रहने वालों के लिए । मेरे तो आगे-पीछे कहीं कोई नहीं है । अपने कार्यालय में ऋण के लिए आवेदन करूँ, किन्तु वहाँ से स्वीकृति आए तब तक क्या पुलिस उसे बख्श देगी ? और ऊँचा सूद देकर किसी तरह इसका प्रबन्ध भी करूँ तो भी उसकी माँ खिस्टान लड़की से उसका विवाह कभी सहन नहीं कर सकेगी ।'

'और तुम ? तुम भी सहन नहीं करोगे ?'

'कर लूँ, किंतु टरेसा, तुम जानती ही होगी, हिंदुओं में विवाह एक सामाजिक कृत्य होता है व्यक्तिगत नहीं। किसी विधर्मी वहू को लेकर समाज में रहना कितना कठिन है तुम नहीं जानती।'

'और अगर उसका विवाह हो चुका हो ? असंभव नहीं है। तब उसकी माँ क्या करेगी ?'

झुँझलाकर महेश्वर बोला, 'कुछ अक्ल काम नहीं करती, सोच नहीं पाता क्या होगा ?'

'कुछ तो सोचना होगा, और देखती हूँ, कुछ करना भी होगा, उसके लिए न हो लेकिन तुम्हारे लिए। पर सामाजिक कृत्य ही क्या इसीलिए व्यक्ति को उसका मूल्य अपने जीवन से चुकाना होगा ? व्यक्ति की रुचि, उसके सुख-दुःख, क्या इनका कोई महत्त्व नहीं ? सामाजिक कृत्य, पर उसका दायित्व तो कभी समाज नहीं उठाता। और तुम्हारे मत का महत्त्व न हो, यह मैं नहीं मान सकती।'

'फिर अभी तो सवाल है लड़के को किसी तरह बचाने का। ब्याह हो भी गया हो तो यह समस्या बाद की है। अच्छा टरेसा, कोई ऐसा व्यक्ति तो होगा जो तुम्हारी जमानत पर मुझे यह कर्ज दे सके ? सूद जो वह चाहे मैं दूँगा। यह हक मैं उसे दूँगा कि सीधे मेरे वेतन से हर माह किश्त की अच्छी रकम उसे मिलती रहे जब तक कि कर्ज मय सूद बेबाक न हो जाए। जरूर तुम्हारे प्रभाव में ऐसा व्यक्ति होगा !'

'जो हैं वे जमानत नहीं, मेरा रूप और यौवन चाहते हैं। और पाँच हजार अब कौन देगा इनका ?'

महेश्वर को कोई उत्तर नहीं सूझा, टरेसा भी मुँह बाए ताकती रही। समय हो चुका था। इक्के-दुक्के लोग ही रह गए थे कॉफी हाउस में। लंबी साँस लेकर महेश्वर ने कहा,

'जो कुछ हो, उस लड़के को एक बार देख तो आएँ कि वही है या कोई दूसरा ?'

'समय कुछ और हो लेने दो। पुलिस थाना तो चौबीसों घंटे खुला रहता है, बल्कि ऐसे कारनामों में सक्रियता रात को ही होती है। और फिर कुछ उपाय तो खोज लेना है। अगर लड़का वही हुआ ?'

महेश्वर ने मुस्कराकर कहा, 'तुम्हारी सहेली यह नोरा दे सकती है कर्ज ?'

टरेसा ने भी मुस्कराकर कहा, 'बुलाया भी तो है तुम्हें। लेकिन क्या उसे इतनी भोली समझा जा सकता है कि रुपया भी खो दे और लड़की भी? आवश्यकता उसे तुम्हारी उतनी नहीं, जितनी एक पुरुष की है, फिर चाहे वह मँगरू ही हो।'

'तो फिर सत्यप्रकाश का मार्ग तो है। प्रेम के मामले में उसे ही मेरा गुरु होने दो।'

'यानी,...जो खतरा उसने उठाया है, वही तुम उठाना चाहते हो?'

'क्या हर्ज है? वह बच तो जाए। तुमने मेरे प्रेम को ललकारा भी तो है। पुलिस स्टेशन जाकर क्या यह नहीं कह सकता मैं कि सत्यप्रकाश ने नहीं, उस पे क्लर्क को मैंने लूटा है।'

टरेसा ने पानी का गिलास होंठों से लगा लिया यद्यपि प्यास उसे नहीं थी।

महेश्वर ने कहा, 'उसकी माँ के संतोष के लिए, लगता है, मैं कुछ भी कर सकता हूँ टरेसा, और उस लड़के को बचाए बिना उसकी माँ को चैन नहीं मिल सकता।'

गिलास को हाथों से सहलाती हुई टरेसा बोली, 'यानी उस औरत का चैन ही तुम्हारा चैन है। अच्छा, अपने प्रेम का इम्तिहान रहे अभी। जरूरत हुई तो पाँच हजार का इंतिजाम मुझ पर रहा।'

महेश्वर उल्लास से उठ खड़ा हुआ और बोला, 'सच? सूद जो कहोगी वह दूँगा टरेसा। सात हजार का प्रोनोट लिख दूँ? हाउ डीपली ग्रेटफुल यू मेक मी इंडीड डार्लिंग!'

'नहीं, सूद नहीं। बल्कि शर्त यह है कि यह रकम तुम मुझे वापिस नहीं लौटाओगे।'

'क्या मतलब? भीख देना चाहती हो टरेसा?' और वह फिर कुर्सी पर बैठ गया।

'यह मेरी स्पर्द्धा नहीं है, सिर्फ तुम्हारे प्रेम की पूजा। शर्त एक और है, अगर उन दोनों का प्रेम सच्चा और गहरा है तो उसमें कोई बाधक न बन पाए, उसकी माँ भी नहीं।'

'इसके लिए तो प्रयत्न करने का ही वादा कर सकता हूँ डीयर। और कुछ?'

'यही कि यह पूजा मेरी तुम्हारे प्रति है। किसी को, तमसा को भी नहीं मालूम होने पाए कि इसमें मैं कहीं हूँ।'

महेश्वर ने टरेसा का हाथ अपने हाथ में ले लिया और अपने गाल पर लगाकर बोला, 'अगर इस रकम को मैं कभी लौटाऊँ तो तुम्हारी समझ कर नहीं, उऋण होने के लिए तो हर्गिज नहां। वह लड़का न हो और तुम्हें कुछ देना न भी पड़े तो भी तुमने ऐसा बाँध लिया है मुझे कि अपना स्वार्थ मुझे तुमसे अलग नहीं लगता।'

'बाँध कहाँ पाई?—नहीं, लौटाने का नाम लोगे तो देने को मेरे पास कुछ नहीं है।'

'लेकिन क्यों?—क्या तुम सोचती हो कि मेरी कभी इतनी-सी हैसियत भी नहीं होगी?'

'तुम्हारी हैसियत आज भी बहुत बड़ी है। लेकिन इसे मैं अपने प्रेम की छोटी-सी निशानी बनाना चाहती हूँ। मेरे पास अपना है ही क्या। दूसरों के साथ प्रेम का खिलवाड़ करके मैंने पैसा कमाया है, मजाक हुआ तो उसी का। इसी पैसे के लिए तो छल-कपट करती रही हूँ। आज अगर किसी के गहरे प्रेम का मैंने प्रमाण पाया है तो अपने सच्चे प्रेम की अनुभूति भी पाई है।—आज से……नहीं, चाहकर भी तुम इनकार नहीं कर सकोगे। अब तुम्हारे बिना भी, तुम्हारी इच्छा समझ कर मैं उस लड़के को बचाऊँगी, पर वह बचाना होगा तुम्हारे लिए। चलो, उसे देख आएँ।' और उसी तरह महेश्वर का हाथ अपने हाथ में लिए वह उठ खड़ी हुई तो महेश्वर भी उठ खड़ा हुआ।

'इस लड़के की माँ ने मुझ पर अपना कुछ भी स्वत्व नहीं रहने दिया है टरेसा,' महेश्वर कह रहा था, 'बिना कोई अधिकार चाहे यह जो कुछ तुम मेरे लिए कर रही हो, उसकी तुलना माँ की भूमिका से ही हो सकती है। अपनी सन्तान के लिए वह कुछ भी करे इसीलिए तो कि एक दिन उस पर किसी और का अधिकार हो जाए।—और वह सहर्ष अपना अधिकार छोड़ देती है।'

टरेसा ने अपनी दृष्टि छिपा ली। पुलक-कंप से उसका सारा शरीर सिहर उठा था। महेश्वर के हाथ में अपना हाथ दिए कॉफी हाउस से निकली तो मानों मलय-पवन द्वारा खिची जा रही केतकी-गन्ध की तरह मुग्ध-विह्वल थी।

महेश्वर लौटा तो रात आधी से अधिक बीत चुकी थी। थकावट के बावजूद मन पर ताजगी और एक हलकापन छाया हुआ है। सत्यप्रकाश को वह अपनी आँखों देख आया है, और उसकी मुक्ति का उपाय भी हो गया है। मन में जो गए कुछ दिनों से एक तनाव संचित हो रहा था, वह भी आज नहीं है। थाने से लौटकर वह टरेसा के कक्ष में अपनी कृतज्ञता जता आया है। आज उसका एक सर्वथा नया समर्पणमय भाव और रूप प्रकट हुआ है उस पर। अगर वह किसी की

पूजा करता है तो कोई उसकी भी वैसी ही अहेतुक पूजा करती है। जीवन में जैसे एकभाव पूर्णता लाता है वैसे ही दूसरा भाव भी पूर्णता को सार्थकता देता है।

लिफ्ट वन्द हो चुकी थी। कमरे में पहुँचते ही लम्बा होकर पलंग पर लेट जाएगा। तमसा को समाचार देना है वह सवेरे ही देगा। अभी तो वह भी सोयी हुई होगी। रात भर में अन्तर ही क्या पड़ना है?—दर्शन की भी वासना नहीं है, टरेसा ने सारी चेतना छा रखी है।—लेकिन यह क्या? ताली घूम गई है, पर दरवाजा नहीं खुलता। क्या मदन ने भीतर से बन्द कर लिया है? कभी तो करता नहीं वह। नींद से उठा दे कोई उसे तो बहुत बुरा मानता है न।—बहुत देर हुई कहीं इसीलिए तो तमसा ने उसे दरवाजा भीतर से बन्द कर देने के लिए नहीं कह दिया?—तमसा के आने के वाद से महेश्वर ने पहले कभी लौटने में इतनी देर भी तो नहीं की।—बड़ी आहिस्ता से, ताकि तमसा सुनकर अपनी नींद न तोड़ ले महेश्वर ने दरवाजे से होंठ लगाकर आवाज दी, 'मदन?'

वह जानता था कि नींद में मदन जोर से बोलने पर भी नहीं सुनता। पर चारा ही क्या था? कुछ देर राह देखकर आखिर उसने धीरे से किवाड़ थपथपाए और आवाज दी, 'अबे ओ मदन के बच्चे?'

भीतर शायद अध्ययन-कक्ष से उत्तर आया, 'ठहरो, मैं आई।'

महेश्वर का दिल धड़क उठा। इस समय सामना करना होगा? मदन क्या हुआ? रात को तो सामने पड़ने से वह सदा ही बचती आई है, आज तो वह स्वयं उससे बचना चाहता है। सामना पड़ते ही टरेसा से अपना सम्बन्ध तमसा के प्रति मानों महेश्वर को एक अपराध लगता है। इस समय तो टरेसा छाई हुई है उसकी चेतना पर। उग्र न हो तो भी कहीं कुछ गंध ही उसके मुँह से निर्गत हो जाए? क्या आज भी मदन बाहर अपनी मौसी के यहाँ चला गया? पर दरवाजे को हमेशा के मुताबिक बन्द कर देने से ही तो काम चल जाता। क्या आज···भीतर कुण्डी खटकने की आवाज के साथ ही तमसा सामने खड़ी हो गई।

'मदन क्या हुआ? अपने-आप को सम्हाल कर महेश्वर ने पूछा।

'रात की छुट्टी ले गया है। कहता था मौसी ने बुलाया है। आज इतनी देर कहाँ हो गई? कुछ परेशान भी लग रहे हो।' और राह देने के लिए वह दरवाजे से एक ओर हट गई।

'परेशानी?' और मुँह फेरकर भीतर प्रवेश करते हुए बोला, 'एक तो इतनी रात हुई, फिर चलकर भी तो आ रहा हूँ। कुण्डी क्यों लगा दी? वैसे ही दरवाजा भिड़ाकर सो रहती, मेरे पास दुहरी ताली तो है ही। वेकार नींद खराब करनी

पड़ीं।' और जब तक तमसा दरवाजा बन्द करे, वह अध्ययन-कक्ष के दरवाजे पर पहुँच गया। तमसा अपने कमरे की ओर बढ़ जाए तो वह भी अपने शयनकक्ष में घुस जाए।

सामना हो गया है तो क्या सत्यप्रकाश का समाचार अभी सुना दे? इसी बहाने आँखों के सामने तो बनी रहेगी कुछ क्षणों तक। तमसा को लेकर उसकी आँखों की प्यास कभी बुझनेवाली नहीं है। किन्तु मदन नहीं है, सारे फ्लैट में केवल वे ही दो प्राणी हैं। तमसा को अपनी दृढ़ता पर विश्वास है, यदि न होता तो असहाय होकर भी उसके आश्रय में वह न चली आती। दायित्व महेश्वर ने कभी अस्वीकार नहीं किया, कभी करेगा भी नहीं और न ही अपने अंतस् के विद्रोही को सिर उठाने देगा वह।

'क्या सोच रहे हो?'

'अँय?···तुमने कुछ···कुछ पढ़ रही थी क्या?' अचकचाकर महेश्वर ने उत्तर दिया।

'तमसा मुस्कराई, 'दरवाजे में ही खड़े रहोगे?' महेश्वर भीतर हुआ तो तमसा भी भीतर चली आई और बोली, 'कुछ खोए-खोए से लगते हो। क्या बात है?'

कोट को सोफे पर पटकते हुए महेश्वर ने कहा, 'बात, बात तो कुछ भी नहीं है।'

'जरूर कोई बात है। मैंने कुछ कहा तो तुमने सुना नहीं।'

तब तक महेश्वर ने अपने को सम्हाल लिया। जरा हँसकर कहा, 'औरतें यों ही तो प्रिय हो उठती हैं। कुछ देर हो जाए पुरुष को कि स्वयं परेशान हो उठें। मुझे तो महज कुछ अचरज हुआ कि तुमने मदन को रातभर की छुट्टी दे दी। जरूर पहले भी ऐसा हुआ है, लेकिन हमेशा अपने को ताले में सुरक्षित कर रखने के बजाय आज मेरे सामने रात के इस पहर में कैसे पड़ गई? अगर कुछ हो-हुआ गया तो?' और पास कुर्सी पर बैठकर वह जूते उतारने लगा।

'तो तुम जिम्मेदार होगे।' तमसा ने भी सहज भाव से उत्तर दिया।

'मैं, ? खूब! बाघ से कहो कि वह हरिणी का रक्षक बन जाए।' और मुस्कराते हुए कपड़े बदलने के लिए परदा हटाकर अपने शयनकक्ष में घुस गया।

तमसा ने जूते करीने से शू-स्टैंड पर रख दिए। कोट उठाया, तह की और परदे की ओर बढ़ी कि हैंगर में लटकाकर कप बोर्ड में रख दे, किन्तु रुक गई। टेबल के पास कुर्सी की पीठ पर लटका कर खुद भी एक सोफे में बैठती कमरे में इधर-

उधर नजरें फेंकती हुई कि कहाँ कौन-सी वस्तु बिखरी पड़ी उसके हस्तस्पर्श या मानसिक स्पर्श की अपेक्षा कर रही है ?

संध्या से ही उसका भी मन जाने कैसा हो रहा है। क्या आश्चर्य अपने ही व्याकुल-व्यस्त मन की प्रतिच्छाया उसने महेश्वर के मन पर भी उतरी नहीं देखी ? सत्यप्रकाश का अभी तक कोई सम्वाद नहीं मिला, इसके सिवा और उसे चिन्ता हो ही किसकी सकती है ? इसीलिए तो प्रतीक्षा करती रही है कि महेश्वर आए तो पूछे। कुछ नया तो करना ही होगा, इस तरह निष्क्रिय बैठे रहने से क्या हो सकता है ? कभी रात्रि को वह महेश्वर के सामने नहीं निकली, मदन के होते हुए भी नहीं।···महेश्वर सदा ही तो देर से लौटता है। अपने कक्ष से महेश्वर के शयनकक्ष की गतिविधि दिखाई न दे, सुनाई तो देती ही है···यह कल-कल ध्वनि···बेसिन में नल का पानी टपकता है न, अपने कमरे में भी इसी तरह उसे सुनाई देती है। जैसे यह कक्ष बगल में है, उसका कक्ष भी तो उस ओर बगल में है।

दुरभि-संधि, 'अगर कुछ हो–हुआ गया तो ?'···महेश क्या कभी इतना दुर्वृत्त हो सकता है ? अपने पर ही तमसा को इतना विश्वास न होता तो क्या वह यहाँ कभी आती ?–हो ही क्या सकता है ?···महेश···नहीं-नहीं। जो साँप बीस वर्ष से पिटारी में सोया पड़ा है, हवा-पानी के अभाव में क्या जीवित भी बचा होगा ? यह तो सत्य की ही चिन्ता है कि उसका मन कसैला हो उठा है—सत्य की चिन्ता उसके पति की धरोहर है वह। चाहे जितनी क्यों न करे माँ की भर्त्सना वह, माता कुमाता न भवति···पत्नी कुपत्नी नहीं बन जाती है क्या कभी ? पति को ही कुपति होने की कितनी छूट है ?—नहीं-नहीं, उसका पति कुपति नहीं था।–पति-सुख ?··· पागल तो जाकर वह बाद में हुआ···पढ़ा-लिखा, नाक-नक्शा महेश जैसा क्या सबका हो सकता है ?—स्वभाव से संशयालु कितने पति नहीं होते ?···रूपवती भार्या— रूपवान होने से ही क्या महेश उच्छृंखल हुआ है ? पत्नी के लिए तो शत्रु हुआ ही।—उन्होंने तो गढ़ी नहीं थी यह उक्ति। सदियों से चली आ रही है। शत्रु हो सकती है वह पति की ? पागल हो रही है क्या ?—उस रात का वह स्वप्न··· सौंदर्य भयानक तो होता ही है। अभी कुछ समय पहले ही तो दर्पण में देखा था उसने। क्या भयानक नहीं लग रही थी वह ?—बिखरे बालों को जरा कंघी नहीं दिखा देती तो···अन्याय क्या हो गया ?—साड़ी नहीं बदलती तो क्या मैली साड़ी में सामने चली आती ? भद्र समाज में सलीके का ध्यान रखना क्या बनाव-शृङ्गार है ?···सत्यप्रकाश की चिन्ता वह न करेगी तो कौन करेगा ? उसके पति की धरोहर सत्य के लिए ही तो उसके जीवन की सार्थकता है।—क्या नहीं कर सकती वह उसके कल्याण के लिए ?···संतान के विकास में माँ की ही नहीं, बाप की भूमिका

भी आवश्यक होती है। महेश को···बहुत देर नहीं हुई क्या उसे स्नानघर में ?—नल की मुखरता अब नहीं है···स्विच वन्द होने की आवाज तो उसने नहीं सुनी···।

सामने देखा तमसा ने, परदे के पार अँधेरा है। क्या लाइट बुझाकर लेट गया ?—जानता है कि—कैसे नहीं जानेगा ? इधर तो प्रकाश है, खूब तेज पॉवर का बल्व ठीक उसके मुँह पर ही तो जल रहा है। नहीं-नहीं, यह अच्छा नहीं। दर्पण में भी उसने देखा था, प्रकाश उसके मसृण चेहरे पर टिकता नहीं, वह बिखर जाता है, फैल जाता है। वह उठी, और सामने सोफे पर जा वैठी कि प्रकाश अव पीठ पर हो गया है। शायद महेश ने अपने कमरे में रोशनी की ही नहीं थी। दरवाजा खुला रहे तो इधर की रोशनी उस कमरे में भी काफी प्रकाश फैला देती है।—बुलाए ?—नहीं, अच्छा नहीं लगेगा···कोई क्या इतने सहज उसकी अवहेलना कर सकता है ?···और महेश···।

उधर वाथ रूम से बाहर निकला तो महेश्वर दंग रह गया, दरवाजे में परदे की फाँक से स्पष्ट दिखाई देता है। सामने सोफे पर ही तो बैठी है। प्रकाश ठीक चेहरे पर पड़कर शतधा फिसल-फैल रहा है। पूर्णचन्द्र की उपमा—ऊँहूँ, सूर्य का प्रकाश ही तो इस तरह फिसल कर चाँदनी फैलाता है, लुटा देता है जगत को।—क्यों साड़ी के आँचल से अँगुली में गाँठ देती है और खोल देती है ? कौन सी गहरी गुत्थी सुलझाई जा रही है ?···ऐसे सौन्दर्य को तो वह खोजता रहा है कि आँखें जुड़ा जाएँ।—इस जन्म से ही क्यों, लगता है जन्म-जन्म से वह इस अतृप्त प्यास को ढोए आ रहा है···कुटिल कटारों की छाया के नीचे इन निर्मम घनी बरौनियों के बीच लहलहाते समुद्र से डरकर कौन यक्ष डूबने से हिचकिचाएगा ?—कौन शाप ऐसा भयानक है कि इस वरदान से उसे विरत कर दे ?—ये अधर···समुद्र से प्यास नहीं बुझती, प्यास बुझाता है झरना। मन को शीतल छाया, तृप्ति और आकांक्षा भी देता है, उसकी मर्मर ध्वनि कानों में रस उड़ेलती है···मर्मर, ये मर्मरी बाहें !—रस के इस लहलहाते तट पर पहुँचकर भी क्या प्यासा लौट जाना ही बदा है ?—तीर पर कैसे रुकूँ मैं, आज लहरों में निमंत्रण ?—अभी नहीं तो फिर कभी नहीं महेश्वर।···क्यों ? प्रकाश सहन नहीं होता ?···यह छाया किरणों के मार्ग की वाधा कहाँ है ?—चेहरे की कांति से क्या प्रकाश ही मैला नहीं हो उठा है ?—नहीं तो, इस सारे समारोह की सार्थकता ?

महेश्वर देवता नहीं है, नहीं है। तमसा ही क्या मानवी नहीं है ?···पिघली आग का जो शोला उसकी रगों में बह चला है, नारी होने से ही तमसा की रगों में क्या वह पानी वनकर बहेगा ? चेहरे पर तब यह रूप की आग क्यों है ? दृष्टि में यह लपलपाती लपटें—नहीं, दिव्यात्मा कहीं हो, यह मांसल भूख क्या किसी माँ के

जाये को शान्त निष्क्रिय बैठने देगी ? आज वह अभी तक वैठी है। क्या पता··· अधिक असमंजस किसलिए ? विचार बहुत हो चुका है, आज अविचार ही सही··· आज नहीं तो फिर कभी नहीं······।

'महेश।' और तमसा उठ खड़ी हुई।

परदा हटाकर महेश आगे कदम रख रहा था। तमसा ने चेहरे पर मुस्कराहट लाकर कहा, 'तुम कह रहे थे न कि बाघ हिरणी का···।'

'हाँ तमसा। हरिणी को सामने करके भूखे बाघ से रुके रहने की दुराशा कहाँ तक की जा सकती है ?'

—और इसके पहले कि तमसा कुछ समझे महेश्वर ने आगे बढ़कर उसे बाहुमूल से पकड़ लिया। तमसा सम्हल न सकी, वह उसके सीने से आ टकराई। अधरों से अस्फुट निकला, 'म्–महेश यह क्–क्–क्या···।' आगे वह कुछ बोल नहीं पाई। उसके चेहरे पर यह कोई झुका आ रहा है, उसने आँखें बन्द कर लीं।

क्षीण कटि को महेश्वर ने बाएँ बाहु से घेर लिया, और दाहिने से चिबुक को उठाकर चेहरा ठीक अपनी आँखों के सामने कर लिया। कोई प्रतिरोध तो नहीं है—दृष्टियाँ टकराईं—क्या नहीं है उस निमीलित दृष्टि में ? पलकों की ओट से झाँक रहे हैं, वे भेड़िये ही तो हैं, खूँखार—पर कौन किसकी परछाईं है ? मुँद गई हैं दृष्टियाँ। प्रश्वास कुछ शब्द गढ़ पाएँ उसके पहले अनुभव हुआ कि तमसा के अधरों पर आग के दो अंगारे आ टिके हैं, आग की एक लौ गलकर गले को चीरती हुई सारे शरीर में बह गई है। बदन पर अभी छिटके टैल्कम पाउडर की मीठी गंध के साथ बरसों की भूली नरमांस की तीखी कसीली गंध ने मिलकर नाक ही नहीं, सारे रोम-रोम को झकझोर डाला है। किसी अगोचर–नेपथ्य से वंशी–ध्वनि के स्वरों-सा, वासना-व्याकुल नर का जीवन्त-परुष प्रश्वास कर्ण-कुहरों ही में नहीं, रक्त की प्रत्येक शिरा को झंकृत कर रहा है··· और यह स्पर्श ? किसी सड़े घाव पर छिड़के हिम-लेप की तरह उसकी मज्जा को भेदकर अस्थियों में जा रहा है। क्षण भर में ऊपर की छत विलीन हो गई और अनन्त-अछोर, नक्षत्र-लोकों से जगमगाते महाकाश का समारोह कहीं मुखर हो उठा। पैरों के नीचे फर्श किस पाताल में समा गया है ? कमरे की दीवारें क्या हुईं ? वह शून्य में ऊपर उठती जा रही है या महासागर की गहराई में धँसती जा रही है ?···कुछ नहीं, कहीं कुछ नहीं है। सारी सृष्टि का अनवरत संगीत एकबारगी ही थम गया है। वह नहीं है, महेश नहीं है—है केवल एक विशुद्ध चेतन, चेतना-अस्तित्व-अनस्तित्व से परे, जन्म-मृत्यु से हीन, स्थान-काल से दूर, भाव-अभाव से अस्पर्श्य।

प्रतिरोध नहीं मिला तो तमसा की पीठ पर महेश्वर के दाहिने हाथ की मछलियाँ तन गईं। मांसल शरीर की गोलाइयाँ पुरुष-वक्ष को छूकर उसकी वासनाग्नि में घी बनती गईं। वज्र-पुरुष, रक्त और मांस का दबाव, तमसा की साँस तो रुद्ध हो ही गई थी, अब तो उसकी हड्डियाँ भी चूर-चूर हो जाएँगी। यह निश्चलता, तो महेश्वर को शंका हुई कि कहीं वह निष्प्राण-निश्चेत मांस के निरे पिंड को ही तो नहीं अपनी देह से सटाए हुए है ?

तभी पिटारी का ढक्कन ठेलकर मानों कोई भयानक नागिन अकस्मात् फन फैलाकर फुंकार कर उठी—महेश्वर की पसलियों के नीचे बिजली कौंध गई। पाश शिथिल हो गया, तिलमिलाकर उसने चेहरा उठाकर देखा, तमसा के अधरों पर फेन जमा हो गया है। वह सम्हले उसके पहले तमसा ने वह सारा फेन उसके मुंह पर थूक दिया और दोनों हाथों से उसे ठेलते हुए फुतकार कर किसी तरह बोली।

'यह त् त् तुम महेश···' और लम्बे प्रश्वास से आग की लपटें फेंकते हुए वह बाहर जानेवाले दरवाजे पर जा खड़ी हुई।

'तमसा···' क्या कहे वह, कुछ समझ नहीं पाया।

'इसीलिए आश्रय दिया था तुमने मुझे अपने यहाँ ?'

बोलने को रह क्या गया था महेश्वर के पास। लेकिन वह आगे बढ़ा तो तमसा गर्ज उठी, 'खबरदार ! एक कदम आगे बढ़ाया तो। अभी छलाँग लगाकर मैं अपना जीवन दे दूँगी', 'और उसने अपने पीछे गैलरी की ओर देखा, 'बचाए रखने की जगह कहाँ छोड़ी है तुमने ?'

'नहीं–नहीं तमसा, मेरी बात सुने बिना···' और दोनों हाथ फैलाकर उसने तमसा की राह रोक ली।

'सुनने को रह क्या गया है ?—सोचा था कि रक्तपान को उद्यत भयानक भेड़ियों से भरे इस वातावरण में कहीं तो एक देवता है।–पूजा का एक ही पुष्प तो पास है, धूल और पाप की कालिख से उसे बचाए रखना चाहती थी।—यह सम्भव नहीं रह गया तो यही सोचकर मन मारे बैठी थी कि जैसा कुछ रह गया उसे ही चरणों में निवेदित कर छुट्टी पा लूं, किन्तु···किन्तु···'छाती से उफनती हुई रुलाई ने उसके कंठ को कील दिया, फड़कते हुए होंठों की सम्पुटि विकृत हो उठी, भरी हुई आँखों के किनारे फूट पड़े। शिथिल होकर फर्श पर वह क्या बैठी, जैसे बरसों तक अविश्रांत प्रवाह के थपेड़े खाकर प्रखर धारा के किनारे कोई वृक्ष अन्धेरी रात में उखड़ कर धराशायी हो गया।

और हाथ फैलाए महेश्वर के मानस पर विमूढ़ता—दिग्विमूढ़ता, कर्तव्य–

मूढ़ता छाती जा रही है, भयानक शीत में जैसे किसी तालाव पर छाकर घना कुहरा सब कुछ धुँधला देता है। उसके हाथ आप ही श्लथ होकर गिर पड़े। अपने ही स्वर सुनाई पड़ने लगे मानों उसे—'मैं गलत समझ गया तमसा, जाने क्यों मेरे विवेक को लकवा मार गया। सच कहता हूँ, मेरे मन में पहले से कोई दुर्वृत्ति नहीं थी।······ तुम बोलती क्यों नहीं?——तमसा, तमसा——मुझे दण्ड दो। जो दण्ड दोगी मैं खुशी से उसे स्वीकार करूँगा। कुछ तो बोलो। बोलो न?'—क्या हुआ?——स्वेच्छा से नहीं बैठी?——अचेत हो गई?——छूकर देखे?

लेकिन छूकर देखने का हक रह गया है क्या?—हारकर वह भी नीचे बैठ गया घुटने मोड़कर। वासना की लू वह चुकने के बाद चेहरे पर सन्ध्या की प्रौढ़ शान्ति उभरने लग गई थी, आशंका के उद्वेग से मिलकर एक नया गौरव उसमें उद्भाषित हो रहा था। तमसा बायाँ हाथ फर्श पर टिकाकर घुटनों से पैर पीछे मोड़े बैठी थी। दाहिना हाथ झुके हुए कपाल को थामे सिर को और नीचे लटकने से बचा रहा था। बीते हुए तांडव में बिखर गए केशपाश की कुछ लटें वक्ष के स्पष्ट उभार को चूम रही थीं। यद्यपि ब्लाउज के एक-दो बटन टूट गए थे, लेकिन नई काट की तंग चोली तो नहीं थी न, पर अप्रतिहत उन्नत-वक्ष का उभार सारी सीमाओं को परास्त कर सिर उठाए हुए था। शायद इसीलिए उनके बीच की उपत्यका में तरल होकर बह जाने का मन का लोभ रुक न पाता, किन्तु महेश्वर की वह चटोर दृष्टि महासमुद्र की अन्धेरी गहराई में डूब चुकी है। उसे दिखाई दे रहा है तो केवल फर्श पर टपाटप गिरते जा रहे आँसुओं में किसी वर्फ की देवी का पिघलता जा रहा अस्तित्व मात्र।

'बोलोगी नहीं तमसा?' कन्धे को पकड़कर मानों महेश्वर ने तमसा को जगाना चाहा। किन्तु स्पर्श का बोध होते ही तमसा सिहर उठी।

'क्यों?——क्या अब भी कुछ बाकी रह गया है?—स्त्री हूँ, अबला हूँ, विधवा-अनाथ और तुम्हारी शरण में आई हुई।—सुनसान रात, चिल्लाऊँगी तो भी कोई नहीं सुनेगा।··· मरना चाहती हूँ किसी भी तरह—गैलरी से कूदकर, बदन पर तेल छिड़क कर—सुविधा दो तो गले में रस्सी लपेट करके भी।——मरने दोगे?—उस रात को सुयोग हुआ था, यदि निष्ठुर बनकर रोक न लेते तो आज यह विडम्बना तो न देखनी पड़ती।—कितनी असहाय हूँ?—जीवन तो दैव ने असम्भव कर दिया था, मृत्यु को तुम असम्भव कर दोगे······कहो, क्या चाहते हो?——निर्वस्त्र हो जाऊँ? इस सहेजी हुई चमकती-चिकनी चर्मकंथा को आँखों में भरोगे? झलक आए रक्त में पके मांस को नोच खाने के लिए जीभ मचल उठी है न?—लो, मन भरकर चबाओ, रक्त-मज्जा-मांस किसी की इच्छा न रह जाए शेष।—और गले को घेरकर

अंगुलियों के नाखून गड़ाओ इतने जोर से कि ये आँखें खुली ही रह जाएँ और साँस समा जाए तुम्हारी मानवता के हाहाकार में, ताकि फिर मुझे संसार में किसी के सामने, सत्यप्रकाश के सामने भी नहीं, यह कलंकित मुँह न दिखाना पड़े।—नहीं कर सकोगे इतना भी ?—लो, साध मत रक्खो कोई मन में।'

—और आँखें बन्द करके उसने साड़ी का पल्ला खोल डाला। ब्लाउज के टूटे बटनों की जगह के खुले किनारों को पकड़ कर एक पैशाचिक उन्माद से उसने खींचा कि सारे बटन तड़ातड़ टूट गए, लगाम टूट जाने से हिनहिना कर मानों दो अश्व अगले पैरों पर खड़े हो गए। तमसा एकाएक ही रौद्र मूर्ति शुभ्र कालिका बन गई।

पर महेश्वर ने मानों कुछ नहीं देखा। उठ खड़े होकर उसने कहा, 'राह दिखा दी मुझे तुमने। नहीं, तुम क्यों मरोगी ? जिसने तुम्हें लांछित, कलंकित किया है, उसके हाथ, आँखें, मन मरेंगे। वह मरेगा। गैलरी से कूदकर तो शायद अपंग ही रह जाऊँ, अनंग होने के लिए...' और वह पीछे दरवाजे की ओर बढ़ा। किन्तु उससे भी प्रचंड वेग से तमसा उठी। साड़ी फर्श पर बिखर गई, उन्मुक्त वक्षप्रान्त, उन्मुक्त केश और प्रकोष्ठ का उन्मुक्त आलोक, लपककर उसने दरवाजा रोक लिया। उसे ध्यान न था कि वह अर्द्धवसना हो गई है, उठते-पड़ते गम्भीर प्रश्वास की तरंगों में उसके वक्ष पर दो नावें तूफान में सिर धुन रही हैं। आँखें फाड़कर गुर्राई तमसा,

'शरीर पर रक्त छिड़क कर शहीद हो जाना चाहते हो ?—कि मुँह दिखाने लायक न रहकर जीवन भर अकेली इस अभिशाप में जलती रहूँ ? पहले मैं जलकर भस्म हो लूँ—चिल्लाऊँगी नहीं बिलकुल। फिर तुम चाहो तो जल जाना कोई तुम्हें रोकने नहीं आएगा।'

महेश्वर निस्तेज होकर फर्श पर बैठ जाने को उद्यत हुआ किन्तु सिर थामकर पास सोफे में ढह गया। फिर लम्बी साँस लेकर मानों अपने-आप को सम्बोधित कर बोला, 'चरित्र की बेगार ढोने का बहाना मैंने कभी नहीं किया तुमसे भी। पर आज तो यहाँ आते समय वैसी कोई भूख थी ही नहीं। मन भारमुक्त, निश्छल कर आया था, देर किसी दुर्वृत्ति के कारण नहीं की। मदन को तुमने छुट्टी दे दी यह भी कोई नई बात नहीं। किन्तु...रात को तुम कभी मेरे सामने नहीं हुई। समझता यही रहा हूँ। तब क्यों आज इस जनहीन नीरव रात्रि में तुम मेरे सामने हुई ? क्यों इस कमरे में आकर मेरी प्रतीक्षा में बैठ गईं ? जरूरी काम हो सकता है, पर मर्यादा भूल जानेवाली सामान्य नारी तुम नहीं हो। जो माँ एकमात्र संतान की आसक्ति का मूल्य चुकाकर अपने सोने के खरेपन के विश्वास में आग की लपट में कूद पड़ने

से नहीं झिझकती, उसके लिए कौन-सा काम अपने से बढ़कर हो सकता है? मैं गलत समझ बैठा तुम्हें। चरित्र की दृढ़ता का श्रेय मेरा नहीं है। मक्खन चर आया होऊँ, किन्तु उतने से तो वासना की आग बुझ नहीं जाती। मेरे मन को, सच या मिथ्या, एक ढलान मिल गई, और वह फिसल गया।'

और वह उठ खड़ा हुआ अपने शयनकक्ष की ओर पैर बढ़ाते हुए, 'शरण? मेरे यहाँ तुम शरण लेने नहीं, अपना वरदान देकर मेरी पूजा लेने के लिए अवतरित हुई थीं। दुर्भाग्य मेरा कि मेरी पूजा भ्रष्ट हो गई। देवता कलुषित नहीं होते तमसा, कलुषित होता है पुजारी। हुआ भ्रष्ट या नष्ट, तो मैं हुआ हूँ। मुझ लोहे के स्पर्श से तुम्हारा कंचन क्यों कलुषित होगा। मैं सोना नहीं बन सका, यह मेरा अभिशाप है। तुम स्वस्थ होओ।' और उसने परदा हटाया।

'ठहरो महेश!' महेश्वर के उद्यत पैर थम गए। तमसा दरवाजा छोड़कर आगे बढ़ आई थी, 'तुम्हारे आने पर जो चोर पकड़ा गया अगर वह कहीं मेरे ही अन्तर में छिपकर ··।'

'नहीं। मेरा वह मतलब कभी नहीं है तमसा। अब तो गलत मत समझो मुझे भगवान के लिए।'

'गलत तुम्हें तब भी नहीं समझना चाहा था महेश।' एक लम्बी साँस लेकर बोली, 'सम्भव है चोर मेरे ही अन्तर में पैठ गया हो, और मैं जान भी न पाई होऊँ।' ब्लाउज को खींच-खाँच कर टूटे बटनों की जगह उसने गाँठ बाँध ली थी, शरीर पर साड़ी भी पटक ली थी, 'चोर अगर मन में ही दबा रहे तो मरकर भी शान्ति कहाँ मिलेगी? उस चोर को पकड़ निकालना है, और तुम्हीं तो इसमें सहायता कर सकते हो।—करोगे? अपनी मौत के संकल्प को मैं उठा रखती हूँ।'

'पर क्या अभी वह चोर कहीं जीवित है?'

'तो यह सन्तोष खोजना होगा कि वह जीवित नहीं है। इसके सिवा···।'

'इसके सिवा क्या?'

'तुम्हें वचन देना है, तुम अपने जीवन के साथ कोई खिलवाड़, कोई स्वतंत्रता नहीं लोगे।'

'तमसा।······मुंह फिराकर देखा महेश्वर ने कि तमसा पूर्णतः प्रकृतिस्थ है। तमसा ने भी देखा कि भयानक आँधी और तूफान के बाद महेश्वर के मुंह पर संध्या के निरभ्र आकाश में गहरी नीलिमा छा गई है, तो बोली, 'नहीं, अब और यहाँ नहीं। मेरे कमरे में चलो।'

'सवेरे तक ठहर न जाएँ ? थकावट ही क्यों, आवेश भी पूरी तरह कहाँ लुप्त हुआ है ? तुम्हारी आज्ञा मैंने मान ली। मेरी ओर से निश्चिन्त होकर तुम जाओ, विश्राम करो। यदि भूल सको···पर नहीं, भूलना इतना आसान कहाँ है ? समझ सकोगी क्या कि यह एक दुःस्वप्न के अलावा कुछ न था, कुछ न था ?'

'दुःस्वप्न ?' और तमसा के मन में उस निभृत रात्रि के दुःस्वप्न की विजली कौंध गई। क्या यह प्रमाण नहीं कि चोर उसके घर के निबिड़ कोने में ही छिपा बैठा है ? बोली वह, 'नहीं महेश, आवेश ही हो तो भी इसका शमन करना होगा। चलो, मैं मुँह धो आऊँ।'

□

अस्तित्व या प्रत्यस्तित्व ?

तमसा का कमरा फ्लैट के कोने में महेश्वर के कमरे से जुड़ा हुआ ही है और है भी उतना ही बड़ा, किंतु नितांत निराभरण। इसीलिए काफी बड़ा दिखाई देता है। बीच की दीवार में एक दरवाजा भी है, पर तमसा के आने के बाद से वह सदा ही बन्द रहता है। दरवाजे के बगल में ही दीवार में बनी एक खुली आलमारी है, जिसमें ऊपर के खाने में उसके आराध्य बालकृष्ण की मूर्ति, मुरली थामे एक हाथ को ऊवर उठाए घुटनों के बल चलते हुए, किसी ने अगर उठाने के लिए हाथ फैलाए तो लपक कर गोद में आ जाएँगे। नीचे के खानों में तह किए हुए उसके कुछ कपड़े रखे हैं। इसी ओर कुछ हटकर काठ के एक तख्त पर सफेद चादर से ढँकी चटाई बिछी है। कक्ष में स्थूल स्थान की मानों कोई सत्ता नहीं है। केवल कमरे के बाहर, शयन-कक्षों को घेरती हुई जो गैलरी अध्ययन-कक्ष तक चली गई है, वही उसे बाहर के स्थान बोध से बाँधे हुए है।

कमरे में अपना कोई प्रकाश नहीं है इस समय, किंतु गैलरी का दरवाजा और सारी दीवार में फैली खिड़की खुली हुई है। वहाँ से मानों हवा के पंखों पर बैठकर जाने कहाँ-कहाँ से सार संग्रह करके प्रकाश का एक सूक्ष्म–मसृण–शीतल–झीना आवरण कमरे में घुस आकर पसर गया है। आँखों ही को नहीं, शरीर की समस्त इंद्रियों को वह बोध देता है—उसमें स्पर्श–रस–गंध–रूप के साथ ही मानों स्वर भी है। समय भी इस वातावरण में बहता है तो मानों एक अलग ही नियम से, वरना लगता है वह भी यहाँ आकर स्थिर और स्तंभित हो गया है।

गैलरी में से ही महेश्वर ने एक मोढ़ा खींच लिया था जिसे लेकर वह गैलरी में बैठा हुआ सिगरेट पी रहा था। सिगरेट अब वह हमेशा नहीं पीता, पर आज उसकी सारी नसें ढीली पड़ गई हैं। हाथ-मुँह धोकर तमसा आए उसके पहले वह स्थिर हो जाए इसलिए वह लगातार फूंककर सिगरेट जला रहा है।

सटे हुए बाथ रूम से जब तमसा निकली तो महेश्वर की दृष्टि बाहर फैले धूमिल आकाश में गड़ी हुई थी। तमसा ने मौन भाव से आलमारी के पास जाकर

बालकृष्ण के चरणों में मस्तक टिकाया, वंशी लिए उठे हाथ ने मानों तमसा को आश्वस्त किया तो महेश्वर की ओर मुँह करके बोली, 'मैं प्रस्तुत हूँ महेश,'

'अरे तुम...' और सिगरेट को होठों से छुड़ाकर उसने फर्श पर रगड़ा और नीचे फेंकते हुए बोला,

'मुझे पता भी नहीं लगा। कब आ गई?'

'सिगरेट क्यों फेंक दी? मेरे विरोध का क्या कोई प्रश्न उठता है?'

तमसा तख्ते के सिरे पर बैठ गई तो महेश्वर ने अपना मोढ़ा नजदीक खींच लिया और कहा,

'मैंने तुमको एक वचन दिया है तमसा, एवज में मैं भी एक वचन माँगने का हक चाहता हूँ।'

'पराई स्त्री के लिए क्या वचन देना इतना सहज है?'

'माँ-बहनें पराई स्त्रियाँ नहीं होतीं तमसा। टालने की चेष्टा न करो।' दृष्टि उसकी तब भी बाहर की ओर ही थी। आवाज में सहज दृढ़ता थी। तमसा देखती रही, उत्तर उसने नहीं दिया।

'नहीं देना चाहती हो तो हठ नहीं करूँगा, लेकिन तब मुझे साहस नहीं होगा कि अधिक बैठ सकूँ। विश्वास की पात्रता तो रही नहीं। तो सबेरे मिलूँगा।' और वह उठने को उद्यत हुआ।

'बैठो महेश, कहो, क्या चाहते हो?'

'आज की रात के दुष्कांड के बारे में भविष्य में हम एक भी शब्द मुँह पर न लाएँ, बस। एक दुःस्वप्न समझकर इसे भूल जाने की प्रार्थना की थी अवश्य। पर स्वप्न ही जब भुलाया नहीं जा सकता तो यह तो हकीकत थी। मुझे ही सामने आना हो तो किस मुँह से आऊँगा मैं?—मुझे तो तुमने डूब मरने के लिए भी तो नहीं छोड़ा।—भूलने-न भूलेने पर किसी का अधिकार नहीं है, किंतु वचन पर तो अधिकार है। मन मारकर ही हो, यह वादा तुम्हें निभाना होगा तमसा।'

'लेकिन तुमने जब कहा कि तुम निर्दोष हो तो यह ग्लानि क्यों?—मैं तुम पर विश्वास करती हूँ।'

'मैं बहस नहीं करना चाहता। यदि तुम वादा नहीं करती तो मैं—मैं चलता हूँ। मुझमें साहस नहीं है।'

'मेरी सौगन्ध तुम्हें।——मैं वादा करती हूँ।'

पुनः मोढ़े पर बैठकर महेश्वर ने कहा, 'खयाली भूतों से डरनेवालों में मैं

नहीं हूँ। इससे भी कहीं भयानक भूतों को मैंने अपने मन की चिकनी सतह पर एकदम फिसल जाने दिया है।—तुम्हें लेकर मैं हार गया हूँ।'

तमसा ने एक लम्बी साँस ली और कहा, 'सत्य का कुछ पता लगाया ?—सन्ध्या से ही मेरी दाहिनी आँख फड़क रही थी।'

'दाहिनी तो शुभ होती है न ?' महेश्वर खुश हुआ कि तमसा सचमुच वह विषय भूल जाना चाहती है।

'नहीं। स्त्रियों की दाहिनी आँख फड़कना शुभ नहीं होता।'

'सन्तान बालिग हो जाए तब भी इतनी चिन्ता माँ-बाप के लिए क्या उचित है ?'

'तुम कैसे समझोगे महेश, कि सन्तान माँ-बाप के लिए सदा ही बच्चा है, चाहे जितना बड़ा क्यों न हो ?'

'यही तो गलती है।—चाहे माँ-बाप ही हों, गलती सुधारना नहीं चाहिए ?'

'गलती ?—सन्तान की हित-कामना गलती है ?'

'महत्व कामना का नहीं, बल्कि उसके लिए किए कर्म का, कर्मफल का है।—तुम कहोगी, कर्मफल परमात्मा पर छोड़ दो, पर फल उठाना किसे पड़ता है ? परमात्मा तो कभी पूछने भी नहीं आता, और पिस जाता है भोक्ता कर्मफल की चक्की में।'

'मैं समझी नहीं महेश।—सत्यप्रकाश को क्या कुछ हुआ है ? वह कहाँ है, कैसे है ?—कुछ पता लगा ?' और वह तख्त पर कुछ आगे खिसक आई।

'वह यहीं है और अच्छी तरह भी। पर तुम्हें उसके मार्ग से हट जाना होगा तमसा।'

'हट जाना होगा ?—पर······हट जाऊँगी, पर एक बार उसे क्या सुखी भी वहीं देख सकूँगी ?'

'उसकी और तुम्हारी सुख की धारणाओं में ही अन्तर हो तो ?'—आँखें फाड़े तमसा उसकी ओर अपलक देखती रही तो वही बोला, 'हमारे सारे आदर्श, आस्थाएँ, नीतियाँ, नियम, कानून यह सारी सभ्यता सुख की प्राप्ति के लिए हैं, अपने ही सुख की प्राप्ति के लिए तो। यदि धारणाओं में अन्तर न होता तो इनकी मर्यादाओं को कोई तोड़ता ही क्यों ?—यह अराजकता क्यों फैलती समाज में ?'

तमसा तब भी चुप रही। सत्यप्रकाश बीड़ी-सिगरेट पीता है, शराब भी

पीता है, जुआ खेलता है, पढ़ना–लिखना छोड़कर नौकरी में लगा है। क्या इस असंयम में ही उसने सुख की धारणा बना ली है?

'सुख की धारणा के आगे संयम का कुछ भी महत्व नहीं है महेश?' उसने कहा।

'लेकिन जिम्मेदारी की भावना के बिना संयम कहीं आता है? और इसी जिम्मेदारी को, दायित्व-बोध को तुम छोड़ देना चाहती हो अपने–जाने दो, तुम्हारी भावना को चोट लगेगी!'

'तुम क्या सचमुच ईश्वर को नहीं मानते महेश?'

'ईश्वर हो भी, तब भी यह तो तुम्हें मानना होगा कि उसका अवधारण कर सकने वाली सूक्ष्म चेतना इस सृष्टि में केवल मनुष्य ही को है। और गुरु और गोविन्द दोनों में से पहले पैर किसके लगा जाए यह तो स्कूल न जाकर भी, तुम जरूर जानती हो।'

'लेकिन तब मनुष्य के भले-बुरे की कसौटी क्या है?'

'उसका सुख!—मनुष्य को यदि कर्म करने की स्वाधीनता न होती तो पशु से ऊपर वह विकास क्यों और कैसे करता? कर्म की स्वाधीनता उससे छीनी नहीं जा सकती तमसा। छीनी जाती है तभी विद्रोह होता है, और समाज को, माता-पिता को, स्वयं व्यक्तित्व को भारी कीमत चुकानी पड़ जाती है।—देर–सवेर उसे समझना होगा कि उसका आदर्श, वह स्वयं है, और कोई नहीं, ईश्वर भी नहीं।'

'किन्तु तब क्या उच्छृंलता नहीं फैल जाएगी समाज में?'

'जिम्मेदारी का बोझ बचाएगा उससे। यह गलत दृष्टिकोण का ही तो नतीजा है कि हम जिम्मेदारी को कर्मफल की राह में खोजते हैं, उसे खोजना चाहिए कारण की मशाल के प्रकाश में। दायित्व-बोध तब प्रायश्चित और ग्लानि के डंडे से मनुष्य को कर्मपथ से विरत न करके, आशा और उत्साह का पाथेय देकर प्रेरक बन जाएगा। राह चुनने की स्वाधीनता उसे मिलनी ही चाहिए।'

'इस बहस का अवश्य कोई गहरा उद्देश्य है न? साफ-साफ क्यों नहीं कहते?'

महेश्वर मौन रहा। सारे शहर पर नींद की चादर तनी हुई है, कहीं कोई आहट नहीं। हवा भी फूंक-फूंक कर कदम धर रही है कि सोया हुआ आलोक कहीं जाग न जाए। नीचे नगरपालिका की बत्तियों का प्रकाश भी तंद्राकुल इस ऊँचाई और आभ्यंतरिकता में पहुँच नहीं पाता। आलाप चलता रहे तो सृष्टि की प्रतीति होती है, मौन छा जाए तो साँस की निस्संगता भी हृदय को हूल देती है।

दिगन्त में दृष्टि फैलाकर महेश्वर ने ही मौन भंग किया, 'तुम एक संस्कार-

शील शास्त्रज्ञ ब्राह्मण की विदूषी कन्या हो। मैं क्या रह गया हूँ, मैं खुद नहीं जानता। आत्मा को हम हिन्दू अजर-अमर और शरीर को नश्वर मानते हैं न? पर आजादी के समय देश के जब टुकड़े हुए तो जानती हो? मेरा यह नश्वर शरीर रह गया और वह अजर-अमर आत्मा मर गई, बुरी मौत! जमीन-जायदाद, परिवार-परिजन, केवल ये ही नहीं, लज्जा-प्रतिष्ठा—गैरत-इन्सानियत और संस्कार-परम्पराएँ-निष्ठाएँ, सबको धर्मान्धिता की रक्तरंजित तलवार चाट गई। सुनाऊँ एक कहानी तुम्हें? एक समृद्ध, शीलाचार-सम्पन्न, भरापूरा हिन्दू-परिवार, माँ-बाप और छोटी-बड़ी सात बहनों के बीच आइ० सी० एस० का सपना देखता हुआ एक मेधावी भाई। जहाँ यह सब ऐश्वर्य एकत्र हुआ था, वह भारतवर्ष ही था। लेकिन कौन जानता था कि एक दिन जब गुलाम देश के भाग्य जागेंगे तो उसे हाथ काटकर आजाद कर दिया जाएगा। पलक झँपते वहाँ बन गया पाकिस्तान! जबकि सारे देश के साथ उसके परिवार की दिवाली जलाकर खुश होना चाहिए था, खुद वह परिवार होली होकर जल गया, भभक कर राख हो गया।' उसका स्वर एकाएक ही भावाविष्ट हो उठा। अपने-आप को सम्हालने के लिए उसे रुक जाना पड़ा।

तमसा ने कहा, 'यह कहानी··· ।'

'मेरी भी हो तमसा, तब भी इस अभिशाप का भोक्ता मैं अकेला नहीं हूँ। और अब तो मैं वह हूँ ही कहाँ? वह महेश्वर तो उसी रात परम्परा और रूढ़ि की होली में जलकर राख हो गया। लेकिन जानता सब कुछ हूँ, सहकर जो जाना है। सन्तान के लिए किस तरह माताओं को विवश किया जाता था? माँ के सामने सन्तान की दुर्गति करने में शैतान को कैसा पैशाचिक आनन्द होता है? सात बहनें थीं, पाँच अब भी हैं। जानती हो नातों-रिश्तों का यह धागा शैतानियत के आलम में कितना जल्दी टूट जाता है? और इन्सानियत के आलम में यही कैसी मजबूत बेड़ी बन जाता है? बिना भोगे कोई समझ नहीं सकता। एक बहन स्वेच्छा से मुसलमान हो गई—मानों तब भी स्वेच्छा का कोई अर्थ होता था। दूसरी को बचाने के लिए पिता को शहीद हो जाना पड़ा, पर तब भी वह बच कहाँ पाई? कहाँ है वह आज, कौन जानता है? जीवित है या मर गई नहीं मालूम। शेष बहनों ने जान ही को जहान समझा तो माँ को जान दे देनी पड़ी। क्या करोगी सुनकर कैसे मरी वह? शैतान के भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं, पर मैंने वह भी देखा है तमसा। अगर आत्मा न मर गई होती तो कोई कैसे उस दृश्य को देख सकता था? सबसे छोटी बारह भी पार नहीं कर पाई थी, माँ उसी को छाती से चिपटाए रही। इनकार करने पर शैतानों ने उसे परवश करके बाँध दिया। उसकी आँखों के सामने ही जब एक-एक लड़की को वे बेइज्जत करने लगे तो क्या उससे देखा गया होगा? समझ सकती हो

उस पीड़ा को तमसा ? माँ ने अपनी अँगुलियों के नाखून गड़ाकर आँखें फोड़ लीं, और जब तक पिशाच-लीला सम्पन्न कर शैतान उसकी ओर ध्यान दें, अपने ही हाथों उसने अपना गला घोंट लिया। पूछ सकती हो इतनी निर्मम शक्ति अपने ही नाश के लिए हाथों में क्या आ सकती है ? किन्तु वह तो सारी मानवता का नाश था। उन्माद सन्निपात की अवस्था जानती हो न ? आदमी तब अपने में कहाँ रहता है ?'

महेश्वर रुक गया तो आत्मविस्मृत तमसा का ध्यान टूटा, बोली, 'वे बहनें हैं ?'

'तीन हैं। सबसे छोटी पागल हो गई थी। बड़ी बहन ने इलाज करवाया था, परंतु नहीं बच सकी। एक बहन जच्चाखाने में ही मर गई, कुआँरी ही जो माँ बनने को मजबूर हो गई थी। अन्य बहनों ने जीवन से समझौता किया है।—मरना सरल है तमसा इस युग में, कठिन है किसी तरह जिंदा रह पाना।—जो आदर्श, जो निष्ठा, जो देवता जीवन को जीने योग्य न रहने दें, वे क्या व्यर्थ के भार नहीं हैं ? कब तक कोई उस भार को ढोता रहेगा ?'

तमसा ने पूछा, 'कहाँ हैं वे बहनें ?—जानती हैं कि तुम यहाँ हो ?'

'सबसे बड़ी दिल्ली में अध्यापिका है, और अब तो उसने एक केन्द्रीय उपमंत्री से विवाह भी कर लिया है। नारी-कल्याण के समारोहों का उद्घाटन और सभापतित्व करती है अब तो। दूसरी इन दिनों एक सांस्कृतिक मंडल के साथ अमेरिका गई हुई है। शुरू किया था उसने किसी क्लब की रिसेप्शनिस्ट होकर। रात को एक डान्स स्कूल में पढ़ते-पढ़ते वहीं पढ़ाने लगी थी। तीसरी जरा पीछे है, अभी तो बम्बई में किसी प्रोड्यूसर के दरवाजे पर एक एक्स्ट्रा के रूप में ही दस्तक दे रही है पर जल्दी ही फिल्मी आसमान का सितारा बनकर चमकने वाली है।—नहीं, वे मुझे नहीं जानतीं। मैं जानता हूँ इसलिए कि मानवता के उस थोथे नाटक की यवनिकापात के पहले ही मैं अपनी भूमिका सच समझने लग गया था। उन भेड़ियों के तो किसी काम का मैं था नहीं—एक स्वप्नदर्शी कॉलेज का ग्रेजुएट, जो उनका विरोध भी नहीं कर सकता था। उस काली रात में वह अपने गेराज के ऊपर बने छोटे कमरे में छिपकर एक खिड़की से टुकुर-टुकुर सब कुछ देखता-सुनता रहा। खून न खौला हो सो बात नहीं, मरना ही होता तो उस कमरे में ही शांति से मर सकता था, माँ ने ही राह तो बता दी थी। पर आप ही खून पानी बनने लगा, गोरे-गदरीले जवान मांस-पिंडों को वे बाहों में भरकर उठा ले जाने लगे, मुर्दा लाशें वहीं पड़ी रहीं। माल-सम्पत्ति, जर-जेवर पहले ही लूट-खसोट लिया गया था। रह गया सिर्फ होली का जनून, वह भी वे क्यों छोड़ने लगे ?—उन लपलपाती आग की लपटों के पेट से वह स्वप्नदर्शी युवक जब बाहर निकला तो देखा किसी ने

उसे ही, पहचाना किसी ने नहीं।–नहीं, बहनों को पता नहीं है। उनके लिए तो वह भाई उसी होली से जलकर स्वाहा हो गया।'

'बहनों का पता कैसे लगाया तुमने ?'

'मेरी चेतना जो बची हुई है, और चाहकर भी पीछा जो नहीं छुड़ा सका हूँ उससे ?—रह-रह कर कसक उठती है। कभी तो सह नहीं पाता।—सार क्या है इस मनुष्य का?—आत्मा नहीं, यह चेतना है। शरीर कितने नष्ट हुए उस रात, महत्व इसका नहीं है तमसा। महत्व इस तथ्य का है कि अमरता का भ्रम देने वाली आत्माओं की यह वायवी अलकापुरी अकस्मात् एक फूंक में धराशायी हो गई। मैं परंपरा की सड़ी कीच से अंकुर बनकर नहीं, श्मशान में जली चिता की राख से स्फुलिंग बनकर निकला हूँ, वही स्फुलिंग जिसने आत्मा की समिधा को सुलगाने के लिए अग्नि जुटाई थी। मेरी पीढ़ी की नहीं हो सकतीं वे मान्यताएँ और आस्थाएँ जो मेरे पिता की पीढ़ी की थीं। आज की पीढ़ी उस सड़े-गले तने पर नहीं, उस खून से गीली खाद से अंकुरित हो रही है।'

'लेकिन आज के ये युवक जिन्होंने जन्म ही इस स्वतंत्र भारत में लिया है, ये क्यों उच्छृङ्खल हो रहे हैं ?'

'वह रात, वह क्षण अभी बीता कहाँ है ? आनेवाले कल ने उसे छाना दूर, छुआ भी तो नहीं। धर्म का वहशीपन तो अभी तक ज्यों का त्यों मौजूद है। मेरी जो बहनें मौजूद हैं, धार्मिक जगत में उनकी क्या प्रतिष्ठा है ? परमिट पाने के लिए धर्मांध व्यक्ति मेरी बहन के पैर चूमने में संकोच नहीं करेंगे लेकिन घर लौट कर स्नान किए बिना शायद अपने बच्चे को वे गोद में न उठाएँ क्योंकि मेरी बहन ने हरिजन मंत्री से विवाह किया है। रस्सी से बँधी हुई माँ तब भी निरुपाय थी, पर अब ?—संस्कारों से जकड़े हुए हमारे मन क्या उससे अधिक दुरवस्था नहीं भोग रहे हैं ?–आज अगर सत्यप्रकाश मिल जाए और उसकी बगल में एक ख्रिस्तान लड़की हो तो क्या तुम ही उसे पुत्रवधू बनाकर स्वीकार करोगी ?'

तमसा मौन ही रही। कैसे समझती कि महेश्वर ने एक सच्चा तथ्य भी बातों ही बातों में प्रकट कर दिया है।—सत्यप्रकाश, यानी एक नई पीढ़ी—उसका पुत्र नहीं—नई पीढ़ी का विधान ही अलग है। सत्यप्रकाश भी हो, तो भी उस पर अब तमसा के आदर्श काम नहीं करेंगे। उसकी राह में काँटे हों, गढ़े हों, गिरेगा या उबरेगा पर चलेगा अपने पैरों। उसकी नियति का वह आप मालिक है, तमसा नहीं।

दूर किसी वृक्ष पर कोई भटका पंछी कहीं से पंख फड़फड़ाता आ पहुँचा है। वृक्ष के मूल-निवासी आतिथ्य की भावुकता से त्रस्त नहीं लगते। पंखों की फड़फड़ाहट

के बीच वृक्ष स्वयं भी रह-रहकर आन्दोलित आलोड़ित होकर आतंकित हो उठता है। अब किसी कौवे की काँव-काँव भी सुनाई दे जाती है। नहीं तो, साँय-साँय के सिवा कुछ भी सस्वर नहीं है।

तमसा ने ही मौन भंग की, 'पुरुष तो खैर गिरते-पड़ते कहीं पहुँच ही जाएगा, किन्तु नारी ?'

'अपनी बहनों की बात कही न मैंने ? जो मर गईं, अपनी जान की कीमत चुकाकर भी मिला क्या उन्हें ? पर जिसने सिर झुकाकर बहाव को बह जाने दिया, सिर उठाकर तब उन्होंने बहाव को भी मोड़ दिया है।'

'तुम सोचते हो वे सुखी हैं ?'

'देखा नहीं, लेकिन होंगी क्यों नहीं सुखी ? न हुई हों तो भी राह बदलते अब उन्हें झिझक क्यों होगी ? थपेड़ों ने यही शिक्षा तो दी है उन्हें। जीवन-संगी को लेकर किसी के मन में कोई आग्रह नहीं होगा जब तक बनेगा, दोनों साथ रहेंगे। न बना छोड़ देंगे। साथ और साथी, बड़ी चीज हैं, पर जीवन उससे भी बड़ी चीज है तमसा। उनका सुख अब उनकी स्वतन्त्रता में है। नारी केवल खाना बनाने या झाड़ू लगाने जैसे कार्यों के लिए ही नहीं है। जीवन के ऊँचे कर्म में वे भी पुरुषों के साथ हिस्सा क्यों न लें ? इस तथ्य को अब न नारी की आँखों से छिपाया जा सकता है न पुरुष की आँखों से।'

'आँखों से जो नहीं छिपता महेश, वह तो केवल खाल की खूंटी से टँगा हुआ यह रूप है। उसके भीतर की खोखलाहट भी एक तथ्य है यह कोई नहीं देखना चाहता। चूल्हा-चौका, झाड़न-बुहारन ये ओछे काम नहीं हैं। नारी इनसे छोटी नहीं होती। न ही पौरुष के करतब पुरुष को ऊचा बना देते हैं।'

'मैंने यह कहाँ कहा ? मेरा मतलब यह है कि ये काम तो सहज मशीनों से भी किए जा सकते हैं, जैसा कि पश्चिम के देशों में हो रहा है। इन कामों में क्या जल्दी थकावट और ऊब नहीं पैदा हो जाती ?'

'तब तो तुम कहोगे साथी के संग भी उकताहट और ऊब पैदा हो सकती है, जल्दी न सही, पर हो सकती है न ? नहीं महेश, उद्योगों के इस युग में मनुष्य की उपयोगिता को ध्यान में रखकर मशीनों का निर्माण नहीं हुआ। अगर ऐसा होता तो सबसे पहले मनुष्य के लिए अन्न-वस्त्र और आवास ही का निर्माण हुआ होता। मनुष्य की ये आधारभूत आवश्यकताएँ तो अब भी मुँह बाए खड़ी हैं। समस्या स्त्रीत्व और पुरुषत्व के बीच नहीं है। गलत मार्ग से सही समाधान, सही मंजिल कैसे मिलेगी ? पश्चिम के देशों में क्या हो रहा है मैं नहीं जानती, शायद बाहरी तड़क-

भड़क के जीवन में उनकी रुचि अटक गई हो, पर मैं तो उसे भटक गई कहूँगी। उन्हें नारी के जीवन की गहराई का पता ही न हो तो वे कैसे समझेंगी ?'

'हमारे देश में नारी के जीवन का महत्व ही क्या है ?'

'पुरुष उसे कैसे जान सकते हैं ? स्त्री का अपना क्षेत्र है, जिसमें पुरुष की छीना-झपटी का क्या, प्रवेश तक सम्भव नहीं है। अपने एकछत्र अधिकार और अनिवार्यता के बोध में नारी के आत्मसम्मान और आत्मतुष्टि को तुम क्या समझोगे ? पुरुष के लिए कुछ भी हो, घर नारी के लिए मन्दिर होता है। परिवार के परिजन उस मन्दिर के देवता होते हैं उसके लिए। वह भगवान के मन्दिर का झाड़ू-बुहारू करती है, भगवान को प्रसाद अर्पण करके अपना मुँह जूठा करती है। माँ बनकर वह निर्माण करती है सारी सृष्टि का। इसे कौन छोटा काम कहेगा ? आत्मोपलब्धि उसे अपने ही क्षेत्र में मिलेगी, और प्रकृति ने ही उसका क्षेत्र निर्धारित कर दिया है। पुरुष की समानता की होड़ में उसे प्रवंचना के सिवा और क्या मिलेगा ? मुझे सत्यप्रकाश की चिन्ता इसलिए नहीं है कि वह उन्मुक्त है, बल्कि इसलिए है कि इस उम्र में उसकी उन्मुक्ति कहीं उसे ऐसी ही प्रवंचनामयी नारी के पंजे में न ढकेल दे। मैं ही क्यों, पुरानी पीढ़ी के सभी माँ-बाप जानते हैं कि ब्याह के बाद कोई बच्चा अपने माँ-बाप का नहीं रहता।'

महेश्वर ने तमसा की ओर देखा, इस बौद्धिक बातचीत में भी उसका मन सत्यप्रकाश के इर्द-गिर्द ही मँडराता रहा है। —क्या इस समय उसे वास्तविकता से परिचित करा देना उचित होगा ?—वह तो भूल ही चला था कि एक बड़े तनाव की स्थिति में बातचीत चली थी। वह दूर हो गई है अनायास तो क्या सत्यप्रकाश को लेकर दूसरा तनाव कर देना अच्छा होगा ?'—कहीं दूर किसी शौकीन के घर पिंजरे में कोई कोयल कूक उठी। लगता है रात भी अब अधिक अपनी नींद की व्यस्तता नहीं रखना चाहती। तमसा न सोए, पर महेश्वर तो कुछ देर सो ले। तमसा ने ही कहा,

'हो सके तो कुछ सो लो महेश। अब रात नहीं है। मैं तो दिनभर खाली रहती हूँ, तुम्हें तो स्कूल भी जाना होगा।'

महेश्वर ने कहा, 'एक बात पूछता हूँ तमसा, कोई माँ इतनी संस्कारशील और चिन्तातुर हो तब भी उसकी सन्तान इस तरह बाहरी प्रभाव में बहकर किस तरह हाथ से निकल जाती है ?'

तमसा की मुखश्री एकाएक ही विवर्ण हो गई। महेश्वर को पता लगा उसके विवर्ण स्वर से। सूखे कण्ठ से, वह कह रही थी, 'सत्यप्रकाश के सिवा और

किसी के बारे में सोचने की सुविधा मुझे थी ही कहाँ ? पूछ भी तो तुम उसको लेकर रहे हो। —यह भी नारी की आवश्यकता का आगे का अध्याय है भाई— यह सत्य के विद्रोह का नहीं, मेरी विवशता का अध्याय है।' और वह चुप हो गई।

'आगे कुछ नहीं कहोगी ?'

'मुझे भी तो गरीबी, वैधव्य और अनाश्रय ने जीविका की खोज में घर के बाहर खदेड़ा है। इसकी कीमत सत्य ने भी चुकाई है और मैंने भी। बचपन से ही उसे पैरों पर खड़ा होना पड़ा है। मैं भी समझ बैठी थी कि मेरी मजबूरी ने उसे जल्दी ही आदमी बना डाला। किन्तु वही तो उम्र थी जब उसे बाहर के दबावों से अछूता रहकर माँ–बाप की छाया में किलकारियाँ मारते हुए भावी संघर्ष के लिए शक्ति संग्रह करनी थी। उस कच्ची उमर में ही वह बाहरी ताकतों से जूझने लगा था। मैं तो बड़े सबेरे ही खाना बनाकर चली जाती अपने काम पर, खा भी वहीं आतीं। इधर भूख से परेशान उठते ही जब उसे माँ की ममतामयी मूर्ति की अपेक्षा होती, उसके सामने होता वह निर्मम, जड़–कठोर भावशून्य कटोरदान। अनजाने ही माँ और समाज के लिए उसके अन्तर्मन में अवज्ञा बढ़ती गई हो तो उसे क्यों दोष दिया जाए ?'

'उसे लौटाने की कोई राह भी तुमने सोची होगी, जब तुमने इतना सब सोच रखा है ?'

'माँ का कर्त्तव्य नहीं कर सकी। किस मुँह से उसके लौटने की अपेक्षा करूँ ? —कभी-कभी, सचमुच महेश, मैं अपनी नियति की कल्पना करके सिहर उठती हूँ। मुझे जीने का क्या सम्बल शेष है अब ?'—अगर उसको पाने की कहीं आशा होती तो क्या सोचते हो मैं यों निष्क्रिय बैठी रहती ?—सिर के बल दौड़कर गली-गली छान मारती अब तक। क्या माँ के लिए सन्तान की गन्ध पाना कठिन है ? —गाय का रँभाना सुनकर ही क्या बछड़ा दौड़ नहीं आता ?—पर कहाँ ?— कुछ भी तो नहीं हो रहा है।'

'तो यही मानकर सन्तोष क्यों नहीं कर लेती कि जहाँ भी होगा सुख से होगा। बच्चा तो नहीं है वह।'

सुख से ही यही तो विश्वास चाहिए। मेरा भार तो, तुमने लिया ही है।—मुझे डर है महेश, घर के संस्कार कहीं उसके मन में ग्लानि पैदा कर दें और वह अपने जीवन को विषमय बना डाले।' और वह उठ खड़ी हुई।

महेश ने कहा, 'ठहरो, मैं सत्यप्रकाश का पता लगा लाया हूँ।'

चलती हुई तमसा रुक गई। बोली, 'कहते क्या हो? कहाँ है वह?'

'बैठो तो कहूँ। मुझे तो भय लग रहा था कि जो कुछ देख आया हूँ वह कहूँ या नहीं। पर तुम अद्भुत नारी हो तमसा। तुम्हें देखकर श्रद्धा ही हो सकती है। लेकिन कहने के लिए मुझे तो साहस संचय करना होगा। सिगरेट जला लेने दोगी?'

तमसा धम्म से पुनः तख्त पर बैठी। उसकी छाती अनायास धड़क उठी थी।

□

कण-कण-विकीरण

टरेसा और महेश्वर की चेष्टाओं से सत्यप्रकाश से स्वीकारोक्ति पाए विना भी उसे हिरासत से मुक्ति मिल गई। पाँच हजार रुपए फिरती पाकर मालिक लोगों ने भी मामला उठा लिया। यों अपनी जाँच पूरी कर लेने में पुलिस ने कुछ भी उठा नहीं रखा था, और अगर टरेसा तथा महेश्वर के प्रयत्नों में कुछ और समय लगा होता तो सत्यप्रकाश से भी वे सब कुछ स्वीकार करा ही लेते। दोनों ने अपने-आप को परदे में ही रखा, यहाँ तक कि जव उसे हिरासत से छोड़ा गया तो उनमें से कोई भी उसे लेने नहीं पहुँचा। अपने प्रति सत्यप्रकाश के द्विविध भाव को महेश्वर समझ गया है, और टरेसा से सत्यप्रकाश का कोई प्रत्यक्ष परिचय नहीं है। सत्यप्रकाश की मित्रमण्डली को भी पहले से कुछ पता नहीं था !

हिरासत से निकला तो सूरज काफी चढ़ चुका था। बेचैनी तो सबसे पहले क्लारा से ही मिलने की थी, लेकिन वह तो इस समय स्कूल गई होगी। बीसा जी की चाल में जाने का भी कोई सवाल नहीं है। एक बार छोड़ चुकने के बाद वहाँ गया ही नहीं वह। रात उसकी मिसरीलाल के यहाँ बीतती थी और दिन नौकरी के पहले इधर-उधर दोस्तों के यहाँ बीतते थे। मिसरी की बहन चम्पा अच्छे स्वभाव की लड़की थी। उसका बाप गठिया से लाचार खटिया पर ही पड़ा रहता था। पर इस समय न तो चम्पा घर पर होगी और न ही मिसरी के होने की सम्भावना है। सोच रहा था सत्यप्रकाश कि कहाँ जाएँ किन्तु चलता तो जा ही रहा था। देखा सामने, तो अचकचाया कि वह तो अनायास ही रहमत चाचा की लकड़ी की टाल पर आ पहुँचा है। सामने किसी ग्राहक को खड़ाकर के वे लकड़ियाँ तौल रहे हैं। टल जाना चाहता था कि रहमत चाचा ने देख लिया और बोले, 'अरे फर्जन्द, भौत दिनों बाद दिखे। कहाँ रहे इत्ते दिन ?'

यानी बूढ़े को कुछ मालूम नहीं है। अच्छा हुआ, उसने कहा, 'नौकरी लग गई हैं न चाचा, फुरसत मिले तब न। मँगरू नहीं है क्या घर में ?'

लेकिन घर के भीतर मँगरू ने उसकी आवाज सुन ली थी। बड़े उल्लास के

साथ बाहर निकलकर बोला, 'अरे सतपरकाश, वाह यार, तू आ गया ? और पैंले से पताई नइँ दिया ?'

सत्यप्रकाश ने आँख के इशारे से रहमत चाचा की ओर संकेत करते हुए कहा, 'वही तो रहमत चाचा से भी कह रहा था। नौकरी क्या लग गई उन लोगों ने जैसे खरीद ही लिया। यार-दोस्त न सही, अपने ही लोगों से मिलने को तरस जाता हूँ। यही हाल रहा तो छोड़ देनी होगी नौकरी भी।'

मँगरू समझ गया लेकिन वह जवाब में कुछ कहे उसके पहले वह सत्यप्रकाश के गले लिपट गया। उधर रहमत चाचा ने कहा, 'अरे भई, अपने-परायों से मिलना-जुलना तो होताई रेवे, पर लगी रोजी नइँ छोड़नी चाहिए। इस जमाने में सुसरी नौकरी इत्ती जल्दी मिलतीई कहाँ हैं ? छोड़ना-वोड़ना नइँ।'

'मैं तो यां ही बात कर रहा था चाचा, अभी तो नौकरी भी तो टेम्परेरी है। उसका क्या ठिकाना ?'

मँगरू उसे खींचकर एक तरफ ले चला और बोला, 'चल भीतर चलें, हुवाँई बातें करेंगे।'

'भीतर नहीं मँगरू। चल ब्यूटी पार्लर चलें। क्लारा से मिलना बहुत जरूरी है।'

'अभी गया नहीं हुवाँ ?'

'सीधा यहीं आ रहा हूँ। पहले दोस्त, और कोई बाद में। कैसी है वह ?'

'तेरी याद में घुलती जा रही है बिचारी। मौत याद करती हैं। जरा-सी बात चल जाए कि आँखें बिसूरने लगती है, और बड़े-बड़े मोती लुढ़कने लग जाते हैं। पर बिचारी क्या करे ? परवश जो है।'

'मैं ही कौन निश्चिन्त था यार ? वैसे तन्दुरुस्त तो है न ?'

'यूँ तो मजे में ई है।—अच्छा, पैंले तो ये बता कि कायदे से आया है कि भाग-भूगकर ?'

'क्या मतलब ?' सत्यप्रकाश ने कुछ रोष के साथ पूछा।

'मतलब क्या भई, अगर भाग-भूगकर आया हो तो वैसा बन्दोबस करें। यूँ चौड़े-चपट्टे फिर कैसे बाहर निकरेगा। ससाले को फिर धर नहीं लेंगे ?'

'बा–कायदा छूटकर आया हूँ एकदम बेकसूर, किसका साहस है जो अँगुली भी उठाए मेरी ओर ?'

'तो ठीक है। पर कैसे छूट गया यार ?—मैंने तो सुना था कि सब कुछ

उगलवाने के लिए तुझे भौत तकलीफ दे रिये हैं। मुखबीर बनकर कदी हमारे नाम तो नई बता दिए ?'

'दोस्ती यों निभाई जाती है क्या ?—यह सत्यप्रकाश है, मँगरू नहीं कि एक जरा टिकिट के मामले में ही चीं बोल जाए।—जान चली जाती पर क्या दोस्तों का नाम लेता मैं ?'

'अब यार, विस बात को याद कराके शर्मिंदा मत करा कर। कित्ती वेर कहा ?—और उस स्साले पे किलरक को अपनने अंटागफील करा भी तो तेरे लिएई था। खैर जाने दे। हमेरे को भी तुझपे कम नाज नईं है दोस्त। देखा नईं, वो कुँजड़ा और पैसे का लालची तेरा धौली उस्ताद तो स्साले तैयारई नईं होरिये थे। पर स्साले विस निसपेट्टर ने छोड़ा कैसे रे ? वो तो बड़ा जालिम है साला।'

'मामला मालिकों ने ही उठा लिया। कहा कि शराब के नशे में वह पे क्लर्क ही रुपए कहीं रखकर भूल गया था। याद आई तो उसने जमा करवा दिए। वह क्लर्क भी तो छूट गया है।'

'अच्छा ? ये तो गजब की बात हुई यार। पाँच हजार की चपत भी खाली और झूट भी बोल लिए।

'यही मेरी समझ में नहीं आता। मालिक को इतनी दया कहाँ से आ गई साले को ?'

'कदी तेरी माँ ने तो सुपारिश नईं पौंचाई ? विसे मालूम तो होगाई कि तू जेल में है।'

'माँ ? मालूम भी हो उसे, पर पाँच हजार क्या पचास रुपए भी वह कहाँ से लाती ?'

'तू नासमझ ई रिया यार सत्परकाश। अरे तेरी माँ के तो आजकल वो ठाठ हैं कि देखे तो पेछान भी नईं सकेगा प्यारे। विस मास्टर की मेहरबानी से ऐसी गुल्लाला बन रई है कि एक झलक पर वो मालिक क्या कोई भी पैसेवाला दस हजार लुटा दे।'

सत्यप्रकाश के अन्तर में मानों बिजली तड़प उठी और उसने एक क्षण में सारे शरीर को निचोड़ कर रख दिया। बोलने की इच्छा हुई पर खून का घूँट पीकर रह गया। मुँह से निकला, 'बीड़ी-वीड़ी कुछ है ? ये तो अच्छा रहा कि ज्यादा लत नहीं है, वरना हिरासत में साले तरसा-तरसा कर मार डालते।'

बण्डल में से एक बीड़ी सत्यप्रकाश को थमाकर मँगरू ने खुद एक बीड़ी

अपने होंठों में फँसाई और फिर दोनों ने एक ही दियासलाई से सुलगाकर कश खींचना शुरू कर दिया।

दो-एक कश खांचकर सत्यप्रकाश ने अपने को सम्हालने का प्रयत्न किया और कहा, 'मेरा खयाल है कि माँ मालिक के यहाँ भी पहुँच गई? घर से वाहर निकलती है वह?'

'महम्मद पहाड़ के पास नईं जाये तो क्या कदी पहाड़ महम्मद के हुवाँ नईं जा सकता? और वो स्साला मास्टर भी कम है? जमना को पीछे लगा रख्या है स्साले के। सुना है तेरी माँ के नाम एक भौत वड़ी रकम का बीमा करवा लिया है स्साला।'

'हूँ!' और सत्यप्रकाश कश पर कश खींचने लगा।

'घर में तो बैठई गई है, सरम किसकी? थोड़े दिन देख प्यारे, तेरे पीछे भी भाई-बहनों की पल्टन लगनेवाली है।'

दाँत पीसकर सत्यप्रकाश ने कहा, 'मौका मिले तो इस साले मास्टर को मजा चखाना होगा। जेल का दरवाजा तो देख लिया है, परवाह नहीं फिर फाँसी भी हो जाए।'

'अभी नईं दोस्त। करना होगा तो बाद में, सोच-समझकर। करेंगे तो फाँसी के लिए नईं जिगर, बल्कि हाँसी के लिए। अभी तो तेल देख और तेल की धार देख। काम वो होना चाहिए कि साँप भी मर जाए और लाठी भी नईं टूटे।'

'मरेगा तब मरेगा, अभी तो साला कलेजे पर लोट रहा है। चलेगा ब्यूटी पार्लर?'

'तू कहेगा तो झन्नुम में भी चलूँगा यार, लेकिन हुवाँ तेरे साथ चलना अभी ठीक होगा?—कित्ते दिनों से बिचारी किलारा आस लगाए बैठी है तेरी, और अगर मैं साथ दिखूँगा तो क्या खुस होगी वो?—तू तो समझता नईं है न। ऐसे मौके पे तो अकेले ई जाना चाहिए। मैं बाद में आ जाऊँगा। तू चल।'

'पहले दोस्त फिर और कुछ है मेरे लिए। क्लारा से मुलाकात ही क्या, उसे पाने के लिए पाँच हजार का इन्तजाम तू ही नहीं करता तो क्या उसकी उम्मीद की जा सकती थी?—पर तेरी बात ही सही। मैं चलता हूँ, पर आने में तू भी देर मत करना। बहुत बातें करनी है।'

'निसाखातिर रख यार। तेरे पीछे का पीछे ई आता हूँ। चैन मुझे भी कहाँ है तेरे विना?'

टरेसा के लिए सोचना स्वाभाविक था कि हिरासत से निकलते ही सत्य-

प्रकाश क्लारा से मिलने के लिए सीधा ब्यूटी पार्लर ही आएगा। क्लारा तो स्कूल चली गई थी, और क्या पता सत्यप्रकाश उसे जानता भी होगा या नहीं। अतः पुलिस स्टेशन जाकर सत्यप्रकाश का स्वागत करने का कोई अर्थ नहीं हो सकता था। नोरा पर भी वह व्यक्त नहीं होने देना चाहती थी कि सत्यप्रकाश को वह जानती है या उसके लिए पाँच हजार रुपये की व्यवस्था उसी ने की है। किसी बहाने से उसने नोरा को भी इस समय पार्लर से बाहर भेजकर स्वयं वहाँ का चार्ज सम्हाल लिया था। सत्यप्रकाश को वहाँ पहुँचने में देर हो रही है देखकर उसे चिन्ता भी हुई थी। पर तभी उसे आता हुआ देखकर उत्फुल्ल-हास्य में उसने कहा, 'हल्लो प्रकाश, इतनी देर कहाँ हो गई भाई?—मैं कब से राह देख रही हूँ तुम्हारी?'

सत्यप्रकाश आश्चर्य में पड़ गया। नोरा नहीं, यह तो वही महिला है जिसे उसने महेश्वर के साथ देखा है। यहाँ कैसे?—और उसकी राह देखने का मतलब? उसने कहा, 'प्रकाश नहीं, मैं सत्यप्रकाश हूँ।'

'मैं जानती हूँ। लेकिन अगर मैं तुम्हें इसी नाम से पुकारूँ तो क्या तुम्हें कुछ एतराज है?'

'चाहे जिस नाम से पुकारें, उससे क्या अन्तर पड़ता है?—मैं मिसेस नोरा से मिलना चाहता था।'

'या मिस नोरा, आइ मीन मिस क्लैरा रॉस से? वह स्कूल गई हुई है। जानती नहीं थी न कि छूटकर आज आ रहे हो। और अगर मिसेस नोरा से ही काम हो तो वे भी काम से बाहर गई हुई हैं, लौटने में उन्हें भी देर होगी। लेकिन क्लैरा का कमरा खुला हुआ है। यू आर वेलकम।'

'थैंक्यू! लेकिन—आपको मालूम हुआ कि मैं'—

'पुलिस की हिरासत से रिलीज होकर आ रहे हो?—वेल, सम हाउ आइ न्यू।—ऊपर कमरे में चलकर बैठो। गेट रिलेक्स्ड। चाय का कहकर मैं भी आती हूँ।'

'थैंक्यू व्हेरी मच इंडीड।' और सत्यप्रकाश क्लारा के कमरे में चला गया। उसके मन में उथल-पुथल तो थी ही। क्लारा नहीं है सो तो ठीक है, नोरा भी काम से बाहर जा सकती है, पर सारा भार इस औरत पर डालकर? यह तो नई बात है। क्या सम्बन्ध है इसका इस पार्लर से और इसके मालिकों से? महेश्वर से तो इसकी मित्रता है ही, शायद इसीलिए सत्यप्रकाश को जानती होगी, पर उसके छुटकारे की बात कैसे जान गई? पुलिस इंस्पेक्टर ने जब सवेरे आकर उससे कहा

था तब उसे खुद भी आश्चर्य हुआ कि अकस्मात् क्या हुआ है कि उसे छोड़ा जा रहा है ? इंस्पेक्टर ने यह तो कहा था कि किसी ने उसकी ओर से पाँच हजार रुपया मालिकों को जमा करा दिया है और उसी की प्रेरणा से उन लोगों ने कहकर पुलिस से मामला उठवा लिया है। पहले तो उसने सोचा भी था कि शायद उसके मित्रों ने ही उसे बचाने के लिए किसी दूसरी वारदात के जरिए रुपए जुटाकर उसे बचा लिया है, पर तब से वे जरूर उसका स्वागत करके उस पर अहसान जताने के लिए हिरासत के दरवाजे पर ही मौजूद मिलते। फिर मँगरू से बात करते ही उस पर स्पष्ट हो जाता अगर उनकी सहायता होती। इंस्पेक्टर से उसने बहुत अनुरोध भी किया था कि उस भले आदमी का नाम तो बता दे, पर उसने नहीं बताया। तो क्या······

—तभी चाय की ट्रे लिए एक बेअरे के साथ टरेसा ने प्रवेश किया। टरेसा के इशारे पर बेअरे ने एक छोटी टेबल खींचकर उस पर चाय और टोस्ट आदि कुछ खाद्य सामग्री सजा दी और टरेसा का इशारा पाकर लौटने लगा तो सत्यप्रकाश ने ट्रे में एक ही कप देखकर कहा, 'आप चाय नहीं लेंगी ?'

मुस्कराकर टरेसा ने कहा, 'मैं ?—हलवाई ही अगर दूकान पर मिठाई खाने लग जाए तो दूकान क्या चलाएगा ?—और वैसे मैं चाय ले चुकी हूँ।'

'लेकिन यह तो अच्छा नहीं लगेगा कि मैं चाय पीयूँ और आप बैठी रहें। मैं ले आता हूँ कप।'

'नहीं-नहीं। बेअरा ले आएगा।' फिर बेअरे की ओर इशारा किया, वह नीचे चला गया। टरेसा ने कहा, 'चाय पी लो, शायद उसके बाद तुम नहाना-धोना चाहोगे। शेव कराना चाहो तो पास ही सैलून में चले जाना। तब तक लंच तैयार मिलेगा। लंच के बाद फिर कुछ रेस्ट ले सकते हो। क्लैरा के तो आते-आते चार बज जाएँगे !'

'इतनी तकलीफ आप क्यों करेंगी ?—खाना तो मैं···घर जाकर खा लूँगा।'

'घर जाकर ?—घर पर कौन है ?—तुम्हारी माँ तो वहाँ पर नहीं हैं।'

'आप—मेरे बारे में सब कुछ कैसे जानती हैं ? देखा तो शायद एक बार ही होगा आपने मुझे, लेकिन नाम ही नहीं, मेरा घर, मेरी माँ, मेरी गिरफ्तारी, मेरा छुटकारा—सब आप कैसे जानती हैं ?'

बेअरा एक और कप प्लेट रख गया तो चाय बनाने का उपक्रम करती हुई टरेसा ने कहा, 'इस पार्लर पर जितना अधिकार मिसेस नोरा का है, कुछ उतना ही अधिकार मेरा भी है। क्लैरा ने शायद तुमसे मेरे बारे में कुछ कहा न होगा, पर वह

मुझे आंटी कहती है। यहाँ सारा काम देखती नोरा ही है, पर छिपा मुझसे कुछ नहीं है। क्लैरा ने भी मुझसे कुछ नहीं छिपाया है।' और उसने कप सत्यप्रकाश की ओर बढ़ा दिया।

कप लेकर सत्यप्रकाश ने पूछा, 'तब तो आप मिसेस नोरा के मन का भाव भी जानती होंगी ?'

'किस संबंध में ?'

'उनकी पाँच हजार रुपए की माँग थी, वह मैंने पूरी कर ही दी है किसी तरह।'

'किस तरह की है भाई ?—जो कुछ घटना प्रकाश में आई है उसके बल पर तो कौन माँ-बाप अपनी एक मात्र लड़की को ऐसे लड़के को सौंप देगा ?'

'लेकिन जो कुछ हुआ वह उन्हीं के लिए तो। फिर सही घटना का रूप भीतर से कुछ दूसरा ही हो ?'

'तो उस रूप को बताना तो होगा न।—क्या था वह रूप ?'

चाय की एक चुस्की लेकर सत्यप्रकाश ने कहा, 'आप तो जानती होंगी, मिसेस नोरा से मिलने के लिए यहाँ एक युवक आता-जाता रहता है, उसका नाम है मँगरू। मुझसे उम्र में काफी बड़ा है, पर है छुटपन से मेरा मित्र। लोअर प्राइमरी में हम साथ पढ़े हैं। मेरे घर के पास ही है उसका भी घर। लकड़ी की टाल है उसकी, इसलिए होश सम्हालने के बाद से ही उसके यहाँ आना-जाना होता रहा है। हमारा क्लारा के साथ मेरी दोस्ती का उसे भी पता है। बल्कि शायद उसी ने मिसेस नोरा से क्लारा के साथ मेरे विवाह की बात चलाई होगी। सीधे मुझसे तो इन दोनों में से किसी ने नहीं कहा लेकिन क्लारा ने ही मुझे कहा कि अगर उसकी मम्मी को पाँच हजार मिल जाएँ तो वह मेरे साथ उसका विवाह कर दे सकती है।'

उसने चाय की एक और चुस्की के लिए कप को होंठों से लगाया तो टरेसा ने कहा, 'और तुमने पाँच हजार का प्रबंध कर लिया।'

'मैंने नहीं। मैंने तो बातों ही बातों में एक दिन इस मँगरू से जिक्र कर दिया कि मुझे कहीं से पाँच हजार दिलवा दे तो मैं धीरे-धीरे तनखा से ब्याज सहित लौटा दूँगा।'

'क्या उसकी हैसियत अच्छी है ?' टरेसा ने सत्यप्रकाश को जाँचने की नीयत से पूछा।

'अच्छी होती तो अपने पास से वह दे नहीं देता ?—नहीं, अच्छी नहीं

है। पाँच हजार तो क्या पचास भी वह नहीं दे सकता। अब तो मुझे भी अचरज होता है कि मैंने क्या सोचकर उससे यह कहा पर है वह मेरा गहरा मित्र। उसने मुझे आश्वासन दे दिया कि वह जैसे भी हो प्रवंध कर देगा।'

'और उसने प्रवन्ध कर दिया ?'

'सो तो आपने देख ही लिया होगा। मुझे अनुमान नहीं हो सकता था कि ये लोग अपने इरादों में यहाँ तक बढ़ जा सकते हैं। जिस शाम को हम श्री फॉक्स नाम की वार एण्ड रेस्त्राँ में बैठे गपशप लगा रहे थे तव तो मुझे पाँच हजार की बात याद भी नहीं थी। मित्रों में वह पे क्लर्क भी था जिसे दूसरे दिन प्रातःकाल फेक्टरी में तनखा बाँटनी थी। शराब का दौर चला तो मुझे भी शरीक होना पड़ा। वस, उसके बाद मुझे तो कुछ पता ही नहीं कि कैसे मँगरू ने उससे या किससे रुपए हथियाए। मुझे तो दूसरे दिन जब उसने रुपए गिन दिए तो कहा कि मेरे लिए किसी से उधार लाया है और ब्याज देना होगा। मेरी गरज तो थी ही, मैंने रुपए लिए और मिसेस नोरा को दे दिए। वस, वात सब कुछ यही थी। पर दूसरे ही दिन पुलिस ने मुझे घेर लिया। यह बात जरूर है कि मैंने पुलिस को अपने मित्रों के नाम नहीं बताए। बताता भी कैसे ? जिन्होंने मेरा उपकार किया उनके साथ विश्वासघात कैसे करता ? शायद इसीलिए पुलिस मुझे रोके हुए भी थी। जब कुछ साबित न हुआ तो छोड़ना पड़ा।'

'क्लैरा को यह सब घटना मालूम है ?'

'पता नहीं मिसेस नोरा ने उससे कहा या नहीं। उसके बाद उससे मैं मिला ही कहाँ ?'

'अब आगे क्या प्रोग्राम है तुम्हारा ?'

'क्लारा से पूछकर ही कुछ तय किया जाएगा। पता नहीं मिसेस नोरा की इस घटना के बाद मेरे बारे में क्या राय बनी है और हमारे विवाह के बारे में उनका अब क्या विचार है ? आप उनके इतने निकट हैं, आपको कुछ मालूम होगा न ? उनकी माँग तो जैसे-तैसे पूरी कर ही दी गई है।'

'नहीं, इस बारे में मेरी उनसे कोई बात नहीं हुई। लेकिन उनके सोचने की बनिस्वत क्या ज्यादा जरूरी यह नहीं कि क्लैरा क्या सोचती है ?'

'जरूरी हो, पर क्या वह अपनी माँ के विरुद्ध कुछ सोच सकती है ?'

'तुम्हारा क्या खयाल है ? अपने बारे में क्या तुमने अपने पेरेंट्स की सलाह ली है ?'

नीची दृष्टि करके सत्यप्रकाश ने कहा, 'पता नहीं, कितना कुछ मालूम है

आपको मेरे बारे में । लेकिन इस समय इंडिपेन्डेन्ट हूँ । अपने बारे में इसीलिए किसी की अनुमति की जरूरत नहीं है । क्लारा तो मुझ जैसी इण्डिपेन्ड्रेन्ट नहीं है । शादी के बाद जरूर वह हो जाएगी । बल्कि इस वातावरण से निकलने के लिए भी वह शादी जल्दी कर लेने को तैयार हो गई थी । आप तो जानती होंगी इस माहौल में वह न तो खुश है न सुरक्षित ही ।' और उसने चाय का प्याला खाली कर दिया।

टरेसा अपलक नेत्रों से सत्यप्रकाश के चेहरे का चढ़ता-उतरता भाव देखती रही । उसके मिथ्या या टालक उत्तरों से रोष हुआ हो तो उसने व्यक्त नहीं होने दिया । सत्यप्रकाश का प्याला फिर भरकर उसने कहा, 'सुरक्षा से तुम्हारा मतलब अगर इतना ही हो कि इस माहौल में किसी कुमारी के विचारों पर किसी तरह का असर पड़ सकता है तो मैं सहमत हो सकती हूँ । लेकिन शादी के बाद अकेली तुम्हारे साथ अलग घर बसाने पर तो और कई खतरे तुम्हारे सामने आ जाएँगे ।'

'कैसे खतरे ?' सत्यप्रकाश ने उन्मुख होकर पूछा ।

'मान लिया जाए कि इस प्रसंग में तुम्हारी नौकरी में कोई बाधा न आए तब भी जिस तरह का जीवन वह अब तक बिताती आ रही है क्या वैसा ही जीवन बिता सकेगी ? यह सच है कि तुम्हें लेकर उसमें एक मानसिक रुझान तनाव की सीमा तक पहुँच गई है—इसीलिए तो गए साल वह इम्तिहान में रह गई, और इस साल भी कोई खास तैयारी उसकी दीखती नहीं । तुम्हारे माता-पिता……।'

'पिता नहीं हैं । जब छोटा था तभी उनका देहान्त हो गया ।'

'ओह ! इसीलिए न अखबार बेचकर तुमने अपनी पढ़ाई जारी रखी थी? मुझे सोचना चाहिए था ।'

कहीं माँ के बारे में न पूछ बैठे इसलिए उसने कहा, 'यह मैंने नहीं सोचा था कि शादी के बाद क्लारा को मेरे साथ रहने के लिए चले जाना होगा, कम से कम अभी कुछ समय तो नहीं । शादी के बाद उसका मानसिक तनाव समाप्त हो जाए तो वह पढ़ाई स्वस्थ मन से जारी रख सकती है । मेरा अनुमान है कि मिसेस नोरा इतनी जल्दी अपनी पुत्री से अलग होना खुद नहीं चाहेंगी । क्लारा है तो आखिर उनकी इकलौती पुत्री । शादी के बाद लड़कियों में जो एक जिम्मेदारी की भावना आ जाती है, इसके अलावा दूसरे लोगों पर भी ऐसी लड़कियों से दूर रहने का एक भाव स्वाभाविक रूप में आ जाता है, क्लारा और मैं उसी बारे में सोचते थे ।'

'कुछ सीमा तक तुम ठीक कहते हो प्रकाश, लेकिन मान लो अपनी पुत्री के भविष्य का ख्याल करके मिसेस रॉस इसकी अनुमति न दे ? इसीलिए मैंने कहा था कि क्लैरा स्वयं कितनी दूर तक जा सकती है ?'

'पता नहीं, किस सम्बन्ध से आप मेरी इतनी हित चिन्ता कर रही हैं, मुझे आपके प्रति कृतज्ञ तो होना ही चाहिए। क्या आप नहीं समझतीं कि इससे क्लारा का दिल टूट जाएगा ? फिर उसका भविष्य उसका जीवन ?'

'यह उसके और उसकी माँ के सोचने की बात है। अनुभवी व्यक्तियों के शादी-व्याह में जिम्मेदारियों का प्रश्न उतना गम्भीर नहीं होता जितना जीवन में नया प्रवेश करनेवाले नवयुवकों का। व्यक्तिगत इच्छाओं और रुचियों का सम्मान तो हर विवाह में होना चाहिए लेकिन माँ-बाप के आश्रय के बिना उसमें पूर्णता नहीं आ सकती। तुम्हारी पीठ पर ऐसा कोई दृढ़ आधार नहीं है, आर्थिक न सही, लेकिन नैतिक, आइ मीन मॉरल सपोर्ट जो जरूरत पड़ने पर—'

सत्यप्रकाश ने सहसा कहा, 'आपके ऊपर देखता हूँ क्लारा का भी पूरा विश्वास है। मेरे भले की आज आपने जो तस्वीर मेरे सामने रखी मैं सोचता हूँ मैं आपके ऊपर उतना ही विश्वास कर सकता हूँ। आप मेरी माँ के समान हैं, मैं आपको आँटी कहूँ तो आपको आपत्ति तो नहीं है ?'

मुस्कराकर टरेसा ने कहा, 'बल्कि खुशी ही होगी प्रकाश। लेकिन, तुम्हें वह रात याद है जब हम पहले-पहल किसी सिनेमा में मिले थे ? जिसके साथ तुम आए थे, वे तुम्हारे कौन थे ?'

कुछ क्षण अपने-आप में खोए-सा रहकर सत्यप्रकाश बोला, 'मेरे कोई नहीं थे वे। लेकिन आप भी तो उन्हें जानती हैं। मेरे मित्रों ने कई बार देखा है आपको उनके साथ।'

'तुमने नहीं देखा ? तुम भूल गए हो शायद उन्हें पर वे नहीं भूले हैं···।'

'मैं पढ़ भी चुका हूँ उनसे। शायद उन्हीं से आपको मेरे बारे में सारी जानकारी मिली हो। एक बार मैं उनकी श्रद्धा भी करता था, पर शायद आप नहीं जानतीं उन्होंने मेरा कितना बड़ा सर्वनाश किया है। आज आप मेरी यह जो दुर्दशा देख रही हैं···' और आगे वह कुछ कह न सका।

'तुम्हें अवश्य कहीं गलतफहमी हुई है प्रकाश। सर्वनाश कहते हो तुम, किन्तु मैं समझती हूँ इस समय उनसे बढ़कर तुम्हारा हितचिन्तक और कोई नहीं है। इस समय ही क्यों, जब से तुम्हें वे जानने लगे हैं तभी से।'

'मैं स्वीकार करता हूँ उनसे मुझे बहुत-कुछ मिला है आँटी; शिक्षा, दीक्षा, संस्कार—सुरक्षा भी, पर कितनी बड़ी कीमत वसूल की है उन्होंने मुझसे, अगर आप यह जान पातीं, उन्होंने मेरी माँ मुझसे छीन ली, आँटी, मेरी माँ, जो मेरे सिवा दुनिया में किसी को जानती ही न थी।' और उसकी आँखों से आँसू ढलकने लगे।

'माँ को अपनी सन्तान से कोई नहीं छीन सकता भाई। तुम्हारी माँ आजकल उन्हीं के साथ हैं न? मैं नहीं जानती कि किन परिस्थितियों से तंग आकर वे वहाँ जाने को मजबूर हुईं। मिलना भी चाहती हूँ उनसे एक बार। पर जहाँ तक महेश्वर का सवाल है मैं जानती हूँ वे तुम्हारे लिए क्या कुछ नहीं कर रहे हैं। उनका ही प्रयत्न न होता तो आज तुम इस तरह मुक्त यहाँ न पाते अपने-आप को।

'क्या मतलब?'

'उन पाँच हजार रुपयों का भार अपने ऊपर लेकर महेश्वर ने तुम्हें छुड़ाया है।'

'लेकिन···' यानी यह युवती जानती है कि जो कुछ कहानी उसने उन रुपयों के पाने की गढ़ी थी, वह मिथ्या है? लेकिन कहीं पर तो उसे ऐसा आभास तक नहीं होने दिया।'

'सच घटना मुझे ही नहीं, उन्हें भी मालूम है, लेकिन तुम्हारी माँ को नहीं। उन्हें मालूम होने की जरूरत भी नहीं है। लेकिन तब भी तुम्हारी माँ तुम्हारे लिए बहुत बेचैन है। इस ब्याह के लिए तुम अपनी माँ को राजी कर सको तो शायद नोरा को मना लेना मुश्किल न हो।'

'क्या कहती हैं माँ को मना लूँ? मेरा माँ से कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है अब, रखने की इच्छा भी नहीं है और मैं जानता हूँ किसी के घर में बैठ जाने पर भा वह किसी ईसाई लड़की से मेरे ब्याह को कदापि सहन नहीं करेंगा।—नहीं, मेरे लिए यह मुमकिन नहीं होगा ऑण्टी।'

'वे किसी के घर में नहीं बैठीं प्रकाश। संस्कारों की वजह से आसानी से जरूर वे सहमत न हों, पर वक्त की माँग के मुताबिक से समझेंगी नहीं, शायद हमें नहीं सोचना चाहिए। वक्त की माँग के मुताबिक बदल कर ही तो वे किसी दूसरे के घर आश्रय ले सकी हैं। तुम्हें संस्कार तो उन्हीं से मिले हैं, तब भी तुम क्लैरा से विवाह करने को कैसे व्यग्र हो उठे हो? संस्कारों के ऊपर विजय पाकर ही आदमी सुखी हो सकता है। नोरा को ही देखो न, दो-दो वैध विवाहों के बाद अब एक मुसलमान बावर्ची को अपना खाँविन्द बनाए हुए है। नहीं क्या?—माँ के बारे में ही अगर तुम उदारता से नहीं सोचोगे तो क्लैरा ही अपने मन में कैसे आश्वत हो सकेगी?—नोरा की बात जाने भी दी जाए।'

सत्यप्रकाश को कोई उत्तर नहीं सूझा एकाएक। काफी देर तक प्याले को होंठों से लगाये रखने के बाद बोला, 'बहस में शायद आपसे नहीं जीत सकूँ ऑण्टा, लेकिन मेरी माँ को आपने देखा नहीं तब। कितने प्रबल उनके संस्कार थे, आचार-

विचार का कितना खयाल रखती थीं वे—कितनी निष्ठा से वे मेरे पूज्य पिता की पूजा करती थीं, लेकिन आज ? एक आवारा बाजारू मास्टर के साथ उन्हें देख-सुन कर मेरा खून खौल उठता है ऑण्टी। मुझे अपने पड़ोसियों को मुँह दिखाने का साहस नहीं होता।—और अगर कुछ करना चाहती हैं तो सब कुछ खुलकर क्यों नहीं करतीं ?—छिपाकर करने से ही तो दुनिया नाम धरती है।'

'पर वे कुछ कर रही हैं यह तुम कैसे कहते हो ?'

'दुनिया जो कह रही है।'

'दुनिया तो उन्हें जानती भी नहीं। तुम्हारे पड़ोसियों से ही तो दुनिया नहीं है।'

'आप भी तो जानती हैं। पड़ोसी क्या जानते हैं क्या नहीं, यह तो मैं नहीं जानता, लेकिन लोग तो यहाँ तक कह सकते हैं कि उसने माँ के नाम से एक बहुत बड़ी रकम का बीमा भी करवाया है।'

'अच्छा ! लोगों को यह बात भी मालूम हो गई ? लेकिन इसके भीतरी रहस्य को तुम नहीं जानते। तुम्हारी माँ की हितचिन्ता अगर वे करते हों तो क्या आश्चर्य है ? —विवाह करके लड़का यों भी माँ-बाप से अलग अपनी गृहस्थि बसाता है, फिर तुम तो अभी से ही उनसे अपना रिश्ता तोड़ बैठे हो। बल्कि अपनी माँ का पक्ष प्राप्त कर सको तो यह सारी रकम क्या तुम्हारी नहीं हो जाएगी ? तुम्हें तो माँ ही नहीं प्रकाश, अच्छे-खासे पिता भी प्राप्त हो जाते हैं इस तरह। और तब नोरा को भी मान लेने में क्या आपत्ति हो सकती है ?—एक बात का और खयाल करो प्रकाश, अगर तुम्हारी माँ महेश्वर को प्राप्त हो गई हो तो महेश्वर को तुम्हारी चिन्ता या गरज क्यों हो ? बल्कि तुम तो उनकी राह का रोड़ा ही साबित हो सकते हो। क्या अपने विचारों में कहीं भूल तुम्हें नहीं लगती।'

'सहज ही माँ उन्हें प्राप्त नहीं हो सकतीं ऑण्टी। माँ को क्या मैं इतना भी नहीं जानूंगा ?—उस मास्टर ने ही उनको बरगलाया होगा।—मेरी माँ को अगर आप जानती होतीं…।'

'देखा नहीं, लेकिन महेश्वर के मुंह से ही जितना उनके बारे में सुना है, मैं नहीं सोच सकती कि उन्हें बरगलाया जा सकता है या कि अपनी लीक से कण भर भी डिगाया भी जा सकता है। मुझे तो उन पर श्रद्धा ही होती है।—ऑण्टी की जगह तुम मुझे मौसी कहकर पुकार सकते हो प्रकाश ?'

'पुकार क्यों नहीं सकता, लेकिन क्यों ?' सत्यप्रकाश ने सिर उठाकर पूछा !

'तुम्हारी माँ के गौरव में हिस्सा बँटाने का लोभ हो गया है। तुम तो जानते हो, मैं कोई एक बहुत अच्छी स्त्री नहीं रही हूँ अपने जीवन में। लेकिन उनके बारे में सुन-सुनकर ही मुझमें आत्मगौरव का बोध होने लगा है, उन्हीं के गौरव की छाया कह लो उसे। अगर किसी भी बहाने तुम मुझे अपनी उस गौरव-मयी माँ के सम्बन्ध से पहचान सको तो यह मेरा सौभाग्य होगा।' सत्यप्रकाश ने अनुभव किया कि टरेसा का स्वर सचमुच भावुकता में सिक्त हो उठा है।

'ऐसी ही थी मेरी माँ मौसी, तपस्विनी, गंगाजल जैसी पवित्र। मैं उसके लिए क्या नहीं था? आपका उसके साथ जाहिरा कोई रिश्ता नहीं है, न धर्म का, न समाज का, न आदर्श का ही। कहती हैं कि देखा भी आपने नहीं है, सिर्फ सुना ही है उनके बारे में। तब भी यदि आप उसकी प्रतिष्ठा में हिस्सेदार होने में गर्व अनुभव करें तो मैं तो उसका पुत्र ही हूँ। क्या मैं उस गौरव को नहीं समझता?— लेकिन मुझसे मेरी वही माँ छीन ली गई। मेरे पैरों का आधार ही काट लिया गया। जिसने यह किया है मौसी, मैं उसे कभी माफ नहीं कर सकूँगा, कभी नहीं।' और उसने चाय की टेवल एक ओर सरका दी। क्रोध और करुणा का मिश्रण उसके स्वर और चेहरे पर मूर्त हो उठा।

टरेसा उठ खड़ी हुई और सत्यप्रकाश के पास ही पलंग पर बैठकर उसकी पीठ पर हाथ रखकर बोली,

'नहीं बेटे, तुम्हारी माँ को किसी ने तुमसे नहीं छीना। वह कभी तुमसे दूर नहीं हुई। वह तो तुम्हारे लिए उतनी ही उत्सुक है जितने तुम उसके लिए हो। अपने को दुःख मत दो।'

भावातिरेक में जबकि दोनों ही स्तब्ध डूबे बैठे थे कि एकाएक दरवाजा खुला और सहज भाव से प्रवेश करते हुए क्लारा ने सामने देखा तो उसके मुँह से बरबस निकल पड़ा' 'यू—हीयर?—व्हॉट ए प्लेजंट सरप्राइज?—आप लाई हैं ऑण्टी इन्हें?'

टरेसा ने पीठ पर से हाथ हटाकर कहा, 'यू टेक केअर ऑफ योअर मैन नाउ। ही इज ओव्हार-व्हेलम्ड।'

सत्यप्रकाश की आँखों में चमक फैल गई, उठाकर देखा, उल्लास की मूर्ति बनी क्लारा के चेहरे पर इन कुछ दिनों में ही क्लांति और चिन्ता की झाँई छा गई है। उठ खड़े होकर उसने क्लारा का हाथ थाम लिया और कहा, 'तुम···तुम क्या स्वस्थ नहीं हो डीयर?—क्या हुआ तुम्हें?···।'

क्लारा को अपना शरीर ढीला होता हुआ मालूम दिया, पैरों तले मानों जमीन खिसकने लगी, आँखों के आगे—क्या सचमुच सत्यप्रकाश है? या झपसा,

आँसू के बिल्लौर में सब कुछ वाष्पाच्छन्न, गोल-गोल क्या होता जा रहा है ?—किस प्रवाह में फँस गई है वह ?—चेतना की तटभूमि ढह रही है क्या ? लेकिन सत्यप्रकाश ने गिरती जा रही क्लारा को सम्हाल लिया अपने शरीर पर, और बोला,

'क्या हो गया मौसी, क्लारा को ?'

टरेसा ने आगे बढ़कर सहायता दी। क्लारा भी तबतक सम्हलने लग गई। टरेसा ने कहा,

'शी ऑल्सो सीम्स टु वी ओव्हर व्हेल्म्ड। हलो हनी, हाउ आर यू ?'

चेहरे पर लपक आए बालों को धीमे से हटाकर तथा सत्यप्रकाश की आँखों में आँखें डालकर क्लारा ने कहा, 'आइ डोंट नो—बट, रीअली—'

'हाँ डीयर, मैं सत्यप्रकाश हूँ।'

'गुड—आयेम ऑल राइट।' और आँखें बन्दकर उसने सत्यप्रकाश के गाल पर हाथ फिराकर मानों अपने मन को आश्वस्ति दी कि जो कुछ वह देख रही है वह वास्तविक है।

टरेसा ने ही कहा, 'वेल क्लैरा डीयर, मैं नीचे चलती हूँ। काउंटर पर कोई नहीं है शायद। तुम्हारी मम्मी आए उसके पहले लेट हिम टेक हिज बाथ एंड चेंज।—एंड बाइ दैट टाइम बी योअरसेल्फ।...अच्छा प्रकाश...' और टरेसा प्रतीक्षारत दोनों प्रेमियों को एकांत देने की नीयत से बाहर निकली कि देखती है कि सीढ़ियों पर मँगरू चला आ रहा है। देखकर खुश नहीं हुई वह। मँगरू के प्रति उसके मन में सदा ही एक आक्रोश की भावना रही है। प्रत्यक्ष परिचय उससे नहीं टरेसा का, कभी बोलचाल भी नहीं है, सिवा सामान्य पूछताछ के। टाल भी जाना चाहा आज उसने, पर वही सामने आ गया और बोला, 'सलाम मेम सा'ब, बड़ी मेम सा'ब नजर नई आतीं। किदर हैं ?'

'शॉपिंग के लिए गई हैं कहीं। आती ही होंगी। लाउंज में बैठो। चाय-काफी, कुछ लोगे ?'

'अब्दुल मियाँ भी नई दिखाई देते। वो भी गए हैं क्या ?—चाय-काफी से अपनका गला नई तर होता मेम सा'ब।'

'गला तर हो जाए यह इन्तिजाम भी हो जाएगा।' यह भी नहीं चाहती थी टरेसा कि भीतर दोनों की बातचीत में किसी तरह का व्याघात पहुँचे, खासकर तब मँगरू जानता भी न होगा कि सत्यप्रकाश हिरासत से छूट आया है।

'बेबी मेम सा'ब भी क्या इस्कूल से नई लौटीं अभी तलक ? बिनका दोस्त छूट गया जानती कि नई वो ?' टरेसा के साथ ही बाहर निकलते हुए मँगरू ने पूछा।

'क्लैरा का दोस्त ? मैं नहीं जानती भाई। क्या लोगे, बीयर या जिन् ?' टालने की नीयत से टरेसा ने पूछा।

'ज्यास्ती नईं, हल्का-सा सरूर हो जाए बस...'

काउंटर पर खड़े एक बेअरे से कहकर टरेसा मैनेजर के कैबिन में घुस गई।

ताश की चण्डाल चौकड़ी जुड़ी हुई थी। मिसरीलाल का घर ही इसके लिए उपयुक्त स्थान था। चम्पा डिस्पेंसरी चली जाती, उसका अधिकांश समय वहीं बीतता था, और बाप पीछे खटिया पर पड़ा अपने तकदीर को कोसता रहता। दूसरों के घरों में यह सुविधा नहीं थी। मिसरी का जोड़ीदार था धौली उस्ताद और जमना का मँगरू। चाल धौली उस्ताद की थी, चलने लायक कोई पत्ता नहीं था इसलिए रह-रहकर जोड़ीदार की ओर देख लेते थे। मिसरी की बगल में बैठा हुआ अहमद एक हाथ में अमरूद थामे कंधे के ऊपर से पत्ते देख रहा था। भौंह उछाल कर उसने इशारा किया तो धौली ने चिड़ी की इक्की फेंक दी। कहीं किसी ने अहमद का इशारा तो नहीं भाँप लिया, इसलिए औरों का ध्यान हटाने के लिए धौली उस्ताद बोले, 'अभी तलक तुमेरा दोस्त वो चिकनियाँ नईं आया ? इस खेल में तो कुछ मजाई नईं आता स्साला।'

जमना के पास चिड़ी का पत्ता नहीं था, तुरुप चल दे ? शायद उसका बीड़ू भी तो काटता है। आखिर भरती छोड़ते हुए बोला, 'होनेवाली मेहरारू का लहँगा फचीटता होगा स्साला।'

अहमद ने जरा झुककर मँगरू के पत्ते देखने चाहे तो मँगरू ने पत्तों को इस तरह दिखा दिया मानों छिपा रहा हो। अहमद ने देखा कि उसके पास केवल चिड़ी का देहला है तो मिसरी के पत्तों में से खींचकर उसने चिड़ी की बेगम चल दी। मँगरू ने अहमद की पीठ पर एक धौल जमाई और कहा, 'कुँजड़े के बच्चे, पत्ते देखता है ?'

अहमद ने दाँत निपोरते हुए कहा, 'पटक न बिग्गी से बड़ा पत्ता। हारने लग गिया तो...' 'चीं बोल गए पे'लवान ?' धौली उस्ताद बमके।

मँगरू ने चारों ओर की उत्कृष्ट आँखों को चुनौती देते हुए कहा, 'बस्स ? देख बे एमद्या, क्या है ये ?' और चिड़ी का बादशाह पटकते हुए कहा, 'और सुन ले, अबकी देख लिया सो तो देख लिया, अबकी देखेगा तो स्साले आँखों में मिरची झोंक दूँगा।'

'अस्साले कुँजड़े, मरवा दिया न ? मिसरी ने कहा, 'मैं तो इक्काई फेंकने-वाला था। मेमटी का अलग से हाथ बनाता।'

जमना ने फबती कसी, 'तेरी मेमटी स्साली कौन सी सत्परकाश की माँ है कि हाथ बना लेती। गनीमत समज कि बाश्शा के साथ ही गई है, नईं तो गुल्ले के पंजे में भी फँस जाती दारी। यो रिया काट का गुल्ला मेरे कने।' और उसने लाल पान का गुलाम दिखा दिया।

मँगरू ने पत्ते फैलाते हुए कहा, 'हमेरे हो गए सात हाथ। गिन लो भले ई।'

'हार से ताव खाकर धौली उस्ताद ने कहा, 'ओरे एमद्या के बच्चे, हट हुवाँ से। जानता-बीनता कुछ नईं स्साला, और अड़ंगा लगाता है बातचीत में।'

अहमद ने कहा, 'गुस्सा क्यूँ होते हो उस्ताज। खेल में हारजीत तो होतीई वेर।ह लो, जामफर खाओ।' और उसने एक अमरूद उनकी ओर लुढ़का दिया।

फींचने के लिए पत्ते मिसरी की ओर बढ़ाकर जमना ने कहा, 'अच्छी तरह पीस यार, साले अच्छे पत्तेई नईं आते। खेल में क्या खाक मजा आएगा?'

अहमद बोला, ये भी कोई खेल है इयारो, खेल हुआ साला रम्मी। बावन क्या, दो-दो, तीन-तीन जोड़ी ताश से खेलो। होर स्साला जोकरई बाजी ले जाए। खेल तो वो है।'

'साला सत्प्रकाश हो तोई जमता है वो खेल।' मँगरू बोला, 'पेंट-वेंट जोड़ना तो हइ है, पत्तां को पिछोकड़े से पिछान लेने की सिफत भी विसी में है।'

पत्ते बाँटते हुए मिसरी बोला, 'तेरी है पाँचों घी में स्लाले। वो बमपिलास का फटाका तो हैई, अब सत्यपरकाश को पटाकर विस फुलझड़ी को भी सलेट ले। बोल, काट बोल।'

पत्ते लेकर मँगरू बोला, 'ऐसी निमकहरामी स्साले, तुम्हीं करते हो कमबखत।'

'बड़ा भगत बनता है।' हमेरी विल्ली और हमीं से म्याऊँ। बोल, काट बोल न। आगे पत्ते बाटूँ।'

मँगरू ने पत्ते देखे, 'कोई रंगई नईं है जिगर।—अच्छा तेरवीं पत्ती रही।'

'हुकुम का गुल्ला नईं खुले तो नाम बदल देना।' अहमद ने कहा।

'हुकुम का गुल्लाई क्यूँ रे?' जमना ने पूछा।

'तुरप का होयगा तोई तो बाश्शा को काटकर इक्के में बैठी दारी बिग्गी को ले जाएगा। परसों देखी थीं। अल्ला कसम, क्या हुसनो-जमाल हो गिया है। सिलक की सुपेद साड़ी में बिलकुल चिड़ी की बेगमई लगे थी, हौरे हुकुम का गुलाम इक्का लिए खड़ा था रस्ता देख रिया था।'

पत्ते उठाकर ठठाते हुए मँगरू बोला, 'अफीन (अफीम) की पिन्नक में था न ?'

तेरहवाँ पत्ता खोलकर मिसरी ने कहा, 'हुक्कम। न सही गुल्ला, हुक्कम तो निकरई गई।'

धौली उस्ताद का मन कुजबुजाया, पूछा, 'किस बेगम की बात कर रिया है रे कुँजड़े ?'

'अरे वोई उस्ताज, सत्परकाश की माँ, हौर कौन ?'

'और इक्का लिए कौन था वो सींकिया पेहलवान सत्परकाश ?'

जमना ने दिया जवाब, 'वो तो स्साला नई मेहरारू की आस में विसके पावों की चिरौरी कर रिया होगा, विसे फुरसत कहाँ है ? विदर सम्हालने के लिए तो वो मास्टर होगा। क्यूँ रे ?'

'हुकुम का गुल्ला वोई तो है।' और अहमद हँस दिया।

मिसरी ने मँगरू की ओर देखकर कहा, 'तब तो आज सत्परकाश क्या आए अब। मगर, आजकल क्यूँ इत्ता चिपक्या रहवे वो हुवाँ ? पहले तो, अब जरूर कोई बात है।'

अहमद ने मिसरा पूरा किया, 'पेली मुलाकात है, पैली मुलाकात है।'

मँगरू ने पत्ते फेंकते हुए कहा, 'लो यार, कुछ मजाई नईं आता। अब बन्द करो।'

मिसरी ने हँसकर कहा, 'कहो बेटा, पकड़ ली न चोरी। बात करते ई कलेजे पे साँप लोट जाता है न ? सूई को आखिर सिल्ल पे कब तलक रगड़े कोई ? बमपिलास से जी भर गिया नी ?'

मँगरू ने कहा, 'तुम लोग तो हो स्साले, हरामी। किलारा हमेरी वहन बरोबर है।'

'चम्पा क्या हमेरी बेहन नईं है ?' मिसरी ने कहा, 'अपनी तो रोजी-रोटी ई विससे चलती है। चम्पा घर में हो तो डागदर को भी नईं बगसता मैं तो। झट जाकर स्साले को सलाम ठोंका, और बोला, 'चम्पा ने तो नईं कहा डाग्दर साव, मगर घर में आज आटा-दाल कुच्छ नईं है, कंडे-लकड़ी भी नईं। बाप को खिलाए-पिलाए बिना वो आए तो कैसे ?' बस, मार लिए कदी दो, कदी पाँच। और घर आकर कह भी दिया चम्पा से, कि कदी डाग्दर समझ नईं जाए सब कुछ।'

मँगरू ने कहा, 'बिचारे सत्परकाश को अगली एक तारीख से लोटिस मिल गई है। फिकिर नईं होगी विसे तो किसे होगी ? दिनभर मारा फिरता है कि कदी कोई जुगाड़ लग जाए।'

'मगर तूई तो कह रिया था कि विसकी माँ सोने का अण्डा देनेवारी मुर्गी है।' जमना बोला।

'वो तो हैई। विस मास्टर नेई तो पाँच हजार जमा देकर छुड़ाया था विसे। पर सनकी तो ये सत्परकाश है, मगज की चूल ढीली है साले की। सुना उसका बाप भी पग्गल था। मास्टर से मिलना-जुलना शुरू कर दे तो आसानी से मिसरी की तरह वो भी उससे माँ के नाम से कल्दार झटक सकता है। पर स्साला मास्टर के नाम से ही चिढ़ता है।'

मिसरी बोला, 'रोज-रोज तो अपन भी डागदर को नई चूंट सकें भई। इदर जमना अहमद इनका भी हाल वेहाल है। तुमेरीं गिरा की कैसी चल रई है उस्ताद?'

'बदन की खुजली तो अखाड़े में जोर-अजमाई में निकर जाया करे, पर हाथ की खुजली तो, अब जाँघ ठोंकने से ई थोड़ी जाए। बजरङ्गबली भी स्साले वाएँ हो रिये हैं।' धौली उस्ताद बोला।

जमना ने कहा, 'अपना धन्दा तो भई मौसमी है, पेहली तारीख के आस-पास, जब तनखा ले लोगबाग जेब में भरे छाती फुलाकर भीड़ में घूमें। क्यूँ रे एमद्या? विस दिन क्या हुआ था?'

'पिटता-पिटता बचा इयार। इतवार को हाट में चला गिया था, साग-भाजी की दूकान लगाती है न माँ। टाल-टाल के भिंडीं लेने एक गिराक नीचे झुका। स्साले का जेब ठीक मेरे सामने आ लगा। मैंने भी टल्ला देकर जेब से चार-पाँच कागज पार कर लिए। विसने तो नई पर पास खड़े एक-दूसरे गिराक ने देख लिया। बस, हल्ला मचा दिया। भीड़ इकट्ठी हो गई। मेरे होस फाक्ता। वो तो भीड़ में मौका मिल गिया स्साला तो मैंने खिसका दिए कागज फरश पर चुपके से। और जब लोगों ने देखा तो लोट-वोट नई, बेकार चिन्दियाँ थीं।'

मँगरू ने कहा, 'कुंजड़ाई तो रिया स्साले। लोट में और चिन्दी में फरक नई मालूम पड़ता? सतपरकाश को पटाना बड़ा जरूरी है दोस्त, और वो स्साला मास्टर का पैसा दूर, छाया भी नई छूना चाहता।'

'मेरे हियाँ गंगाजल रख्या है। बाद में न्हिला दूँगा।' जमना ने कहा।

'जमनाजल तो खुद तू हई। बाभन का बेटा, जनेव के धागे से कान बाँधकर बैठ जाए तो गटर में भी गंगाजी तैरने लग जाए। नई क्या?' अहमद ने कहा।

धौली उस्ताद गंगाजी के आक्षेप से बिफर गए, बोले भींगती हुई तलवार-कट मसों पर ताव देते हुए, 'देख बे करमटे, देवी-देवता का मजाक किया तो जय

बजरंगबली की, अब् भी हियई हिन्दू–मुसलमान का जंग मच जाएगा। हाथ की खुजली हियई मिट जायगी।'

मँगरू ने मुस्कराकर कहा, 'नाहक में बिगड़ते हो उस्ताद। अपन तो गंगाजी और जमनाजी दोनों को ई माँ समजते हैं। करना हो तो कुछ उस सींकिया पहलवान के लिए करो न कुछ। मुझे एक तरकीब सूझी है।'

'क्या है बोलो? सच्ची, मेरे हाथों में खुजली भौत चल रई है।' धौली उस्ताद बोला। 'तुम जमना और एमद्या नई कर सको तो मुझे बता दो स्साले मास्टर को। अबकी बार जब तनखा लेकर घर लौट रिया होगा तब समझ लूंगा स्साले को।'

'मैं बता दूँगा उस्ताज विसको।' अहमद ने कहा।

'तू स्साले सकुन ई बिगाड़ देगा। जमना, तू जानता है न विसको?'

अहमद को झिड़क दिया गया तो जरा हटकर वह अमरूद कुतरने लगा। उसके मुँह से ही एक टुकड़ा नीचे फर्श पर गिर पड़ा था, कहीं से एक तिलचट्टा निकल आया, और कुछ दूरी पर खड़े होकर टोह लेने लगा। अहमद ने देखा कि तिलचट्टा उसी की ओर रह-रहकर देख लेता है, वरना लक्ष्य उसका वह अमरूद का टुकड़ा ही है। अहमद ने कोई हरकत नहीं की तो तिलचट्टा बड़ी सावधानी से आगे बढ़ा। कुछ क्षण टुकड़े को दूर–दूर से सूँघकर जैसे ही तिलचट्टे ने उस पर अपना मुँह लगाया कि अहमद ने अँगूठे से तर्जनी को ऐसे उछाला कि तिलचट्टा दूर दीवार से जा टकराया। टक्कर काफी सख्त थी कि तिलचट्टा उलट गया। अहमद ने देखा कि वह तड़प–तड़प कर सुलटने की कोशिश कर रहा है पर सुलट नहीं पाता। रह–रहकर वह निस्पंद होता जाता, किन्तु जरा कहीं कुछ भी आहट होती कि वह बिजली की गति से तड़पड़ाता। लेकिन प्राणपण से की गई उसकी चेष्टा उसकी थकावट को बढ़ाती ही जा रही थी। अकस्मात अहमद का घ्यान जरा ही दूर ताक में खड़ी एक छिपकली की ओर गया जो न जाने कब दीवार से चुपके से उतर आकर बैठ गई है, शायद राह देख रही है कि कब घात मिले और लपक कर उस निरीह तिलचट्टे को उदरस्थ कर जाए। उलटा पड़ा बेबस तिलचट्टा तड़प तो सकता था पर भाग तो नहीं सकता था, छिपकली स्साली इत्ता समजती कहाँ है? पाँवों को सिकोड़ कर पैंतरे दिखा रई है दारी, जैसे धौली उस्ताद यई तो हो। दम-खम कहाँ है? उस स्साले जनाने सत्परकाश में ही?—होर वो मास्टर भी हो तो क्या हुया?–पिद्दी हौर पिद्दी का सोरबा।—अरे, अब तो स्साली, ऐसा लगे है कि जरूर लपक लेगी–पैर सिकोड़ लिए हैं, धौली उस्ताज जैसे पंजों पर खड़े हो गए हों।—वो लपकी, शाबास, अल्ला कसम, क्या निशाना है। गड़प! तिलचट्टा स्साला

सीधा मुँह में।—और खुशी के मारे अहमद ने जो ताली बजाई तो छिपकली तिलचट्टे को मुँह में दबाए भागकर गायब हो गई। साथी समझ भी नहीं पाए कि क्या हुआ?

तीसरे पहर अपने कमरे में खिड़की के सहारे लगे तख्त पर बैठी तमसा कोई प्राचीन पुस्तक खोलकर उसमें डूब गई लगती है। चारों ओर नीरवता फैली हुई है। मदन हस्ब मामूल बाहर घूमने निकल गया है, लौटेगा तो बाजार से शाक-सब्जी लेता आएगा। हुआ करे शनिव.र, महेश्वर अगर जल्दी भी लौटे तो भी शाम सात-आठ से पहले नहीं लौटता। तमसा को चाय-वाय का रोग है नहीं। घर से बाहर वह निकलती है तो केवल पास गोपाल मंदिर हो आती है सांध्य आरती के समय। जहाँ तक होता है महेश्वर के आने के पहले ही अपना खाना-पीना शेष करके वह अपने कमरे में बन्द हो जाती है। कुछ बात करनी हो तो महेश्वर ही दरवाजा थपथपा कर उसे बाहर गैलरी में बुला लेता है। महेश्वर जानता है कि तमसा को जल्दी सोने की आदत नहीं है। अपने बन्द कमरे में वह काफी रात गए तब पढ़ती रहती है। कुछ दिन पहले उसने अंग्रेजी सीखने की इच्छा प्रकट की थीं। समय तो था ही। महेश्वर ने प्रारंभिक पुस्तकें अच्छी मात्रा में प्रस्तुत कर दीं, तो तमसा का समय अच्छे-खासे ढंग से बातने लगा। कहीं कठिनाई होती तो महेश्वर था हो। तमसा अंग्रेजी में भी गति प्राप्त करने लगी थी।

पास के कमरे में कुछ हड़बड़ाहट हुई है। शायद मदन लौट आया हो। वह आता-जाता ही रहता है। तमसा को वह तभी परेशान करता है जब उससे कोई काम हो। तमसा एक तरह से उदासीन ही रहती है। मदन को पूरी स्वतंत्रता है।

बन्द दरवाजे पर दस्तक हुई तो तमसा ने पुस्तक में से ध्यान हटाकर दरवाजे की ओर देखा। पुस्तक को बन्द किया और कहा, 'चले आओ मदन, दरवाजा खुला ही है।'

दरवाजा खुला, 'अरे तुम?—आज इस समय, इतनी जल्दी?'

मुस्कराकर महेश्वर ने कहा, 'अध्ययन-मनन में कुछ विघ्न हुआ क्या?—आज शनिवार है, मालूम नहीं?'

'पर, इतनी जल्दी शनिवार को भी तुम कब चले आते हो?—मदन तो बाहर ही कहीं होगा। चाय मैं ही बना देती हूँ।

'नहीं। मदन बाहर ही घूम रहा था। साथ लिए आया हूँ। चाय वही बना देगा। क्या पढ़ रही थीं?—कोई भारी ग्रन्थ मालूम देता है।'

'भारी नहीं। तुम तो योंही मजाक करते हो। संस्कृत की पुस्तक है।'

'मेरे लिए तो काला अक्षर भैंस के बराबर है। क्या वाल्मीकि की रामायण है?'

'नहीं। योगवासिष्ठ है।—किसी तरह समय तो बिताना पड़ता है न।'

'आज एक मित्र को साथ लिए आया हूँ। तुमसे मिलना चाहता है।'

'मुझसे?—मैं किसी पर पुरुष से नहीं मिलूँगी।'

'पुरुष नहीं, वह महिला मित्र है।'

'महिला मित्र—मुझसे क्या मिलेगा उसे? सहेलियों में बैठकर चर्चा का मसाला जुटाना चाहती है?'

'बुरा क्या है? योगवासिष्ठ पढ़ सकने वाली महिला की चर्चा चलाने से क्या महिलाओं पर कुछ असर नहीं पड़ेगा?'

'उसमें रुचि किसकी है भाई? वे तो सुनना चाहेंगी कि कोई निर्लज्ज विधवा ब्राह्मणी किसी पराए पुरुष के घर में घुसी बैठी है। सम्भव है तुम्हारी यह महिला मित्र भी, कानों की खुजली से परेशान अपने नेत्रों को तृप्ति देने ही आई हो।'

'सोचती हो, क्या ऐसी स्त्री को मित्र बताकर तुम्हारा अपमान कर सकता हूँ?'

कुछ क्षण सोचकर तमसा ने लम्बी साँस ली और कहा, 'पुरुष की वासना को तो समझ सकती हूँ महेश, समझ लेती हूँ तो उससे टकराने का साहस जुट आता है। पर स्त्री की वासना? उससे डर लगता है। बीसाजी की चाल में तो सभी स्त्रियों को जानते हो न? मुझमें साहस नहीं है भाई।'

'तुम भी तो एक नारी हो तमसा। क्या तुम जैसी कोई नारी नहीं हो सकती?'

'परमात्मा करे न हो। गरीब, विधवा और संस्कारवती निस्सहाय युवा ब्राह्मणी, जो मानसिक दुःखों की मार न सह पाने से एक अनजाने पराए पुरुष का आश्रय खोजने को विवश हुई हो।—और फिर जिसका आश्रय लिया उसको ही क्या कम दुःख पहुँचा रही है, चाहे मानसिक ही हो?'

महेश्वर ने तमसा की ओर देखा कि उसने झटके से पुस्तक बन्द कर दी है, और साड़ी की कोर से आँखों को पोंछ लिया है, शायद वाष्पाच्छन्न हो उठी हैं। बोला, 'तुम्हें लेकर मुझे कोई दुःख नहीं है तमसा। है तो सिर्फ यही कि उस रात की बात सोचकर तुम बराबर दुःख पाती जा रही हो। प्यार का न हो, पर भक्ति

का अधिकार तो सबको है न ? और अपने भगवान को पाकर क्या किसी को दुःख होता है ?'

तमसा ने बहती हुई आँखें फिर पोंछीं, स्वर काँप उठा तो हाथ के इशारे से कहा, 'मदन से कहो, चाय तैयार करे, और उसे अपने कमरे में बिठाओ, मैं आता हूँ।'

'यहाँ नहीं ?'

'यहाँ ? यह कमरा क्या किसी से मिलने लायक है ? ढंग से बिठाने की जगह भी तो नहीं।'

'इससे लायक जगह इस घर में दूसरी कौन-सी है ? यदि तुमसे परिचय पाना हो किसी को तो तुम्हारे परिवेश में ही तो मिलना चाहिए उसे ? टरेसा—'

'अरे ! कहा भी नहीं कि बाहर ही खड़ी हैं ?' तमसा उठी और साथ ही टरेसा ने भी दरवाजे से प्रवेश किया, और तमसा कुछ समझे उसके पहले ही टरेसा झुककर तमसा के पैरों की धूलि माथे से लगा ली। 'अरे, अरे, यह क्या करती हो?' तमसा कहती ही रही। टरेसा उठी तो तमसा ने उसे हृदय से लगा लिया।

हृदय से लगी हुई ही टरेसा ने कहा, 'इन्होंने कहा नहीं, पर मैं ईसाई हूँ बहन।'

'कुछ अपराध हुआ मुझसे ?'

'अपराध हुआ हो तो मुझसे हुआ होगा। आपका वंश······'

'जिसे बिना किसी के बताए जान लेना होता है वह वंश नहीं, मनुष्यता है, जिसमें स्वयं ईश्वर का वास है।—और मैं तो तुम्हारी ही जाति की हूँ, एक निर्बल नारी। क्या करूँ ? इस कमरे में ले आए हैं ये हजरत, जहाँ बैठाने की भी जगह नहीं है। चलें, उस कमरे में—'

'आप मेरे बैठने के बारे में इतनी चिन्ता क्यों करती हैं ?' और आगे बढ़कर जब वह फर्श पर ही बैठने लगी तो तमसा ने हाथ पकड़ कर तख्त पर बैठा लिया, फिर स्वयं पास बैठकर महेश्वर से बोली, 'अपने लिए गैलरी में मोढ़ा खींच लो महेश।'

'स्कूल में एक जरूरी मीटिंग है। टरेसा से वादा किया था आज ले आने का, इसलिए चले आना पड़ा। मेरा जाना जरूरी है। हो सका तो जल्दी लौट आऊँगा।'

टरेसा ने कहा, 'राह देखनी होगी क्या ?'

'वह तुम्हारी इच्छा और तमसा की शक्ति पर छोड़ना होगा।—मदन को कहे जाता हूँ कि कहीं जाए नहीं।' और महेश्वर कमरे के बाहर निकल गया।

तख्त पर पास सरकते हुए तमसा ने कहा, 'बुरा न मानना बहन, मैं सभ्य-समाज के अदब-कायदे नहीं जानती। पढ़ी-लिखी भी नहीं हूँ, अगर तुम्हारा यथोचित सत्कार न कर पाऊँ—हिन्दी तो जानती हो न ?'

'आप जितनी तो नहीं—'

'आप नहीं। बहन कहा है तो—छोटी होऊँ या बड़ी, तुम ही कहकर पुकारना होगा। समझ लो, यह भी मेरे गँवार होने का सबूत है, पर गँवार की जिद भी तो होती है न।'

'बिना जाने-पहचाने और विधर्मी को बहन कहकर आपने जो गौरव दिया है, वही क्या मेरे लिए कम है ?—जो आपको गँवार कहे, उससे बढ़कर गँवार और कौन होगा ?—आपके बारे में मैं बहुत कुछ सुन चुकी हूँ।'

'पर यह नहीं सुना होगा कि मेरी बात न मानने पर मैं नाराज भी बहुत जल्दी हो उठती हूँ।' तमसा ने मुस्कराकर कहा, 'तुम नहीं कहोगी तो मुझे भी आप कहना होगा। गँवार को आखिर कुछ सीखना तो चाहिए ही।' 'फिर उठकर बोली, 'मैं मदन से कह आती हूँ आपके लिए चाय ले आए—'

'मेरी कसम—मैं तुम कहूँगी।—पर चाय अभी नहीं। बैठि-बैठो बहन ! अभी तो बहुत समय तक ठहर रही हूँ। मेरी इच्छा तो है ही।'

'यही ठीक है बहन, क्योंकि मेरी शक्ति तो कुछ भी नहीं है।' फिर बैठकर कहा, 'तब तो आज खाना जब बनाऊँ तो तुम बैठकर देखना, और मुझसे चूक हो जाए तो बताना।'

'मजाक उड़ाना चाहती हो क्या बहन ?—सीखने तो मैं आई हूँ सच्चा मनुष्य बनना। खाना बनाना, यानी ठीक तरह से पेट भरने का उपाय, वही सीखा होता तो शायद आज सिर ऊँचा उठा पाती।—लेकिन ये बातें रहें अभी। अभी तो एक खुशखबरी सुनाने आई हूँ और चाहती हूँ कि अपनी खुशी में मुझे भी हिस्सा बँटाने दो।'

तमसा ने एक लंबी साँस ली और कहा, 'हिस्सा क्यों लोगी बहन ?—पूरी तुम ले लो। तुम्हें खुश देखकर ही मैं खुश हो लूँगी !'

'प्रकाश मुझे मौसी कहकर पुकारता है न।'

'प्रकाश ?—'

'ओह !—मैं सत्यप्रकाश को प्रकाश कहकर पुकारती हूँ। मुझे ध्यान ही नहीं रहा। खुशी की खबर यह है कि उसकी सर्व्हिस लग गई है।'

'अच्छा !' और फिर किंचित मुस्कराकर कहा, 'माँ उसे सत्य कहकर

पुकारती है, तुम मौसी, माँ सी, हो, उस अधूरे को तुम पूरा नहीं करोगी तो और कौन करेगा ?—तब तो उसे छुटकारा दिलानेवाली जिस महिला का महेश ने उल्लेख किया था वह तुम्हीं हो न ?—आभार मानकर तुम्हें छोटा नहीं करूँगी बहन। मुझसे रूठ जाने पर वह अब तो तुम्हारा ही पुत्र है, मेरे लिए यही क्या कम है ?'

'नहीं बहन, तुमसे कोई रूठ सकता है क्या ? दिन-रात तुम्हारी ही रट लगाए रहता है। आने का साहस जो नहीं जुटा पाता वह शायद तुम्हारे डर के कारण ही हो।'

'माँ से कोई बच्चा डरे तो क्या वह माँ की ही असफलता नहीं हुई ?—सच पूछो तो मैं ही उससे डरकर यहाँ भाग आई हूँ। भाग्य में दुःख ही बदा हो तो शिकायत करूँ किसके पास ?—कैसी है सर्व्हिस ?'

'एक टाइपिस्ट की है। तनख्वा शुरू-शुरू में डेढ़ सौ ही है' पर काम देखकर तरक्की मिल जाएगी।'

'पर टाइप वह कहाँ जानता है ?'

'करते-करते ही अभ्यास हो जाएगा बहन।'

'और तब भी काम ठीक यानी ईमानदारी से करेगा तब न। संग-दोष से तो जेल तक हो आया है।'

तमसा को पूरी बात नहीं बताई गई थी। महेश्वर ने केवल यही कहा था कि अपराधी कोई दूसरा ही कर्मचारी था। साथ काम करने के कारण सत्यप्रकाश के साथ मित्रता हो गई थी और उस शाम चाय और जलपान के लिए साथ हो लिए थे। वह नौकरी यूँ भी अस्थायी थी।

टरेसा ने कहा, 'दूध का जला छाछ भी तो फूंक-फूंक कर पीता है बहन ! एक बात पूछूँ ?'

'पूछो। संकोच क्यों करती हो ? बताने योग्य होगी तो अवश्य बताऊँगी।'

सुना था कि तुम बड़ी संस्कारशील, पूजापाठ और आचार-विचार में बड़ी सतर्क, ऊँचे वर्ण की हो, फिर मुझ-जैसी विधर्मिणी ख्रिस्तान लड़की को छूने में तुम्हें संकोच नहीं हुआ ? क्या मेरे चले जाने के बाद नहा-धोकर तुम्हें पवित्र होना पड़ेगा ?'

मुस्कराकर तमसा ने कहा, 'आई हो तो आज रातभर रहकर देख ही लो न। पर बहन, धर्म तो शरीर का नहीं मन का विषय है। तुम ईसा को मानो और मैं ईश्वर को मानूं तो उससे हमारे शरीर में क्या अन्तर हो जाता है ? मैंने सत्य कहा और तुमने प्रकाश कहा, दोनों अलग होकर भी क्या एक नहीं हैं ? एकांगी हो

तभी तो धर्म बाँटने लगता है। सब धर्म मिलकर ही मनुष्य को समग्र पूर्ण बना सकते हैं भाई। मुझे नहाना क्यों पड़ेगा? तुम्हारे स्नेह की गंगा से यह नल का पानी पवित्र है?'

'और आचार-विचार?'

'यानी आचार का विचार न? सो तो करना चाहिए पर स्थूल आचार का क्यों? तुम पूछोगी कि मैं तुम्हारा छुआ खा-पी सकती हूँ या नहीं। पूर्वजों ने ये प्रथाएँ शायद इसलिए चलाई होंगी कि जिसे तुम नहीं जानते वह तुम्हारी जाति का, जमात का नहीं। क्या पता शत्रु ही हो। आदि-युग में सहज विश्वास की परिस्थितियाँ कहाँ थीं? अनजान व्यक्ति किसी भी बहाने से तुम्हारे जीवन को समाप्त कर सकता था न? पर आज तो वह समस्या नहीं है। अगर कभी विचार करूँ भी तो कहना होगा वह पुराने रूढ़ संस्कारों का फल है, तुक उसमें कुछ नहीं है।'

'महेश्वर तुमसे श्रद्धा यूँ ही नहीं करते बहन। तुम बड़ी उदार, खुले विचारों की हो।'

'महेश की बात न कहो टरेसा। पता नहीं, तुम उसे कितना और कैसे जानती हो। काश, मैं उसे दुखी न करती।'

'लेकिन उन्हें सुखी करना भी तो तुम्हारे ही हाथ है बहन।'

'कहाँ है? तुम्हीं ने कहा न कि मैं ऊँचे वर्ण की आचारनिष्ठ विधवा स्त्री हूँ। और……'

'मगर मुझसे तो तुमने नफरत नहीं की कि मैं म्लेच्छ हूँ।'

'म्लेच्छ कब कहा मैंने? धर्म दूसरा हो जाने से ही कोई म्लेच्छ कैसे हो जाता है? अगर किसी को सुख नहीं पहुँचाया जा सकता तो इससे मन में उसके प्रति दया और अपने प्रति दुःख ही तो पैदा होता है टरेसा, नफरत क्यों पैदा हो?'

अच्छा अगर महेश्वर ईसाई होते तो भी क्या तुम इस तरह बिना दुविधा के यहाँ आ जाती?'

'दुविधाहीन अभी भी कहाँ हूँ? अंगीकृत हुए बिना नारी को किसी पर लदने का अधिकार दूर, सुविधा भी कहाँ है?'

'अंगीकार करे और परधर्मी हो?'

'परधर्मी भयावह, शास्त्रकार कह गए हैं। पर शास्त्रकार गलती न करते हों यह बात नहीं, और फिर उनकी व्यवस्थाएँ स्थान-काल के अनुसार भी तो हैं। तुम कहना क्या चाहती हो? उलझे बिना तो पहेलियाँ सुलझाई नहीं जा सकतीं बहन।'

टरेसा ने एकाएक कह दिया, 'सत्यप्रकाश बड़ा हुआ बहन, अब उसका विवाह कर देना चाहिए।'

'विवाह? अभी इतना बड़ा कहाँ हुआ? क्या कहीं......'

'उम्र तो हुई है बहन, और फिर इस तरह स्वतन्त्रता का वातावरण जो मिल गया है उसे।'

'इस ओर तो सचमुच ध्यान गया ही नहीं था मेरा। आशंकित रहा मन तो भी इसलिए कि माँ के अभाव में कितना कष्ट उठा रहा होगा? पर विवाह, अगर वह राजी भी हो तो भी घर की इस अवस्था में एक आवारा जैसे लड़के को कौन लड़की देने के लिए तैयार हो जाएगा? चाहे जैसी लड़की तो गले नहीं फाँद दी जा सकती।'

'चाहे जैसी नहीं बहन, अगर वह एकदम हीरा हो, और सत्यप्रकाश भी उसे पसन्द करे?'

'तो बात यहाँ तक बढ़ चुकी है? फिर मेरी राय की जरूरत ही क्या है टरेसा?'

'जरूरत है। तुम उसकी माँ हो बहन।'

'जनम देने से इतनी ही तो। पिता भाग्य में न रहे पर उनकी छाया फैलाए रखने का दायित्व तब माँ को ही तो उठाना पड़ता है। सत्य खुद इस तथ्य को समझ चुका है, तभी तो इन सारे कर्त्तव्यों का बोझ वह खुद उठा रहा है। मैं उसकी जरूरत पूरा नहीं कर पाती इसीलिए तो मुझे छोड़कर चल दिया है वह। तुम, तुम भी तो उसकी माँ ही हो टरेसा।'

'तो हम दोनों मिलकर उसकी माँ हुईं। तुम्हारी राय की जरूरत यूँ भी हो गई।'

'भार बँटाने वाला पाकर खुशी किसे नहीं होगी भाई? अगर तुमने मिलकर सब तय कर लिया हो।'

'बात यह है बहन, कि लड़की भी मेरी तरह ईसाई है।'

'ईसाई?' तमसा के चेहरे पर आघात स्पष्ट हो उठा। तो क्या यह भी एक दुरभिसन्धि है? टरेसा को उसने सहज ही स्वीकार किया है महेश के कारण, तो क्या महेश भी इसमें सना हुआ है?—ईसाई लड़की, सत्य मौसी कहकर पुकारता ही है......कहीं इसी की लड़की तो नहीं है?......आत्मीयता, स्नेह, और सहज स्वाभाविकता का यह प्रदर्शन......यहाँ आने का क्या यही प्रयोजन नहीं था? ईसाई लड़की एक आचारनिष्ठ विप्र-वंश की पुत्रवधू?......सत्य घरजवाँई? यह विडम्बना भी लिखी थी भाग्य में?'

टरेसा ने शायद तमसा के मनोभाव पढ़ लिए। बोली, 'देखती हूँ बहन, विचार मात्र से तुम्हें आघात पहुँचा है। सच ही, मन के लिए बुद्धि नहीं, संस्कार ही प्रबल होते हैं। हैं न ?'

बुझे हुए स्वर में तमसा ने कहा, 'सच कहती हो टरेसा। बात जहाँ तक भी बढ़ी हो, माँ बनने का दायित्व तुमने ओढ़ ही लिया है। उसके सुख के लिए जो ठीक हो वही करो। मुझे इसमें मत सानो।'

'लेकिन सत्यप्रकाश ही क्यों, उस लड़की का सुख नहीं सोचना होगा ?'

'तुम जो होगी उनके पास। लड़की का और अधिक सुख क्या हो कि माँ ही उसकी सास भी बन जाए।'

टरेसा ने कुछ मुस्करा कर कहा, 'इसमें कहीं धोखा दिखाई देता है तुम्हें बहन। नहीं, लड़की कहीं किसी भी दूरी पर मेरी रिश्तेदार नहीं है। हाँ, यह रिश्ता बन जाए तो सास, माँ, जो कुछ भी कहो, बन जाने में मुझे सुख होगा। धर्म उसका जरूर दूसरा है। धर्म क्या होता है वह लड़की यह शायद जानती भी न हो, लेकिन है वह बुद्धिमता, शीलवान, सुन्दर और पढ़ी-लिखी भी, संस्कृत जरूर नहीं जानती, पर सीख सकती है। और तुम स्वीकार कर लोगी तो वही सुखी नहीं होगी, मैं सोचती हूँ, तुम्हें भी सुख पहुँचाएगी। उसे तुम जैसी माँ की जरूरत है।'

'उसकी माँ नहीं है ?'

'है। पर दोनों की रुचियों, विचारों में जमीन आसमान का अन्तर है। तुम अवश्य सुखी होगी बहन, उसे पाकर।'

'मैं और सुखी ?' और एक फीकी मुस्कराहट में उसके होंठ कुछ फैल गए।

'क्यों ? तुम सुखी क्यों नहीं हो सकती बहन ?'

'सुखी होने का अधिकार प्राणी को कहाँ है ? इस जन्म-मरण के चक्र में कहीं सुख है क्या ?'

'दर्शन की गूढ़ बातें मैं नहीं समझती बहन। लेकिन समझना चाहती हूँ कि धर्म को मन का विषय मानकर भी, और आत्मा चाहे एक हो, पर मन तो सबका जुदा-जुदा होता है न ? अलग मन वाली लड़की तो तुम स्वीकार कर लोगी, पर अलग धर्म वाली नहीं। ऐसा क्यों बहन ?'

'मान लेना और स्वीकार कर लेना क्या एक बात है ? और अस्वीकार की बात भी तो मैंने नहीं कही। समझ लो, बात संस्कार की है। बहस से तर्क किया जा सकता है संस्कार नहीं बदले जा सकते।' और उठकर उसने कहा, 'जाऊँ, तुम्हारे लिए मदन को चाय की कह आऊँ।'

हाथ पकड़ कर पुनः तमसा को बिठाते हुए टरेसा ने कहा, 'इतनी जल्दी छोड़ूँगी नहीं बहन।—मैं जानना चाहती हूँ, तुम्हारे लिए धर्म का महत्व हो सकता है क्योंकि तुम उसके मर्म को समझती हो, मानती हो, पर जो यह सब कुछ नहीं जानता हो उसके लिए धर्म क्या है?—पैदा किसी धर्म में हो जाना ही तो उसे स्वीकार करना नहीं हो जाता। फिर स्त्री का धर्म? जाति, गोत्र, नाम सब कुछ तो वह पति का अंगीकार कर लेती है, फिर धर्म ही पति का क्यों न हो?—बल्कि तुम्हारे शास्त्रों में तो शायद स्त्री का धर्म ही पति माना है। नहीं क्या?'

किंचित मुस्कराकर तमसा बोली, 'बहस में जीतना कठिन है टरेसा, जीतना चाहती भी नहीं।' फिर एक लंबी साँस छोड़कर कहा, 'आखिर सत्य के जीवन में मैं अब रही भी कहाँ हूँ?—अगर वह सोचता हो कि इसी लड़की से उसे सुख मिलेगा तो ठीक है।'

'यह भी तो हो सकता है बहन, कि यह लड़की ही माँ-बेटे के बीच पुल बन जाए। मेरा खयाल है अगर तुम चाहोगी तो लड़की माँ-बाप का आश्रय ही नहीं, उस धर्म का आश्रय भी छोड़ देगी। एक बार तुम उस लड़की को देख तो लो।'

'क्या देखूं बहन, लड़कियाँ सब लड़कियाँ ही तो हैं, चाहे ईसाई हों या हिन्दू।—तुम और मैं वही तो हैं।'

'तुम कहो तो मैं उसे यहाँ ले आऊँ?'

'नहीं नहीं। उस बेचारी को लज्जित क्यों करोगी? सत्य को पसन्द है, यही तो सब कुछ है। महेश को मालूम है?'

'मैं तो चाहती थी कि वे ही इस प्रस्ताव को प्रस्तुत करें। डर होना तो सहज था कि कहीं तुम मेरा स्वार्थ न समझ लो।'

'महेश से तुम्हारी खूब पटती है न?—बड़े दुःखों से गुजरा हुआ है बेचारा, पर शायद दुःखों ने ही काट-तराश कर उसे हीरा बना दिया है। जो कटा है वह मैल ही है।'

'शायद तुम्हारे मत से अभी उन्हें और कटना चाहिए। हैं?—अच्छा, सुना है मन्दिर तो जाती हो?'

'हाँ, अँधेरा हो जाने के बाद कभी-कभी गोपाल मन्दिर हो आती हूँ।'

'मैं मन्दिर जाऊँ तो मुझे आने देंगे?'

'भगवान के घर रोक तो किसी की होना नहीं चाहिए, पर मन में श्रद्धा न हो तो जाने से क्या होगा टरेसा?'

'तुम्हें देखकर श्रद्धा होती है तो तुम्हारे भगवान से न होगी ?'

'भगवान तो तुम्हारे गिरजाघर में भी तो है। भगवान को कभी विरोध नहीं होता, पर पुजारी का कोई क्या करे ?'—

'लेकिन पुजारी लिबास ही तो पहचान सकता है, मन कहाँ पहचानेगा? मैं क्या ईसाई दीखती हूँ, मैं कल रात आठ बजे जाऊँगी मन्दिर। पूछेगा तो कह दूँगी कि ब्राह्मण हूँ और तुम्हारी बहन हूँ।'

'लिबास यही रहा तो कोई पूछेगा भी नहीं। स्त्रियों को तो और भी सुविधा है। पहचाने जाने का डर तो मुँह पर घूँघट डाल लिया जाए। बस ?—पर इतने छल की क्या जरूरत है ? मेरे ही भगवान के दर्शन चाहती हो तो वह देखो उधर बालकृष्ण की मूर्ति, उधर—' और उसने खुली अलमारी के ऊपरी हिस्से की ओर संकेत किया, और दोनों हाथ झुके माथे से लगा लिए।

लेकिन तभी टरेसा का ध्यान बँट गया, दरवाजे पर खड़ा मदन कह रहा था,

'दीदी, चलिए उधर, चाय लगा दी है और मास्टर साब बुला रहे हैं।' टरेसा ने मुँह फिराया तो उसे पहचानकर बोला, 'अरे मेम साब, आप हैं ?—सलाम।—भौत दिनों बाद दिखाई दीं ?'

'तुम अच्छे हो मदन ?—अब तो काफी बड़े हो गए लगते हो।'

'बड़ा हो गया हूँ ? मौसी जी तो कहती हैं कि अभी बच्चा ही हूँ। चलिए न आप लोग। मास्टर साब बैठे राह देख रहे हैं आपकी।'

तमसा ने पूछा, 'महेश कब आए रे मदन ?'

'वे बाहर गए ही कहाँ ? मेम साब के साथ इस्कूल से आए' तब से हिंयई कमरे में बैठे हैं।'

'अच्छा !—और मदन भी तुम्हें जानता है टरेसा ?'

'भूला नहीं न मदन ?' टरेसा ने मदन की ओर देखकर कहा।

'कैसे भूलूँगा ?—तब तो दो-तीन दिन रह गई थीं न।—कित्ते दिन हो गए मेम साब ?'

'बहुत दिन हुए। पर मेम साब कहकर क्यों बुलाता है रे ?—दीदी कहकर मुझे भी बुलाया कर।'

'वाह, आज साड़ी पहर ली, इसी से क्या मेम साब नहीं रहीं ?—मैं चलता हूँ, सा'ब नाराज होंगे। आप जल्दी आइए।' और जैसे आया था वैसे ही लपक कर मदन कमरे से बाहर हो गया।

'मैंने तो सोचा ही नहीं था कि ईसाई महिलाएँ साड़ी नहीं पहनतीं।' मुस्कराकर तमसा खड़ी हो गई। टेरेसा भी उठ खड़ी हुई और बोली,

'छोड़ो बहन, अब तो मैं साड़ी ही पहनती हूँ, और मेरी कहानी सुनोगी तो जान जाओगी कि मन से तो मैं हिन्दू ही हूँ, ईसाई तो ऊपर ही ऊपर थी, वह भी अब नहीं रहना चाहती।'

'और जब पहले यहाँ आकर दो-तीन दिन रह चुकी हो तो अब बिलकुल क्यों नहीं आती?—मैं आ गई इसलिए क्या?'

'आई तो हूँ।—और बहन, तुमने अपना लिया तो आऊँगी क्यों नहीं?'—और दोनों कमरे से बाहर जाने के लिए आगे बढ़ीं।

□

कृष्ण कोटरों के विवर्त

'चलो तुम्हें दूरसे ही दिखा लाऊँ। देखो तुम भी, दोनों साथ कैसे जँचते हैं ?'

'नहीं। मेरी इच्छा नहीं है।'

'इच्छा नहीं है ?—माँ-बाप कितनी साध से, कितनी तपस्या के बाद इस घड़ी की प्रतीक्षा करते हैं, और तुम कहती हो इच्छा नहीं है ?'

'तपस्या करके करते हैं न ! मैंने तपस्या कहाँ की ?—तपस्या करने वाली टरेसा तो होगी ही वहाँ।'

'पर जन्म तो तुमने दिया है।'

तमसा ने एक लम्वी साँस ली और कहा,—'यह विडंवना भी मेरी वजह से उसके भाग्य में लिख गई। राजपुत्र सब नहीं होते, पर सद किसी दीन-अभागिन के बेटे बनकर महलों के सपने भी तो नहीं देखते। उसका बाप ही जीवित होता, सुखी न सही, हलकी तो अनुभव करती।'

'व्यर्थ ही बहुत भावुक हो उठी हो तमसा। माता-पिता सदैव किसके जीवित रहते हैं ?—मुझे ही लो।'

'तभी तो अभी तक किसी खूंटे से नहीं लग पाए। पर, देखते रहो। अव तुम्हारी ही वारी है। मैं जो आ गई हूँ।'

'तुम ?–तुम खूंटा वनोगी ?–एक नहीं तमसा, जीवनों की शृंखला की शृंखला मैं तुमसे वाँधने को तैयार हूँ।'

'मुझसे वँधकर क्या मिलेगा तुम्हें ?–भटक बहुत चुके हो महेश।'

'छोड़ो मेरी वात !–मेरे लिए एकही खूंटा है। तुम चाहे न जानो, पर मैं जानता हूँ। मेरी बात छोड़ो। अपनी ही वात क्यों नहीं लेती ?–तुम्हारी शादी के वक्त तुम्हारे पिता ही कहाँ जीवित थे ?'

मन में उठे किसी अतर्क्य-भाव से संघर्ष के प्रयत्न में तमसा ने आँखें बन्द करलीं और कहा, दबे कण्ठ से, 'महलों के सपने नहीं, मेरी आँखों में तब भी आँसू थे। उन्हीं आँसुओं को लेकर जीवित रही हूँ—जो चाहा, मेरे परमेश्वर ने वही दिया है मुझे, वही दिया है।' और आँचल में आँखें छिपालीं उसने।

महेश्वर एकटक तमसा के मुँह की ओर देखता रहा, उफान कुछ कम हुआ तो बोला, 'दुःख पहुँचाने का इरादा नहीं था तमसा। मुझे माफ कर दो।'

आँसू पोंछकर आँचल हटाते हुए तमसा बोली, 'दुःख नहीं हुआ मुझे महेश! आँसू और दुःख एक नहीं होते!—तुम जाओ न, तुमने ही क्या उसके लिए कम तपस्या की है? ब्याह का खर्च ही वह कहाँ से लाता?'

'वह मैंने नहीं दिया। टरेसा ने कहा हो तो झूठ कहा है। वह उसे उसके किसी पहलवान दोस्त ने दिया है। रहा सवाल मेरे जाने का, सो चला जरूर जाता भी, पर वह तो मेरे नाम तक से भड़कता है न!—कला की तरफ से तो—तुम जानती हो न, टरेसा ने क्लारा का नाम भी कलारानी कर दिया है।—उसकी तरफ से तो टरेसा होगी ही, सत्यप्रकाश की तरफ से भी उसके मित्र होंगे ही।'

'क्लारा की माँ नहीं होगी क्या?'

'शायद न हो। चाहती थी कि शादी किसी चर्च में की जाए पर सत्यप्रकाश माना नहीं।'

'इससे क्या अन्तर हो जाता?—लड़की है तो आखिर ईसाई ही न।'

'उसके चेहरे पर लिखा हुआ है क्या? रजिस्टर तक में तो वह अपने दस्तखत कलारानी के नाम से करेगी।'

तमसा के मुँह पर व्यंग की मुस्कान फैल गई, बोली, 'नाम तो ठीक, पर संस्कार? कहोगे, वे कुछ होते ही नहीं!—अच्छा, ऐसा ही कोई अच्छा-सा नाम टरेसा के लिए भी खोज रखो न।'

'क्यों?—उसे तो अपने मजहब से ऐसा कोई रोष नहीं है।'

'रोष उसे न हो, पर विवाह तो करना है न उसे।'

'करना चाहेगी तो अपने ही मजहब में क्या अच्छा पात्र नहीं मिल जाएगा?'

'मिला होता तो अब तक कर न लेती?—तुम्हीं ने तो बताया था कि माँ-बाप उसके भी नहीं हैं।'

'उसका भार ढोने का इरादा है क्या?—उसने भी तो तुम्हारे बेटे का भार लिया है।'

'यूँ ही सही, कुछ कर्तव्य तो हो ही जाता है हमारा। और, परिस्थितियों से मजबूर चाहे हो गई हो, पर लड़की वह तेजस्वी है। नहीं क्या?'

'तभी तो टूटी नहीं। प्रशंसा नहीं करोगी उसकी बहादुरी की ?'

'तुम करते हो न !–वह भी तुम्हारी कम नहीं करती !–सचमुच, वह तुम्हारे लिए ही गढ़ी गई है।'

महेश्वर मुस्कराया, 'नाम अगर उसका तमसा हो, टरेसा नहीं।'

तमसा को भी मुस्कराना पड़ा, 'ठीक है। नाम उसका तमसा हो जाएगा। मैं उसे राजी कर लूंगी।'

'और मुझे राजी करने की जरूरत भी नहीं समझती ?–जानती हो ? उलटे घड़े पर पानी नहीं टिकता।' और उठ खड़े होकर बोला, 'अच्छा, चलूं फिर।'

'कहाँ ?–उसी ओर ?'

'क्या करूँगा वहाँ जाकर ?–देखना चाहूँ भी तो किस अधिकार से ?'

'उसके पिता के समान हो तुम भी तो !'

'पर उसकी माँ को ही जब मोह न हो !–नहीं, वहाँ नहीं जाऊँगा। मटरगश्ती तो है न ? जानता हूँ, टरेसा भी नहीं मिल सकेगी आज !–खूंटा तो है नहीं कि बँधा हुआ होऊँ कहीं !–तुम्हारे प्रखर प्रकाश में आँखें चौंधिया जाती हैं। और कुछ देर रहा तो तुम खुद ढकेल दोगी।'

'ढकेल सकती हूँ मैं ?' फिर कुछ सोचकर कहा, 'मैं ही तो तुम्हारे आश्रय में पड़ी हूँ !–बैठो, बैठो महेश !–घर तो है ही तुम्हारा।'

महेश्वर बैठ गया और बोला, 'जानती हो न, बिन घरनी घर भूत का डेरा !–अपने लिए क्या घर और क्या बाहर ?–मेरा घर ?–ईंट-पत्थर-चूने का, तुमने आकर इसमें कुछ प्राण प्रतिष्ठा कर दी है।–बस, आगे इसका इतिहास नहीं है।'

'आगे इतिहास रच सकते हो !–टरेसा तुम्हारे सर्वथा उपयुक्त पात्री है महेश।'

'मेरे उपयुक्त कौन है यह मैं ही जान सकता हूँ !–छोड़ो इन बातों को !–सत्यप्रकाश के बारे में आगे क्या सोचा है ?'

'उसका मुझे कुछ अधिकार है क्या ?'

महेश्वर मुस्कराया, मेरे बारे में खूब सोच सकती हो, और उसके बारे में नहीं ?'

'उसके बारे में तुम सोचो, टरेसा सोचे ! जो कुछ उसके लिए तुम दोनों ने किया है, कुछ अधिकार से ही तो किया है। विवाह के बाद तो लड़का यूं ही

वहू का हो जाता है !—कला क्या नाम बताया न ? लड़की चतुर है, अपनी राह आप वनाएगी। उसे पाकर सत्य को मेरी जरूरत भी शायद न रहे।'

'उसकी गृहस्थी में क्या तुम कुछ भी योग देना नहीं चाहती ?—लड़की तुमने देखी ही है, अपनी तौर पर परखा भी होगा ही। क्या वह तुम्हें सुख नहीं पहुँचा सकेगी ?'

'सुख प्राणी के भाग्य में कहाँ है महेश ?—देखा है किसी को सही माने में सुखी कभी ?'

'क्यों ?—मुझे ही देखो। मुझे क्या दुःख है ?'

'इस तरह दूसरों को, और अपने आपको भी भुलावा देना कठिन नहीं है महेश ! जिसे भी तुम सुख मानो, एक भुलावा ही तो है वह ! और हर भुलावा सचाई प्राप्त करने के प्रयत्न को अपने मार्ग से हटाता चलता है—'

'क्या है वह सचाई ?'

'अपने से ऊपर उठकर देखने से ही दिखाई देगी। गौतम बुद्ध ने समझा था उसे, और राज-पाट, घर-द्वार छोड़कर वे उसकी खोज में निकल पड़े थे। वे जान गए थे कि यह जीवन ही दुःख का मूल है।'

'पर तब भी जीवन का स्वेच्छा से त्याग नहीं किया उन्होंने, अनात्मवाद का झण्डा वुलन्द करके भी। अनाहार से शरीर सुखाया, तपस्याएँ कीं, पर आखिर किसलिए ?—अपने छोड़े हुए राज्यत्व का ही विकल्प, एक सम्प्रदाय चलाकर दूसरा वैसा ही फकीरी—राज्यत्व नहीं प्रवर्तित किया ?'

'किया है। पर अनात्मवाद या अध्यात्मवाद, मूल में एक ही तो वस्तु है। दुःख का मूल यह शरीर, आवागमन या जीवन-मरण, इस शरीर ही का तो धर्म है। आँखें खोलो तो दिखाई दे जाता है, वन्द कर लो तो कुछ नहीं।—अनात्म या अध्यात्म, ये आत्मा के नहीं, परमात्मा के जानने का विषय हैं, और वही इसे जान सकता है।—सुख है तो परमात्व तत्व को ही है—किन्तु निर्बाध सुख भी सुख कैसे है ? निर्बाध सुख परमात्मा भी कहाँ चाहता है ?—इसीलिए तो अपने अंश को बिलग करके अलग सृष्टि का निर्माण करता है। अंश अपनी अपूर्णता में छटपटाता है, और वह स्वयंपूर्ण अपने कौतुक में, लीला में, उस अंश को, जीव को अपने से दूरतम करता जाता है, ताकि वह और छटपटाए। जीव अगर अपनी नियति को कौतुक समझ ले तो फिर दुःख कहाँ है ?—अपने को अनात्म, अपूर्ण मानकर ही तो वह अध्यात्म की ओर बढ़ सकता है।'

'तो फिर यह कौतुक ही सही ! कौतुक समझकर ही बुद्ध ने अगर अपना सम्प्रदाय चलाया तो हर आदमी को अपना सम्प्रदाय, अपनी गृहस्थी चलाने का अधिकार क्यों नहीं है ?'

'उसे मैंने कब इनकार किया ?–इसीलिए तो तुम्हारे बारे में सोच रही हूँ, क्योंकि तुम अकेले हो ।'

'तुम भी तो अकेली हो ।'

'तुमने ध्यान दिया होगा महेश, साधु-महात्मा अपने आपको 'मैं' कहकर सम्बोधित नहीं करते । अपने आपको तृतीय पुरुष मानकर वे अपने को कहते हैं 'यह शरीर'—जैसे यह शरीर भी उनका न हो । अपने आपको एक कौतुक तो समझते ही हैं, किन्तु साथ ही यह भी समझते हैं कि उन्हें कौतुक की दिशा में नहीं, परमात्मा की दिशा में आगे बढ़ना है । उस पथ की दिशा में उन्हें सहूलतें भी मिल चुकी होती हैं, जैसे मुझे मिली हैं । मेरा पथ दूसरा है महेश, चाहे मैं अभी उसे जान न पाई होऊँ ।

'लेकिन यही कैसे जानती हो कि तुम्हारा पथ दूसरा है ?'

'जो मेरा नहीं है, नियति मुझे उस पथ पर चलने कहाँ देती है ? बरबस मुझे खींच लेती है न । मेरे पिता परमात्मा के इस कौतुक को समझते थे । मैं भी इसे कुछ समझ सकूँ, इसलिए नियति ने मुझे उनकी कन्या बना दिया । कौतुक की व्याप्ति को समझूँ, इसलिए संसारधर्मी माँ दी गई मुझे ! इसीलिए मैंने रूप पाया, यौवन पाया, पति पाया, पुत्र पाया । पर कौतुक में कहीं भूलकर फँस न जाऊँ, इसलिए दैन्य दिया, पति और पुत्र की वंचना भी पाई—'

'वंचना ?'

मानों अपने सारे अस्तित्व को दबाकर उसके सीने से एक लम्बी साँस निकली और उसने कहा, 'अपनी कहानी नहीं सुनाई न मैंने कभी । कहानी ही तो है, भोगा हो चाहे मैंने ! हर भोगी हुई अनुभूति कहानी ही तो है, कौतुक ही तो है,— दूसरों के लिए ही नहीं, अपने लिए भी, यदि अपने से ऊपर उठा लिया जाए ।— अपने से उठा हुआ वह परमात्मा ही तो सबसे बड़ा कहानीकार है ।'

'कहानी की तुम्हारी परिभाषा सचमुच साहित्य की कक्षा में पढ़ाने लायक है, लेकिन तुम्हारी कहानी तो मैं भी जानता हूँ । मेरी बहनों ने भी वह कहानी जियी है । नारी की एक ही तो कहानी है । पुरुष उसे लिखता है, अपनी कामना-वासना के अनुसार हमेशा उसे तोड़मोड़ कर, ठोकपीट कर गढ़ता है । यही न ?'

'पुरुष ने नही, मेरी कहानी गढ़ी है नियति ने । ब्याह का कथानक तो तुम सुन ही चुके हो । कहोगे वह तो सुख का प्रारंभ था न । समझी मैंने भी तो उसे वास्तविकता ही थी । पर वास्तविकता हो तो कहानी नहीं बनती । वास्तविकता की भ्रांति जितनी अधिक हो, कहानी उतनी ही अच्छी मानी जाती है । कहानी सुखमें पैदा भी तो नहीं होती न । सृष्टिका रहस्य भी सुख में कहाँ है ? बस, उस स्वप्नकी

एकही तो प्रतीति है यह सत्यप्रकाश, या फिर पिता के दिए संस्कृत के प्राचीन बोध को अंग्रेजी का दिया नया प्रकाश–'

'तो तुम अंग्रेजी पहले से जानती हो ?'

'नहीं। वह कहाँ से जानती ?–वह पतिदेव जानते थे। न चाह कर भी सूर्य प्रकाश फैलाता है न ! पत्नी वैसे भी पतिकी उपलब्धियोंमें भागीदार हो जाती है। फिर उनका तो नाम भी वही था।'

'ज्ञानप्रकाश न ?–तुमने वताया था पिताकी तरह वे भी कविता करते थे।'

'सरस्वतीके पुत्र शायद लक्ष्मीको नहीं सुहाते।–एक अध्यापककी आर्थिक स्थिति––'

अच्छी नहीं होती। पर सरस्वतीका पुत्र भी तो लक्ष्मीकी चिन्ता नहीं करता। वरना…'

'तब लक्ष्मी ही क्यों उसकी चिन्ता करे ? लेकिन सरस्वती मस्तिष्क ही तो भर सकती है, पेट नहीं। वहुत हुआ तो मस्तक में विभ्राट भी पैदा करदे सकती है। तब ?'

'सत्यप्रकाश के पिता को पागलपन के दौरे आते थे, तुम वता चुकी हो।'

तमसा ने एक लम्बी साँस ली। दृष्टि को दीवार पर फेंक कर कहा, 'गाँव में वाप-दादों का खरीदा एक खपरैल था। स्वर्गसुख वहीं पाया था। सत्य की नाल भी वहीं गड़ी थी।'

'गड़ी थी ?– अव क्या हुई ?'

'मकान ही नहीं रहा तो अव वह कहाँ रही होगी ?– नौकरी शहर में यहाँ थी, और गाँव के घर में माँ अकेली। उसे भी साथ यहीं रखना चाहते थे, पर बाप-दादाओं की अपनी जमीन छोड़कर शहर आने को वे तैयार नहीं हुईं। मैं भी चाहती तो यही थी कि वहीं उनके चरणों में रहकर उनकी सेवा करूँ किंतु वे ··' तमसाने मुँह नीचा कर लिया। संकोच से वह आगे कह न सकी।

'सत्यप्रकाश के पिता तुम्हें छोड़ने को राजी नहीं हुए।– तुम्हें पाकर कौन छोड़ना चाहेगा तमसा ? वड़ी तपस्या और भाग्य से मिलती हो तुम।'

'मोह भी तो हो सकता है उनका, वल्कि लोभ ही कहो उसे, लोभ होनेपर जिस तरह वस्तुको दूसरों की दृष्टि से भी छिपाए रखने की वृत्ति होती है न !'

'तुमने कहा भी तो था न कभी, रूपवती भार्या शत्रु।'

वहुत अच्छा नहीं लगा तमसा को, पर उसने कहा, 'जो हो। माँ को भी वह कम नहीं चाहते थे। और इसी बीच जब माँ जी एकाएक चल बसीं–अन्तिम समय में वे पहुँच भी नहीं सके और गाँव वालों ने ही उनका दाह संस्कार कर दिया तो उनके ऊपर वहुत अधिक प्रभाव पड़ा, यहाँ तक कि उनका केन्द्र ही डोल उठा।

सनक के दौरे पागलपन में बदलने लगे। घर में पत्नी तो खैर, सहने के लिए ही होती है, पर बाहर स्कूल में जहाँ देश की भावी पीढ़ी को गढ़ना होता है, कौन सहता उनके पागलपन को ? एक दिन नौकरी से भी हाथ धोना पड़ गया !

'पर प्रारंभ में तो इलाज भी हो सकता था न !'

'इलाज ?–पैसे कहाँ थे ?–फिर सिर पर एक नन्हें बच्चे का भार, पहले तो उसी की चिन्ता करनी थी ! अपनी माँ से कहसुन कर किसी तरह एक सेठ के यहाँ खाना बनाने की नौकरी जुटाई, तभी जाकर तो कुछ इलाजका सोच सकी !'

'तुम्हारी बड़ी बहन, क्या नाम उज्वला बताया था न, उसने सहायता नहीं की ?'

'ब्याह के बाद उसने तो कभी पूछा तक नहीं था। उसकी इच्छा के विपरीत जो ब्याह हुआ था।'

'बहन अब भी है ?'

'मेरे लिए तो नहीं के समान ही है। सन्तान उसे कोई नहीं हुई तो माँ ने कहा भी था कि सत्य को अपनी ही सन्तान समझ कर क्यों नहीं उसका भार ले लेती ? आखिर रक्तका सम्बन्ध तो था ही, सामर्थ्य भी थी। पर, शायद हम लोगों को चिढ़ाने के लिए ही उसने उसी समाज से एक लड़का गोद ले लिया। समारोह भी मनाया लेकिन मुझे नहीं बुलाया। बल्कि माँ के साथ मैंने तो उस अवसर पर लड़के के लिए उपहार भी भेजा' पर उसने लौटा दिया। बस, उसके बाद तो पता भी नहीं है।'

'सत्यप्रकाश को मालूम है सब ?'

'मैंने उसे बताया ही नहीं। क्या लाभ होता ?—समझ आने पर तो कष्ट ही पाता न।—बचपन में ही जब सत्य बीमार पड़ा और इलाज के लिए भी जब पैसे नहीं थे तो उन्होंने सुझाव दिया कि गाँव का घर बेच दिया जाए। मैं कैसे स्वीकार करती ?—सत्य बड़ा हो तो सिर छिपाने के लिए कहीं तो उसे जगह बता सकूँ ?—इधर-उधर से उधार कर किसी तरह दवा की जुगत तो बिठाई, पर भाग्य की बात, उन्हें भी उसी समय सनक सवार हुई कि मकान बेच ही दिया जाए। मिन्नतें कीं और रोका तो रुष्ट होकर मुझपर हाथ भी छोड़ बैठे। रातको जब सोई पड़ी थी तो जाने कब उठकर रात की गाड़ी से चल दिए गाँव।'

'कहाँ है वह गाँव !'

'मंगलियावास का नाम सुना है ? सूरजपुर जिले में पड़ता है।'

'सूरजपुर तक तो हो आया हूँ।'

'वहाँ से भी आगे दो-तीन घण्टे का रेल मार्ग है। रेल से उतर कर बस से छह-सात मील जाना होता है। दूर-दराज का एक देवर वहीं बस-अड्डे पर चाय की दूकान लगाता था। एक हफ्ते बाद उसने माँ को यहाँ पत्र लिखा, बेरंग, कि पागलपन का दौरा पड़ने से भैया को वहाँ पुलिस ने हिरासत में ले लिया है, और जल्दी ही वहाँ से उनका चालान कहीं कर दिया जाएगा।'

'यानी बेरंग पत्र तुम्हारी माँ के नाम आया, तुम्हारे नाम नहीं ?'

'माँ एकाध बार वहाँ हो आई थी। गाँव-देहात के वातावरण से उसका अच्छा परिचय भी था, पर जाना मुझे ही पड़ा। जाकर देखती हूँ तो सबसे बड़ा दुश्मन वह देवर ही निकला। मकान बेचने का सुझाव भी उसी ने दिया था उन्हें पत्र लिखकर पहले से ही। किसी रँगरेज को बेचकर पैसा सब खुद हजम कर गया और उन्हें पागल बताकर पुलिस के हवाले कर दिया ताकि बिना किसी कठिनाई के पैसा पच जाए। मैं पहुँची तो पता लगा कि वहाँ से उन्हें यहाँ के लिए चालान कर दिया है, और यहाँ लौटी तो देखती हूँ यहाँ पहुँचे ही नहीं।—तीन दिन बाद पता लगा कि सूरजपुर थाने में बीमार पड़े हैं।—उसी हालत में फिर सूरजपुर जाना पड़ा। और भाग्य की बात, गई बार तो सत्य को साथ ले गई थी, इस बार उसे माँ के पास छोड़ गई।'

'उसमें भाग्य की क्या बात है ?—स्वाभाविक यही तो था।'

'स्वाभाविक तो था पर पुत्र होने की सार्थकता से भी जो वंचित हो गया।'

'क्या मतलब ?'

'दाह-संस्कार में पिता को पुत्र के हाथ का स्पर्श मिल जाता।'

'कहती क्या हो ?' चौंक कर महेश्वर ने सिर उठाया। अँधेरा बढ़ चला था, पर उस अँधेरे में भी तमसा के कपोलों पर लुढ़क चली अश्रुधारा चमक उठी थी। गले के अवरोध को थूक निगलकर साफ करते हुए तमसा ने किसी तरह कहा, 'पुलिस अपनी हरकतों से क्यों बाज आने लगी ?—बेबात की मार से उनके पैर की हड्डी टूट चुकी थी, और पीठ पर रिसते हुए घाव पड़ गए थे। उसके ऊपर, सरकार का कदन्न खाकर पेचिश आक्रमण कर बैठा था।'

साँस रोके महेश्वर तमसा की कथा सुन रहा था। बोल कुछ भी नहीं सका। कुछ रुक कर तमसा ने ही कहा, 'सूरजपुर पहुँच कर जो हालत देखी उसे स्मरण कर आज भी कँपकँपी छूटती है महेश ! पानी भी मानो उसी रात बरस जाना चाहता था। सीलन और भयंकर दुर्गन्ध से भरी कोठरी में गीले कम्बल में लिपटे बेहोश पड़े थे। जगाने के लिए बदन पर जरा हाथ लगाया तो पीड़ा से ऐसे चीखे मानो अंगार छू गया हो। न जाने कहाँ-कहाँ कैसी मार पड़ी

थी और कहाँ-कहाँ कितनी हड्डियों ने जवाब दे दिया था, यह डाक्टर भी नहीं बता सकते थे ।—माँ से लेकर कुछ रुपए साथ ले गई थी, अधिकारियों को चटाकर उन्हें हिरासत से तो छुड़ा लिया, पर सफर लायक हालत तो थी नहीं। सरकारी अस्पताल ले गई, पर गरीब की कौन कहाँ सुनता है ?—दिन भर वरामदे में पड़े रहने के बाद किसी नौसिखिए डाक्टर ने देखकर कहा कि बीमारी बड़ी है, बड़ा डॉक्टर ही आकर जाँच करेगा । रंगीन पानी जैसी कुछ दवा पिलाकर चला गया । वड़ा डॉक्टर दूसरे दिन नौ बजे तक आता, पर तव तक क्या मौत राह देखती है ? पौ फटने के पहले—मेरे लिए धरती फट गई महेश—'

तमसा आगे बोल नहीं पाई । महेश्वर भी क्या कहे, समझ नहीं पाया। सारे कमरे में मृत्यु साकार होकर फैल गई । अँधेरा मूर्तिमान हो उठा ।

साहस करके महेश्वर ने ही मौन तोड़ा, 'धीरज रखो तमसा । गनीमत है कि वह दुस्सह घटना बीते युग की हो गई । जाने दो, याद भी क्यों करना चाहिए ऐसे क्षणों को ?'

'भूलते कहाँ हैं ऐसे क्षण ?—यह पीड़ा क्या कभी मिटती है कि एक पत्नीको ही अपने पतिका चिता-संस्कार करना पड़े और चाह कर भी वह सति न हो पाए ?—दाह-संस्कारों के लिए भी……'

महेश्वर उठ खड़ा हुआ और बोला, 'कोई अर्थ नहीं है तमसा, बीती बातें याद करने का । तुम तपस्या की आँच में तपकर कंचन होकर निकली हो । मुझसे तुम्हें क्या शक्ति और बल मिलेगा ? नियति कहकर तुम उसे पहले ही इंकार कर चुकी हो । प्रकाश किए देता हूँ, अपने वालकृष्ण को देखकर कुछ बल जुटाओ ।' और उसने बटन टीप दिया । कमरे में हल्का प्रकाश फैल गया । अलमारी के ऊपरी हिस्से में घुटरनोंके वल आगे बढ़कर गोद में आने को आतुर, शिखि-पुच्छ समोज्वल भगवान बालकृष्ण की मूर्ति झलक उठी तो तमसा की आँखें फिर भर आईं । कमरे के बाहर निकलते हुए महेश्वर दरवाजे के किवाड़ भिड़ाता गया ।

तमसा की आँखें उसी मूर्ति पर टिकी रहीं । यही तो नियति है उसकी । और किस मार्ग पर जा सकती है वह ?—खींच नहीं ली जाएगी वह अन्य किसी मार्ग पर बढ़ने से ? पति को बचाने की क्या कम साधना की थी उसने ?—और पुत्र के लिए ही तो जीवित रही थी वह, नहीं तो उस चिता में प्रवेश कर जाने की कितनी उमंग उसके हृदय में लहरा उठी थी ?—कहाँ है वह पुत्र आज ?—लेकिन ये वालकृष्ण—क्या सत्य ही नहीं उसकी गोद में आने के लिए मचल रहा है ? उठे ?—भरले उसे अंक में ?—छत पर वह किसकी आँखें तरेर रही हैं उसकी ओर ?—कई बार देखा है उन आँखों को। एक समय था जब उसकी ही मूर्ति उनमें

प्रतिच्छायित हो उठती थी। पहली बार डरी थी वह सूरजपुर थाने की सड़ी बदबू से भरी उस कोठरी में इन आँखों से, जब वे क्षत-विक्षत जर्जर शरीर लिए तमसा के झक-झोरने से मौत की प्रतीक्षा में खुली थीं। उन्होंने तो बताया था कि जब भी वे आँखें खुलती थीं, तब डंडा हाथ में लिए यमराज का वह वर्दीधारी दूत उनके सामने खड़ा दिखाई देता। डॉक्टर भी आता तो उनके घाव कुरेद कर उन्हें स्वयं मृत्यु दूतका ही आभास देता। विवशता से भरी वे आँखें आज भी मानो वही प्रश्न दुहरा रही हैं, 'सत्य को लाई हो तमसा ?'—क्या उत्तर दूँ ? उस बार तो कह भी सकी थी, कि माँ के पास छोड़कर तुम्हारी सुधि लेने दौड़ी आई हूँ। पर आज ?—न जाने किस कुल-शीलकी लड़की के आँचल में लिपट गया है। पूर्वजों का नरक से उद्धार करने का जिस पर भार हो, ऐसे पुत्र से क्या उन्हें पिंडदान प्राप्त होगा ?—यह क्या है स्वामिन्, तुम चिता में जले जा रहे हो और मैं टुकुर-टुकुर देख रही हूँ ?—क्या करूँगी इस जीवन को सहेजे रखकर ? सत्य के लिए ?—उसे—कहाँ है उसे अब इस हतभागिनी की जरूरत ?—ठहरो न, अकेले तुम यह आग कैसे सह सकोगे मेरे नाथ ?

आवेश में वह उठी, और उसने बत्ती बुझा दी। क्या हो गया है उसे ?—क्या वह भी उनकी तरह पागल होती जा रही है ?—सत्यका विवाह हो रहा है।—क्या स्वर्ग में उनकी आत्मा प्रसन्नता नहीं अनुभव कर रही होगी ?—चाहे जिस कुल-शील की हो, देखने में लड़की कितनी सलोनी है ?—कहाँ है बन्धन पुरुष को कुल-शीलका विवाह में ? अनुलोम विवाह की शास्त्रों में भी तो व्यवस्था है।—ब्याह तो हो भी चुका होगा—दोनों मिलकर शायद टरेसा के चरण छुएँगे, फिर नोरा के भी।—न छुए कोई तमसा के चरण, उसका आशीर्वाद क्या शब्दों की अपेक्षा रखता है ? हे अन्तर्यामी, उन बच्चों की रक्षा करो, उनके जीवन में वह कशमकश पैदा न होने पाए जो हमारे जीवन में पैदा हो गई थी।—आज अगर संभव होता तो क्या उनकी सुहाग-शैया का आयोजन वह स्वयं अपने हाथों न करती ? महेश अवश्य ही कहीं से देख रहा होगा। कितना कुछ नहीं किया है उसने ?—किस अधिकार से डाल दिया है उस पर इतना भार तू ने ? क्या किया है उसका हितसाधन तू ने ?—चाहा था उसने—शरीर ?···क्या है इसमें ? कितना तुच्छ, कि ऋषि-मुनि उसकी चिन्ता ही नहीं करना चाहते। पतिव्रता स्त्री तो उसे चिता में पति के साथ ही जला देती। नश्वर तो है ही। आज जैसा कुछ हो, कल यूं भी शुष्क, निर्मान्स होकर लटकता चला जाएगा।—कैसा व्यंग है कि आत्मा से तो चाहो, और शरीर से परे हटाते रहो। यही तो किया है उसने।—आत्मा से ! जो बिक जाए, शरीर की रक्षा के क्या मानी है उसके लिए ? शरीर समर्पित न हुआ हो, आत्मा तो हुई है। शरीर पहले ही समर्पित हो चुका है, पर वहाँ आत्मा

भी तो समर्पित हुई थी। महेश व्याह नहीं करेगा, टरेसा चाहे जितना प्रयत्न कर ले।—नहीं करेगा केवल तमसा के कारण ही तो। तमसा चली जाए, मर जाए, इस शरीरको नष्ट करदे तो क्या टरेसा की बाधा हट जाएगी?

कैसी कृतघ्नता है?—पवित्रता क्या है?—शरीर की या आत्मा की?—यदि कभी महेश जबर्दस्ती कर बैठे, तो क्या उसका निवारण किया जा सकेगा?—उस रात,—नहीं, वह जबर्दस्ती नहीं थी।—क्या निमंत्रण ही नहीं था वह? कहाँ सोई हुई थी तब तमसा की आत्मा? सोई हुई तो थी ही, तभी तो नहीं जान पाई कि क्या कर रही है वह? लेकिन तब सोए हुए शरीर को जगाया किसने था? कौन है यह पहरेदार?—यह अहम्, अहंकार, उसके शरीर का है या आत्मा का? क्यों हार जाता है महेश का पुरुष उसके अहंकार से? किसलिए बचाए रखा है इस दुर्ग को? दुर्ग, दुर्ग के लिए तो नहीं होता वह होता है दुर्गपति के लिए।—वह दुर्गपति…कहाँ पहुँच गई अभागिनी विचारों में ही। शांतं पापं, शांतं पापं।—हे बालकृष्ण, मेरी रक्षा करो। त्राहिमाम्।

न जाने कब तक उस अँधेरे में डूबी तमसा प्रत्यक्ष-परोक्ष मन के इन्द्रजाल देखती रही और कब उसे नींद आ गई, उसे पता ही नहीं रहा।

नींद की गहराई में खोकर व्यक्ति कालातीत हो जाता है। शरीर के साथ उसका क्या सम्बन्ध रहता है यह कौन जानता है? शरीर को झकझोर कर मनको चैतन्य किया जा सकता है, पर निद्रावस्था में वह शरीर की परिधि में तो नहीं रहता। किस स्तर पर पहुँच कर चेतना क्रियाशील होती है इसका भी कुछ निश्चय नहीं है। सृष्टि के भौतिक नियम उस पर लागू नहीं होते। अणु से अणीयान, महत से महीयान, काल-स्थान से परे, गति-सीमा से त्वरित, यम-नियम के बन्दीगृह से मुक्त, मन तब सचमुच निराकाश को चूमने लगता है। कहाँ है तमसा?—कहाँ है उसका शरीर, कहाँ है उसका मन?—यहाँ-वहाँ, दायाँ-बायाँ, ऊपर-नीचे, कहीं है कुछ?—जहाँ भी उसकी चेतना पहुँच पाती है, बस वहाँ वही वह तो है। सारे ब्रह्माण्ड में समाई-छाई हुई। उसका मधुर-मदिर-प्रश्वास उनचास पवन होकर वह रहा है, उसकी दृष्टि के आकाश का कहीं छोर नहीं है। उसकी देहकांति की रश्मियों से विश्व का संभार प्रदीप्त गतिशील है, और उसके कोमल-किशलय के त्वक्-स्पर्श मे सारे जगत की मूर्च्छना छाई हुई है। उसकी अधर-स्मिति में लय है, चिक्कण प्रलंब घन केश-राशि में स्थिति है, और भ्रू-संकोच में प्रलय है। निद्रा नहीं, सुषुप्ति नहीं, वह एक अद्भुत अतीन्द्रिय जागृति के मनोलोक में है।—जीव

के नहीं, ब्रह्म के रूप में, आत्मा के नहीं, परमात्मा के रूप में, खण्ड नहीं, पूर्ण, समग्र होकर, व्याप्त है वह चारों दिशाओं में !

उन्मुक्त है वह। जिसका अवधान सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त हो, वह क्या एक सूखे तख्त की नग्न-निर्मम पीठ पर सोई हुई है ?—कमरे की ये चार दीवारें क्या हैं उसके लिए ?—यह आकाश, यह धरित्री, यह सूर्य, यह चंद्र, कोटि-कोटि नक्षत्र-लोकों से भरा यह ब्रह्माण्ड, किसमें साहस है उसकी सीमा होने का ?—पति, पुत्र, माँ, बाप, बहन,—कौन बाँध सका है उसे ?—वह क्या निरी नारी है ?—प्रकृति नहीं, वह पुरुष है संवित नारीको अपने में समोए हुए, अर्द्धनारीश्वर !

कौन हो तुम ?—मेरी भूत-प्रदीप्ति का प्रक्षिप्त प्रकाश-कण ?—मैं निरायाम हूँ, शक्ति का अखूट भण्डार। लीला-लालसा में तुम्हें प्रक्षिप्त किया है।—मुझे ही प्रकाशित करना चाहते हो ?—तुम्हीं ने तो कहा था न, रूपवती भार्या शत्रु !—पागल ! प्रकाश पाकर भी शत्रु और मित्र की कैद का खुला द्वार नहीं देख सके न ! अंधी चेतना भार नहीं होती तो क्या होती है ?—सह नहीं सके न ! क्या करती, यदि इन्हीं हाथों चिता-संस्कार नहीं कर देती ?—दया-माया, क्या ये सब क्षेपक नहीं है स्वास्थ्य के ? ज्ञान पाने के लिए अज्ञान क्यों बाँधूँ ?—सत्य के लिए क्या असत्य को आश्रय देना होगा ?—नहीं, मैं निषेध के क्षुद्र बन्धनों में नहीं बँधती।

हट जाओ महेश, तुम नहीं जानते कि मैं आग हूँ। मुझसे खेलोगे तो भस्म हो जाओगे !—मैं संहार की शक्ति हूँ। मुझे छुओ मत अगर अपना कल्याण चाहते हो।

—कल्याण ? कल्याण कौन चाहता है यहाँ पगली ?—मैं तुम्हें चाहता हूँ।

—पर जानते नहीं मैं आग हूँ ?

—मैं आग से ही खेलता रहा हूँ तमसा। और भस्म का आग भी क्या बिगाड़ सकती है ? बल्कि सुनो, पाकर तो मैं तुम्हें भी अपनी ही आँच में जलते रहने से बचा सकता हूँ।

—न, न। पास नहीं, दूर से ही बात करो। मुझे बचाओगे, आग से ? वह जलती है, तभी तक आग है। बुझ जाए तो राख होती है। जलती रहूँगी तभी तो जला सकूँगी।

—लेकिन जलने के लिए भी तो कोई हो।—मैं वही हूँ, तुम्हारा द्वैत। जलाओ उसे—अद्वैत होना चाहती हो न ? लो, मैं छूता हूँ तुम्हें।

हड़बड़ाकर तमसा कठोर तख्त पर उठ बैठी—न न, आगे मत बढ़ो महेश।

—भस्म हो जाऊँगा यही न ?—और मुस्कराता हुआ वह आगे बढ़ा,—कैसी लुनाई है यह तुम्हारे शरीर की।—अरे, तुमने तो वस्त्र भी खोल रखे हैं।—यह स्पर्श क्या यूंही छोड़ा जा सकता है ?—भस्म बनाकर ही सही, लगाओ तो अपने तन से।

तमसा त्रस्त होकर उठ खड़ी होने को हुई, पर यह क्या ? श्लथ साड़ी नीचे खिसक पड़ना चाहती है।—उसकी चोली कहाँ गई ?—उस भयानक गरमी में खोलकर रख दिया था न। दोनों हाथ उलझाकर उसने कंधे पर रख लिए। तख्त के पास खड़ा महेश्वर मुस्करा रहा था।

—तुम्हें लज्जा नहीं लगती ?

—लज्जा !—खिलखिलाकर हँस पड़ा वह—लज्जा, संकोच, क्षेपक नहीं हैं क्या ये स्वास्थ्य के ? आगे बढ़कर उसने तमसा के कंधे से उसके हाथ छुड़ा लिए। वाधा हटते ही दोनों कठोर-गोल मस्त घोड़े उछलकर हिनहिना उठे। हाथ थामे हुए ही वह बगल में बैठ लिया और बोला, 'यह शरीर तो तुम नहीं हो तमसा !—इसे अगर मैं सहेज लूं इस तरह'—और तमसा के थामे हुए हाथ ऊपर उठाकर उसे अपने सीने से सटा लिया। तमसा ने आँखें बन्द कर लीं। महेश्वर कह रहा था, 'पाप और पुण्य यहाँ नहीं हैं तमसा।—न हो चेतना, पर शरीर तो है।—पुरुष ही पुरुष हो तो चेतना की भी क्या जरूरत है ? चेतना होने से ही तो प्रकृति को अस्तित्व में आना पड़ा है। और क्या होगा सृष्टि का रहस्य ? तुम नहीं जानती ? सत्य को तुमने जन्म दिया है।—क्या उसे मिथ्या कह कर मानना होगा ? मिथ्या की नहीं, हम सत्य की सृष्टि करते हैं तमसा, सत्य की।'

तमसाने अनुभव किया कि वह विवश होती जा रही है। पुरुष नहीं, वह प्रकृति है, सृष्टि की जननी। प्रकृति के बिना पुरुष क्या है, तो पुरुष के बिना प्रकृति भी क्या है ? कौन देखता है अद्वैत को ?–अपने ही पर क्या यह अपना बोझ नहीं ?—एकोहम् वहुस्याम् !—शरीर पर अँगुलीस्पर्श का यह अमृत-लेप, विवस्त्र देह के इस विकर्षण-स्पर्श में उस विवस्त्र देह का संकर्षण-स्पर्श !—क्या है यह ? प्रलयंकर रुद्र का ज्योति-स्तंभ ! वह उड़ती जा रही है, ऊपर या नीचे ?—शून्यकी निरायाम भूमि है यह तो !–कहां है वह ? यह भार क्या अपना ही नहीं है ?–कितनी गुरुत्व-शक्तियोंका आघात झेला है उसने ?—यह भार है कि भार-हीनता ?—ऊपर उठतीही चली जारही है, उस आदिम-विस्फोट के प्रचंड धक्के को कैसे सहे ?—दिन-रात, अँधेरा-उजेला, कहाँ, कहीं तो कुछ नहीं है ?—यह शरीर, यह आत्मा—कहीं कोई आधार नहीं। सब क्षेपक हैं, सब ! उसका बाहुपाश और दृढ़ होगया अनायास !

—क्यों ढकेल रहे हो महेश, इस महा भयानक अँधेरे कोटर ही ओर ? मैं गिर रही हूँ, लड़खड़ा रही हूँ। सम्हल नहीं सकती।–कौन अवश खींचे लिए जारहा है यह?—मुझे सम्हालो, सम्हाले रहो महेश !—आँखों के सामने यह घना अंधकार क्या है ?

यह एक नया लोक है तमसा; तुम्हारे अध्यात्म का! इसके महत्व का, इसके गुरुत्व का आभास अहम् के विनियोग के बिना संभव नहीं है, इसमें सम्पूर्ण समर्पण के सिवा चारा नहीं है!—पूर्णात्पर पूर्णमिदम्!—यह अंधकार नहीं, परम प्रोज्वल दिव्य प्रकाश है! दिखाई नहीं देगा जबतक कि अपनापा खो न दिया जाए! इसमें इतनी गुरुता है कि यह अपनी रश्मियों के विकीरण को भी अपने में ही खींच लेता है, तुम्हारी और मेरी बिसात क्या है? डरो मत! इसीलिए तो यह कृष्ण है, अजर-अमर, स्वयं तुम्हारे बालकृष्ण!

—तब मुझे भय क्यों लगता है महेश?

—यह भी तुम्हारा द्वैत है! नष्ट होने दो, जलकर भस्म होजाने दो इसे! मैं और तुम अब प्रथक नहीं हैं, हम मिलकर अद्वैत हैं! इस अनंत-असीम में कहीं द्वीप नहीं, कहीं कूल नहीं, कोई मंज़िल नहीं। हम अद्वैत हैं अपनी ही चेतना में लीन।—न पुरुष है न प्रकृति है—समझती हो न? यह सीमाओं की सीमाहीन में संहिति है!—बहुत थक गई लगती हो!—यह उपधान है, मेरी जंघा नहीं। सिर रख दो, मैं थपकता हूँ, सहलाता हूँ! आँखें बन्द करोगी तो नींद आ जाएगी तमसा, सचमुच!

तमसा ने हाथ फैलाकर महेश्वर की कमर घेर ली।

मदनको बड़ा आश्चर्य हुआ कि हमेशा पाँच बजे से पहले उठकर स्नान-ध्यानसे निपट जानेवाली उसकी दीदी आज अभी तक नहीं उठी। महेश्वर कल शाम घर पर ही था। रात को जब निकला, स्वाभाविक था कि रातको फिर नहीं लौटेगा। लौटता तो भी बहुत देर से। तमसा चाय-नाश्ते से सरोकार नहीं रखती, पर महेश्वर के लिए शैया-चाय और फिर बाकायदा चाय-नाश्ता होता है। मदन कभी देर से उठता है तो तमसा ही उसकी शैया-चाय बनाकर तथा महेश्वरको पिलाकर मदन को जगाती है। चाय-नाश्ता भी वह खुद खड़ी रहकर अपनी देखरेख में बनवाती है। आज महेश्वर नहीं है इसलिए शैया-चाय या चाय-नाश्तेकी जरूरत नहीं है, पर इसीलिये वह अबतक सोई नहीं पड़ी रह सकती। अपने लिए चाय बनाकर मदन पी चुका है। क्या दरवाजा थपथपाकर जगादे? काम तो कुछ है नहीं!—अगर पूछ बैठी तो जवाब क्या देगा?

सूरज सिर पर और चढ़ आया तो मदनको चिन्ता होगई! रोग-शोक हो गया हो, तो मालूम तो करना चाहिए। मास्टर साब भी तो भोत नाराज होंगे!

बहुत मानते हैं दीदीको, ये ही क्यों, वह खुद भी बहुत मानने लगा है ! शकल ही नहीं, सुभाव भी कितना अच्छा है ! नौकर जैसा कहाँ मानती है उसे ?—मास्टर साब कभी गुस्सा होजाते हैं—पहले तो कभी-कभी हाथ भी उठा बैठते थे, तब दीदी ही तो उसकी रक्षा करती है ।

लेकिन जैसेही उसने दरवाजे पर हाथ रखा कि किवाड़ खुल गए। तो भीतर से दरवाजा बन्द नहीं था । कहीं, जब वह सो रहा हो, तभी उठकर तो नहीं उन्होंने नहाना-धोना निपट लिया ? मगर जैसे ही भीतर घुसकर उसने देखा वह सहम गया !—तख्त पर नहीं, वह फर्श पर औंधी पड़ी हुई है। सिर चारों ओर बिखरे फैले बालों से ढँका पड़ा है । साड़ी श्लथ, शरीरको बस किसी तरह ढँके हुए है ।—एक हाथ वक्ष के नीचे, दूसरा सिर के ऊपर फैला पड़ा है ! बाहुमूल से स्पष्ट है कि दीदी ने चोली नहीं पहन रखी है। कभी ऐसी त्रस्त मूर्ति तो देखी नहीं उसने तमसा की । क्यों, इस तरह फर्श पर लोटी हुई क्यों पड़ी हैं ?—नीद में तो इस तरह गिरकर पड़ नहीं सकतीं। नंगे फर्श पर गिरने से चोट भी कम न लगती ! पुकारे? इस हालत में पुकारने से अगर नाराज हो उठें ?

पुकारना ही अच्छा है, यह सोचकर सहज स्वर में उसने पुकारा, 'दीदी !'

कोई हरकत नहीं । साँस तो चल रही है । शायद सुना नहीं । क्या वदन झकझोर कर जगाए ? लेकिन छुए कैसे उन्हें ? कभी तो उसने किसीभी व्याजसे उन्हें छुआ नहीं, पैर तक नहीं। लोभ हो, पर साहस कहाँ है ? उसने फिर पुकारा, इस बार ऊँचे स्वर से, 'दीदी !—उठोगी नहीं ?'

और इस बार उसकी पुकार सुन ली गई !—तमसाने करवट बदली, सिर उठाया तो बिखरे बालोंने सारे चेहरे को छा लिया । उन्हीं बिखरी लटोंसे उत्तर आया, 'क्या है ?'

बड़ा तीखा, रूखा स्वर—कर्कश जरूर नहीं कहा जा सकता !—तबभी क्या तमसाका ऐसा स्वर कभी हो सकता है ? अनावश्यक ही सिर झुकाकर मदन बोला, 'नमस्ते दीदी, आपकी तबीयत—' बिखरी लटोंके बीचसे शायद वह मदन को देख रही हैं ! प्रथम-दर्शन पर वह कभी इस तरह नमस्कार नहीं करता, घबरा गया है । घबरा जाने जैसी वात तो है ही । वह क्या आज स्वाभाविक लग रही हैं ?—नहीं । इस तरह खोजाने से तो काम नहीं चलेगा । मदनका आखिर दोष ही क्या है ? अपनेआपको किंचित सम्हाल कर तमसाने कहा, 'मेरी तबीयत ठीक नहीं है मदन ! तू जा !'

'सो तो दीख ही रहा है दीदी ! मैं बिस्तर ठीक किए देता हूँ । ऊपर सो जाइए !—क्या सिर दुखता है ?—बाम ले आऊँ ?'

'नहीं-नहीं, मेरा सिर नहीं दुख रहा !' सहसा झल्लाकर तमसाने कहा !—सिर ?–सिर क्या, उसका सारा शरीर, उसका सारा संसार, उसका भूत और भविष्य, सबकुछ तो दुख रहा है !–बाम, क्या दुनिया का कोई मरहम उसे शीतलता नहीं पहुँचा सकता !

'आप स्नान करें तो गरम पानी रखदूँ ?'

'गरम पानी नहीं, धधकते अंगारे लाकर रखदे मुझ पर !' और सहसा वह उठ बैठी। सिर के एक झटके से सारे बाल पीठ पर हो लिए। मदन ने देखा कि गालों पर आँसुओंके परनाले सूख गए हैं, आँखोंके कोए फूले हुए हैं और आँखें शायद सारी रात जागने के कारण लाल सुर्ख होरही हैं। उसे अपने शरीर का कुछ भी चेत नहीं है, तभी तो त्रस्त आँचल के आवरण को ठेल कर खुले वक्ष की गोलाइयाँ सिर उठाए उन्मुक्ति के मदमें थिरक रही हैं !

देखकर, कि मदनकी दृष्टि उसीपर लगी हुई है तमसाने सावधान होकर आँचल समेट लिया। क्या सचमुच वह पागल होती जा रही है ?—होश क्यों नहीं है उसे ?—मदन, लड़का ही है, पर है तो पुरुष। लज्जा तो होनी ही चाहिए !–लेकिन लज्जा-लज्जा-संकोच, सब क्षेपक हैं न ?– लज्जा तो होती है शील के लिए। कहाँ रहा उसका शील ?—फिर यह प्रवंचना कैसी ?—और मदन ने देखा कि अनायास उसके ओठों पर मुस्क्यान फैल गई है !– यह क्या ?– एक पल रुदन और एक पल हँसी ?

तमसा ने कहा, 'क्या ताक रहा है ?–क्या मै⋯' सम्हल गई। वाक्य मुँह में ही रह गया।

'उधर चलकर ही आराम करलें दीदी ! वहाँ कुछ देर आरामसे लेट लेंगी तो—'

'उधर उस कमरे में ?—तेरे मास्टरके पास फिर पहुँचा देना चाहता है मुझे ?' वह गरज उठी।

'नहीं, वे तो रात से ही वहाँ नहीं हैं।'

—होगा कहाँ से ?—यहाँ इस कमरे में जो था।—आराम से लेट लूंगी ! अभी बाकी है छल ? प्रकट में बोली, 'तो तूभी मिला हुआ है षडयंत्र में।—निकल जा यहाँ से, कहती हूँ।'

यह क्या व्यापार है, मदन बेचारा कहाँ से समझता। शाम को देखा था, भली-चंगी थीं। रातभर में क्या हो गया दीदी को ? साहस कर उसने कहा, 'पता नहीं, मास्टर साब कहाँ होंगे ? इस्कूल का भी अभी बखत नहीं हुआ।—किसी डाकटर को बुला दूँ ?'

'डाक्टर ?—ओह !'—बेचारे मदन का क्या दोष है ?

'आपकी तबीयत ठीक नहीं है न ।' मदन ने जवाब दिया।

'तबीयत न ?'—और फर्श पर से उठकर तख्त पर बैठते हुए बोली, 'खराब लगती है न तबीयत ? पर डाक्टर को बुलाने की जरूरत नहीं है रे।—और तू जा।'

'इस्कूल का वखत हो जाने तक भी नहीं आए तो मैं इस्कूल जाकर उन्हें खबर कर दूँगा।—आप कुछ खाएँगी ?'

'तेरा सिर।—कहा नहीं तुझे यहाँ से चले जाने को ?—और खबरदार, कहीं भी जाकर खबर की तो।—चल, दूर हो यहाँ से—' और उसने हाथ बढ़ाकर दरवाजे की ओर इशारा कर दिया।

मदन सहम कर पीछे हट गया। कहीं किसी की हवा तो नहीं लग गई दीदी को ? कैसी बहकी बहकी बातें कर रही हैं ?—मौसी को कहूँ तो किसी जानकार को बुला देगी।

'गया नहीं अभी तक ?— ओह ! समझी। मैं निकालने वाली कौन होती हूँ, यही न ?—अच्छा, तेरे मास्टर जी का घर है। तू रह, मैं ही चली जाती हूँ।' और वह उठ खड़ी हुई।

मदन आतंकित हो गया। कहीं बाहर निकल गईं और कुछ हो-हुवा गया तो उसकी खैर नहीं है। उसने नीचे बैठकर तमसा के पैर पकड़ लिए और रुआसे स्वर में बोला, 'माफ कर दो दीदी, मैं बाहर जाता हूँ। आप कहीं मत जाइए।'

तमसा ने देखा कि मदन का स्वर सचमुच भींग गया है।—क्या हो गया है उसे ?—उसपर इस तरह क्रोध करने का तो कोई कारण नहीं है। उसके मनका संतुलन क्या हुआ ?—कुछ सहज होने का प्रयत्न करके उसने कहा, 'अच्छा। आया है तो इस कमरे को जरा ठीक-ठाक कर दे। मैं नहा आऊँ।'

'गरम पानी पहुँचा दूँ दीदी ?—ठंडे से नहाएँगी तो—'

'मर नहीं जाऊँगी—' और तमक कर वह कमरे से बाहर निकल गई। मदन हतप्रभ देखता ही रह गया मानो स्वयं बेहोश होकर।

सब मिथ्या है, छल है, तमसा ने मन ही मन कहा। ग्लानि की भावना से अब वह अपने से ही दूर भागना चाह रहा हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? स्वयं वह ही क्या तबसे अपने से भाग सकने का प्रयत्न नहीं कर रही है ?—सफल नहीं हो पाती—सफल क्या वह भी हो सकेगा ? प्रकट में उसने कहा, 'तुम कहती

हो वह सवेरे साढ़े आठ की गाड़ी से गया, रात की गाड़ी से नहीं। तुमसे मिला भी तो सुवह स्टेशन जाने से पहले। तो रात भर वह रहा कहाँ?'

'कहा न, कि सीधे वहन के पास से आए थे। प्रोग्राम के बाद वहीं रह गए होंगे। यही तो स्वाभाविक था। आखिर किस अवस्था में और कितने बरसों बाद मिलन हुआ था। रातभर जागते रहे, यह तो देखते ही स्पष्ट हो गया था।—समय सचमुच नहीं था वहन, नहीं तो तुम्हें विना कहे कैसे चले जाते?—मुझसे भी मिलने का अवकाश इसीलिए निकाला जा सका कि स्कूल में छुट्टी के लिए अर्जी भिजवानी थी। होटल एक्सेलशियर, जहाँ उनकी वहन का दल ठहरा था, वहाँ, उसी अहमदाबाद वाला विल्डिंग में ही तो है।—रात रजिस्ट्रार के दफ्तर से लौट कर मैं तो अपने कमरे में सोई ही पड़ी थी।'

'उसकी बहन का दल यहीं है?'

'वह अभी शाम की गाड़ी से वम्बई के लिए रवाना होने वाला था। अव तो गाड़ी भी स्टेशन से छूट गई होगी।'

'तुम देख पाई उसकी बहन को?'

'कहाँ से देख पाती?—हमलोग अपने में ही मगन जो थे। रात सोये भी तो वहुत देर से थे। नींदही उन्होंने आकर तोड़ी थी। हड़बड़ी में जितना कुछ बता सके वही तो जान पाई। पहले से उन्हें मालूम होता तब तो बात ही दूसरी थी। कह रहे थे, कल शाम काफी समय तक तो यहीं तुम्हारे पास बैठे तुम्हें मनाते रहे कि आकर दूर से ही अपने लाड़लों को देख लो। लेकिन तुम जब सहमत नहीं हुई तो समय बिताने के लिए अनायास कलामंडप चले गए। जाना तो सिनेमाहाउस चाहते थे, पर कलामंडप राह में ही पड़ता है न। सिनेमा का तो तब काफी समय हो चुका था। और कार्यक्रम देखने लगे तो क्या देखते हैं कि उनकी ही बहन स्टेज पर नृत्य पेश कर रही है।'

'देखते ही पहचान गया?—इतने बरसों बाद भी?'

'रक्त का संबंध जो ठहरा बहन!! पूछा मैंने भी था। कहते थे, वह मुस्कराती है तो उसके बाएँ गाल पर गढ़ा पड़ जाता है, और पीठ पर गर्दन के नीचे ही वचपन के एक नश्तर का निशान है। वहन ने तो देखते ही पहचान लिया। दूर से देखने की चेष्टा तो मैंने भी की थी, पर दिन को दिखाई ही नहीं दी। रातभर के जागरण के बाद शायद सो ही रही हो।'

'मन पर तनाव भी तो पड़ा रह सकता है। क्या आशा थी उसे कि इस जन्म में कभी इकलौता भाई इस तरह फिर मिल जाएगा?'

'मन तो हुआ था बहन, कि जाकर पूछताछ करूँ, पर सोचा कि पूछेगी तो परिचय क्या कह कर दूँगी ?—वे होते तब तो कठिनाई नहीं होती ।'

'दूसरी बहन दिल्ली में किसी मंत्री की पत्नी है न ?'

'उसी ने तो प्रयत्न करके पाकिस्तान में छोड़ी हुई अपनी सम्पत्ति का मुआवज़ा पाने का उपाय किया है। पैसा पाने का उत्साह चाहे न भी हो बहन, पर रक्त का उछाला क्या परवश नहीं कर देता ? दो-एक दिन में शायद वे लोग भी विदेश के लिए रवाना होने वाले बताए गए हैं ।'

'रक्त की उछाल ही हो सकती है टरेसा, सम्पत्ति का उसे मोह नहीं है ।'

'मोह न हो, पर जरूरत तो हो गई है न बहन ।'

'जरूरत भी ऐसी क्या है—'

'है बहन ! एक तो कर्ज है ही सिर पर, जिसे उतारने की जल्दी है उन्हें, और फिर सत्य की गृहस्थी भी तो जमानी है उन्हें ।'

'सत्य की गृहस्थि की चिन्ता क्या सत्य की नौकरी से समाप्त नहीं हो जाती ?—पर कर्ज ?—कर्ज क्या है उसके सिर पर ?'

टरेसा सम्हल गई । सत्य के विवाह में विशेष कुछ खर्च नहीं हुआ । लेकिन तबभी उन्होंने संभावना समझ कर अपने विभागसे ही कर्ज लिया है । लेकिन सत्यप्रकाश की हिरासत से मुक्ति पाने के लिए जो पाँच हजार रुपये दिए गए हैं, वह तमसाकी तुष्टिके लिए ही तो ? टरेसा वह रुपया वापिस न लें, पर इससे महेश्वर का बोझ तो कम नहीं हो जाता ।—तमसा यदि महेश्वरके उस त्यागका आभास पा जाए तो क्या महेश्वरके प्रति उसकी आसक्ति बढ़ेगी नहीं ?—और जितनी बढ़ेगी उतनी ही दूर क्या वह स्वयं उससे नहीं होती जाएगी ? पर उपाय ही क्या है ?—पाकर नहीं, खोकर ही तो प्रेम बढ़ता है । खोना ही अगर उसकी नियति हो तो ?–और शायद तमसा को पाकर ही महेश्वर को पा सकती है टरेसा । टरेसा ने कहा, 'कर्ज नहीं बहन, दायित्व कहना चाहिए । उनकी प्रेरणासे तुम जो सत्यप्रकाशको एक विधर्मी लड़कीको सौंपने के लिए तत्पर हो गई, यह क्या वे कभी भूल सकते हैं ?—तुमसे कभी कहा नहीं, किन्तु सत्य को मुक्त कराने में उन्हें पाँच हजार रुपये का कर्ज लेना पड़ा है । सम्पत्ति का सचमुच उन्हें मोह नहीं है ! मोह है तो सिर्फ यही कि तुम्हें और सत्यको वे सुखी बना सकें ।'

'अच्छा, यह बात है ?—कभी कहा नहीं तुम लोगों ने ।' फिर एक दीर्घ निश्वास त्याग कर बोली, 'ऋण तो चेष्टा करके भी नहीं चुका सकूँगी, इस जन्ममें तो क्या, किसी और जन्ममें भी नहीं ।' और उसकी बरौनियों में वाष्प इकट्ठी होने लगी, 'मैं कृतघ्न हूँ टरेसा, सत्यकी भावनाओं के कारण और भी अधिक...

एक सिहरन उसके सारे शरीर में व्याप्त हो गई !—कृतघ्न ?—आँखों के सामने रात्रि का व्यापार कौंध उठा।—तो वह छल, वह प्रवंचना, वह उसके पापका मूल्य था ? उसके होंठ काँपने लगे, मानो कुछ कहना चाहती थी, पर कह न पाई। सजल आँखों पर भवें रहरह कर तनने-सिकुड़ने लगीं, आँखों में पुतलियाँ, मानों खौलते पानी में मछलियाँ व्याकुल होकर तैर रही हों। नाक के पुट फैलने-सिकुड़ने लगे। माथे पर स्वेदबिन्दु चमक उठे और उसका सारा बदन थरथर काँपने लगा। देखकर टरेसा घबरा उठी, तमसा का हाथ थामकर बोली, 'क्या हुआ बहन ?'

फटी आँखों से निहारते-निहारते ही तमसा मानो अचेत होकर गिरने लगी। टरेसाने सम्हाल लिया; और उसके सिरको अपनी गोद में लेकर लिटा लिया, पर यह एकाएक क्या हो गया तमसा को ?—'दीदी दीदी,—अरे मदन !'

मदन शायद रसोईघर में था। आवाज सुनकर भीतर आया तो वह भी देखकर सखते की हालत में हो गया। पूछा, 'क्या हो गया इन्हें दीदी ?'

'जरा पंखा खोल दे, और जल्दी एक गिलास में पानी ले आ। बेहोश हो गई दीखती हैं।—पहले भी कभी क्या कुछ ऐसा दौरा-वौरा हुआ है ?'

'मैंने तो कभी देखा नहीं दीदी।' लपक कर उसने पंखे का स्विच खोल दिया और कहा 'आज सवेरे से ही कुछ ऐसा ही अजब हाल बना रक्खा है। रात को तो खासी अच्छी हालत थी। सात-आंठ बजे तक मास्टर साब भी हियई बैठे बातें करते रहे।'

'तू जा, जल्दी पानी ले आ। सबेरे से निर्जल-निराहार हैं न ! कमजोरी के साथ ही साथ कुछ मन पर भी दबाव दिखाई देता है।'

मदन ने जाते-जाते कहा, 'दूध भी ले आऊँ ?—गरम कर रखा है।'

'पहले होश आ जाने दे।'

मदन चला गया तो टरेसा ने तमसा की ओर दृष्टि डाली। बड़े लंबे-लंबे साँस, मानो सीने में भयंकर तूफान मचा हुआ है ! क्या पीड़ा है ? मन में तो कुछ कष्ट है, पर क्या तन में भी कुछ कष्ट है ? किसी डॉक्टर को बुलवा ले ? मदन दुपहर के बाद भागा भागा बदहवास-सा ही आया था। तमसा को ही नहीं था तो उसे कहाँ से पता होता कि महेश्वर सबेरे ही गाड़ी से दिल्ली रवाना हो गया है। तभी तो उसकी खोज में वह पहले स्कूल ही गया था। तब और टरेसा के सिवा वह तमसा की इस हालत का बयान करता ही किस से ?—एकाएक इस तरह व्याकुल-संकुल हो उठने का क्या कारण हो सकता है ?—सत्य का क्लैरा से विवाह ?—पर यह भी तो अकस्मात् नहीं हुआ।—रही हो अनिच्छा, पर अनुमति तो दी ही थी। विधर्मी हो, पर क्लैरा के शील और सौंदर्य से प्रभावित ही हुई थी।—क्या महेश्वर

के एकाएक बिना उसे सूचना दिए चले जाने का दुःख है ?—देर संध्या तक दोनों बैठे बातचीत करते रहे, सत्य के विवाह की चर्चा अवश्य चली होगी। अगर कुछ विरोध हुआ होता तो महेश्वरके सामने ही होता, और वह तत्काल कुछ उपाय करता। तमसाके लिए महेश्वरको कुछ भी अकरणीय नहीं है। यह जो अकस्मात् जाना पड़ गया है, वह भी तो अप्रत्यक्ष तमसाके लिए ही है। रक्त के संबंध को तो वह कभी का भुला चुका था।—मदन कहता है कि सबेरे उठी ही नहीं, यानी कारण उसके पहले ही घट चुका था। रातें महेश्वर की सदा ही तो तमसा के अलक्ष्म में बीतती हैं। तब ?—रात ऐसी क्या नई बात हो गई ?

मदन जल ले आया था। टरेसा ने पहले तो तमसा के मुँह की कोरों पर झलक आए झाग को अपनी साड़ी के आँचल से पोंछा और फिर ठंडे पानी के छींटे मुँह पर छिड़के। कुछ ही देर में तमसा की पलकें हिलीं, साँस कुछ संयत होने लगा, ओठ भी कुछ फड़कने लगे। टरेसा ने उसकी पलकों पर हाथ रखा तो आँखें भी खुल गईं। पुतलियाँ चारों ओर फिरीं, मानो देखने के लिए कि वह कहाँ किस स्थिति में है !—सामने यह किसका चेहरा है ?

टरेसा ने कहा, 'बहन, मैं हूँ टरेसा !—कैसी तबीयत है अब ?'

'म्—मैं—मुझे मुझे कुछ···नहीं नहीं, कुछ नहीं हुआ।' और उसने उठ बैठने की चेष्टा की। टरेसा ने सहारा दिया। कमरे में चारों ओर देखकर फिर मदन से बोली, 'खड़ा क्या देख रहा है मदन ?—अपनी दीदी को चाय नहीं पिलाएगा ?'

'चाय बन रही है दीदी जी, आप के लिए भी दूध गरम कर रखा है। लें आऊँ ?' मदन ने कहा।

'मेरे तो आज व्रत है, कहा था न ! दूध-ऊध मैं कुछ न लूंगी। इनके लिए चाय लें आ !'

तमसा प्रकृतिस्थ होती जा रही है, देखकर टरेसा ने कहा, 'वाह, दूध क्यों न लोगी ? —व्रत में भी दूध तो बराबर चलता है। अगर तुम नहीं लोगी तो मैं भी कुछ नहीं लूँगी, बल्कि तुम्हारे सामने मैं भी निर्जल-निराहार पड़ी रहूँगी !—मदन कहता है तुमने सबेरे से जल का एक बूँद तक नहीं लिया है !'

मुस्कराने की चेष्टा करके तमसा ने कहा, 'यह बेचारा क्या जाने स्त्रियों और खासकर हिन्दू-विधवाओं को कैसे-कैसे व्रत-नियम करने पड़ते हैं ! अपने पापों का प्रायश्चित जो करना होता है उन्हें !'

'पाप अगर तुम्हें कहीं लगा हो बहन, तो क्या पुण्य सिर्फ डिक्शनरी में ही नहीं खोजने को रह जाएगा ?—नहीं, मेरे लिए भी खाने-पीने को कुछ नहीं मदन !—

मैं जानती हूँ, व्रत-रत कुछ नहीं है आज !—सबेरे से तुम मन ही मन अपनी पीड़ा पिए जा रही हो, क्यों ?–मुझे कुछ क्यों नहीं कहोगी ?—मैं तुम्हारी कोई नहीं हूँ क्या ?' और उसका स्वर भारी हो उठा !

तमसा ने उठती हुई लंबी साँसको दवा लिया और उदास स्वर में बोली, 'अपना कहने को इस अभागी का संसार में और है ही कौन टरेसा ?–अच्छा। तुम जीतीं, मैं हारी !–जा मदन, ले आ कुछ दूध मेरे लिए भी !'

मदन हलका होकर चला गया तो टरेसा ने तमसा को बाहुओं में घेर कर कहा, 'कहोगी नहीं, तुम्हें क्या कष्ट है ?–मुझे अपना समझती हो तो—'

'नहीं समझती तो क्या यूँ व्रत तोड़ लेती ?–नहीं, हुआ कुछ नहीं टरेसा ! देख ही तो रही हो शरीर से एकदम भली-चंगी हूँ !'

'और मन से ?—क्या सत्य के विवाह से कुछ अनमनापन हो गया है ?'

'उसके विवाह से मैं क्यों अनमनी होने लगी ?—वह उसका निजका मामला नहीं है क्या ?–और लड़की अगर अच्छी है तो हमारा-तुम्हारा भी क्या ?–नहीं, वह कोई बात नहीं है टरेसा !—अनमनी, अगर कुछ लगती हूँ तो पागलपन ही कहना चाहिए उसे !—रात···ओह, अब भी काँप उठती हूँ याद करके—'

'कोई डरावना सपना था ?'

तमसा फिर खो गई लगी !—सपना ?–सपना हो सकता है क्या वह ?–एक और रात भी तो सपने में ऐसी ही ध्वंस-लीला हुई थी !–और भी एक रात, उसी के मन ने दस्यु-वृत्ति की थी, और रह क्या गया था तब लुट जाने में ?···उस रात बची न रहती, कूदकर प्राण दे ही देती, तो रात उसे क्यों पुनः वह नर्क जीना पड़ता ?–स्वप्न, ज्ञानियों ने इस संसार ही को स्वप्न कहा है। माया का यह आवरण हट जाए तो वास्तविकता क्या है ?–स्वप्न, सुषुप्ति, जागृति–और फिर यह पाप, पुण्य—

तमसाको यों पुनः आत्मशून्य होजाते देखकर टरेसाने उसे झकझोरते हुए कहा, 'मुझे माफ करो बहन, मैंने फिर तुम्हें किसी अप्रिय प्रसंगकी याद दिलादी।'

'माफ करने को क्या है भाई ? सपना हो, तो भी कुछ सपने बड़ी कठिनाई से भूलते हैं !'

मदन एक ट्रे में चाय का सामान और दूध से भरा एक गिलास ले आया। नीचे रख कर यह कहते हुए फिर चला गया 'मैं कुछ खाने के लिए ला रहा हूँ।'

टरेसा ने कहा, 'कुछ कहते-कहते रुक गई बहन ?'

'कहने को क्या है टरेसा ?—सपना ही तो था, और इस असार संसार में सपना क्या नहीं है ? शादी-ब्याह, घर-बार, बाल-बच्चों की कामना ! और भविष्य

के बारे में जो हम आकांक्षाएँ करते हैं, सभी तो सपने हैं। मन सिरज लेता है अपनी वासना के अनुसार आकाश-कुसुम, या डरावनी प्रेत-लीलाएँ, इन्द्रजाल !— सपने साकार न हों तो भी प्राणी दुःख पाता है न ! तब भी होता तो वह सपना ही है।—नहीं ?'

मदन और एक ट्रे में कुछ मिठाइयाँ और कुछ फल ले आया।

तमसा ने कहा, 'चाय पियो भई !'

दूध का गिलास थाम कर तमसा की ओर आगे बढ़ाते हुए टरेसा बोली, 'पहले तुम'—

मुस्कराकर गिलास थामते हुए तमसा ने कहा, 'इतना भी विश्वास नहीं करोगी ?—अरे भई, तुम्हारा प्याला तो चीनीमिट्टीका, गरम नहीं होता, पर गिलास से तो होठ जल जाते हैं न ! लो, तुम्हारी ही बात सही। जले होठ, तो जलें !' और उसने गिलास मुँह से लगा लिया। एक घूँट उतार कर बोली, 'बिस्कुट-बिस्कुट नहीं ले आया ?—मेम लोग केक-बिस्कुट ज्यादा पसन्द करते हैं, यह नहीं मालूम ?—और जानता है, रात इनके बेटे का ब्याह हुआ है ?'

'बेटे का ?' आश्चर्य की मुद्रा में मदन ने पूछा।

'हाँ हाँ, इनका एक धरम का बेटा है ! तू कहाँ से जानेगा ?'

'तब तो दीदी, इनाम लेकर रहूँगा।'

'तो इनाम मिलेगा ! बोल क्या लेगा इनाम में ?' टरेसा ने उत्फुल्ल होकर कहा।

'खुश होकर जो आप दे दें दीदी ! इनाम तो दाताकी खुशी पर होता है !'

'अच्छा, तेरे लिए एक अच्छा सूट और तेरी मौसी के लिए एक साड़ी। ठीक न—'

तमसा ने कहा, 'जा अब !—बातें बाद में कर लेना—बिस्कुट ले आ !'

'नहीं मदन, जरूरत नहीं है। आज मिठाई खाकर ही मुँह मीठा करूँगी ! तू जा सकता है अब।'

मदन खुशी-खुशी बाहर निकल आया।

'अकेली बैठी तुम सोचती खूब रहती हो बहन, इसलिए भी मन विक्षुब्ध रह सकता है !—अब अगर आपत्ति न हो तो बेटे और बहू को साथ ले लो न ! इस घर में स्थान की कमी नहीं है !'

'इस घर में ?' तमसाने हँस कर कहा, 'तुम भी पागल हो गई लगती हो टरेसा, सत्य क्या कभी इतनी आसानी से इस घर में कदम रखेगा ?'

'क्यों नहीं रखेगा ?—जहाँ माँ, वहाँ बेटा-बहू नहीं रहते ?'

'यह माँ का घर कहाँ है ।—सत्य को तो महेश के नाम से भी चिढ़ है ।'

'लेकिन बहन, मेरा मन कहता है, अब सत्य इन्हें स्वीकार कर लेगा ।'

'कैसे ?'

'एक तो—कुछ ही दिनों में तुम देखोगी कि वे एक प्रभावशाली व्यक्ति हो जाएँगे । पाकिस्तान में छोड़ी हुई उनकी सम्पत्ति मामूली नहीं है । उसका मुआवजा भी उनकी स्थिति अच्छी कर देगा । सत्य का मन मैंने भी कुछ समझने का प्रयत्न किया है ।—बहुत अच्छा है, पर प्रभुत्व से भी न हिले, इतनी दृढ़ता नहीं है अभी उसकी !'

'और दूसरी बात ?'

'उसे मुँह पर लाते डर लगता है बहन !'

'यह कहना चाहती हो न, कि यदि वह यहाँ आना न चाहे तो उन्हें लेकर अपने पुराने मकान की खोली में चली जाऊँ ?'

'नहीं नहीं बहन, उसकी तो मैं कभी राय भी नहीं दूँगी !'

'तब ?'

टरेसा साहस नहीं जुटा सकी । तमसा की मानसिक स्थिति इस समय बड़ी तनावपूर्ण है । रात उसने जाने कैसा कुरेदने वाला सपना देखा है ?— और जो कुछ वह कहना चाहती है, वह क्या उसकी स्वयंकी हसरतों की हत्या नहीं है ? तमसा के होते महेश्वर उसका कभी नहीं हो सकता, किंतु और उपाय भी क्या है ?

दूध का गिलास नीचे रखकर तमसा बोली, 'अब भुलावा और बढ़ाना नहीं चाहती टरेसा !'

'भुलावा ?–समझी नहीं बहन !'

'यही माया का, इस जगत का भुलावा !– इसमें सने रहो तो कहीं न कहीं किसी रन्ध्र से यह भीतर प्रवेश कर ही जाता है, और एक बार प्रवेश कर जाए तो भिदता जाता है रग-रग में । प्रकृति ही ऐसी है इसकी । इस प्रपंचको छोड़े बिना निस्तार नहीं है !'

'लेकिन प्रकृति की अवहेलनासे विकृति ही तो पैदा होगी !– मुझे कहनेका साहस नहीं होता बहन, तुम स्वयं कम बुद्धिमती और कम ज्ञानवान नहीं हो । मैं नहीं मान सकती कि संस्कारों की सार्थकता या निरर्थकता तुम नहीं जानती !'

'कहना क्या चाहती हो ?'

'क्या तुम यह नहीं मानती कि जो आज सत्य है वह कल मिथ्या भी हो सकता है ?'

'जो अनित्य है वह तो सत्य नहीं है टरेसा !–सत्य एक दिन अबोध शिशु था, आज गृहस्थ है ।'

'और जो कल तक पुत्र के रूप में माँ के सिवा किसी को जानता ही न था, किंतु आज निरा पुत्र ही न रहकर अन्य किसी नारी का पति बन कर माँ को कुछ समझता ही नहीं ! है न ?'

'जगत के ये सभी नाते इसीलिए तो अनित्य हैं, असत्य हैं ।'

'और इन्हीं नातों में क्या पति-पत्नी का नाता नहीं है ?'

'है । इसीलिए तो मैं एक दिन सधवा थी, आज विधवा हूँ !–आज तुम कुमारी हो, और मैं चाहती हूँ कि कल तुम पत्नी बनो !'

'मेरी बात छोड़ो बहन । न मैं कुमारी हूँ और न पत्नी बनने की कामना है मेरी ! पर, इन अनित्य नातों को पकड़े बैठे रहने का तो कोई अर्थ नहीं है न ?'

'नहीं हो तो उससे क्या ?'

'अन्य संस्कृतियों और धर्मों में तो विधवा हो जाने पर और विवाह करने की नारी को स्वतन्त्रता है ।'

'बल्कि तुम्हारे ईसाई धर्म में तो पतिकी विद्यमानता में ही तलाक लेकर दूसरा विवाह करने का अधिकार है नारी का !–मेरे लिए अगर तुम कुछ कहना चाहती हो टरेसा, तो मेरा उत्तर है कि समझ लेने के बाद भी क्या एक और असत्य को गले मढ़ लूँगी ?'

'तुमसे बहस में जीत नहीं सकती बहन, लेकिन···'

'लेकिन क्या ?'

'यह जीवन आखिर इन अनित्य सम्बन्धों, इन असत्यों से ही तो बना हुआ है । स्वयं यह जीवन ही क्या अनित्य, असत्य नहीं है ?– तब इसमें जो कुछ किया जाए वह भी तो असत्य ही होगा !'

मदन तभी एक और प्लेट में बिस्कुट और केक ले आया । शायद उसे बाजार जाना पड़ा हो तभी तो इतनी देर होगई थी । बातों में समय बीतता इन्हें मालूम ही न हुआ । टरेसा ने एक केला उठाकर तमसाकी ओर बढ़ाते हुए कहा, 'व्रत में फल भी तो चलते हैं न बहन !'

'चलते क्या, चलाए जाते हैं ! अनित्य जो हैं ।' मुस्कराकर तमसा ने कहा और बढ़ाया हुआ केला टरेसा के हाथ से ले लिया । फिर मदनको पानी लाने के बहाने से भेज दिया ।

तमसा ने कहा, 'और ऊहापोह की आवश्यकता नहीं है टरेसा । तुम महेश से ब्याह कर लो तो मुझे छुट्टी मिले । और इस जीवन में जो कुछ सार है मैं उसे पाने का प्रयत्न करूँ !'

टरेसा सिहर उठी, तमसा के शेष कथन से नहीं, प्रथम कथन से ! बोली, 'कहती क्या हो ?'

'सच ही तो कहती हूँ। उससे व्याह करने में तुम्हें कुछ आपत्ति है ? क्या तुम उससे प्यार नहीं करती ?'

'इस सवाल का कोई अर्थ नहीं है बहन ! अगर कुछ अर्थ हो तो यह सवाल तुमसे ही किया जाना चाहिए ! वे तुम्हींको तो चाहते हैं, इतना अधिक कि तुम्हें सुखी देखने के लिए वे क्या नहीं कर गुजरेंगे ?'

मदन तभी पानी के दो गिलास ले आया तो तमसाने कहा, 'अब तू निश्चित घूम-फिर आ सकता है मदन !'

टरेसा ने कहा, 'पर पहले एक ताँगा ले आ भई। मुझे जल्दी जाना है बहन ! सत्यकी गृहस्थी का आज पहला दिन है यह भूलने से तो काम नहीं चलेगा !– बहन, एक निवेदन और है—कला तुम्हारे चरण स्पर्श कर तुम्हारा आशीर्वाद लेना चाहती है ! उसे ले आऊँ ?'

'लेकिन सत्य –'

'उसे कला मना लेगी। और जबकि वे यहाँ नहीं हैं तो प्रकाशको भी आनेमें शायद आपत्ति न हो !'

कुछ सोच कर तमसा बोली, 'नहीं, यहां नहीं टरेसा ! मैं मन्दिर में भगवान के सामने ही क्यों न दूँ उन्हें आशीर्वाद ? अगर आजही ला रही हो तो चलो, मैं मन्दिर पहुँच जाती हूँ !'

'जैसी तुम्हारी इच्छा ! तो फिर···'

'मैं कपड़े बदल कर सीधी वहीं पहुँचती हूँ। तुम अधिक देर मत करना ! मैं वहाँ अधिक ठहरना नहीं चाहती। कभी कोई जान-पहचान का मिल जाता है तो कठिनाई में पड़ जाती हूँ।'

टरेसा उठ खड़ी हुई और बोली, 'नहीं, अधिक देर नहीं लगेगी !—और बहन,—खैर मैं इस समय अधिक कुछ नहीं कहूँगी !'

तमसा भी उठ खड़ी हुई, मुस्करा कर बोली, 'इस समय क्या, कभी न कहना ही अच्छा है। तुम्हारे हृदयकी बात मैं जानती हूँ, तो तुम्हारा हृदय भी मेरे हृदय की बात अवश्य जान लेगा। उसे मुँह पर लाने की क्या आवश्यकता है ?'

उत्तरमें टरेसा ने भी मुस्कराने का प्रयत्न किया, किंतु उसके ओठ ही फैल-कर रह गए, आँखों में चमक नही आ सकी। मदन को इशारा करते हुए वह धीरे धीरे कमरे से बाहर निकल आई !

●

प्रतिकर्षण-प्ररोध

●

अभी सूरज छिपा नहीं था। धौली उस्ताद खरामा-खरामा मिसरी लाल के घर के सामने आ पहुँचे थे। किवाड़ बन्द थे, यानी और तो और, मिसरी भी घर पर नहीं था। होते हैं तो उनका अड्डा दरवाजे के भीतर पौसार ही में लगता है। भीतर की ओर एक टपरे के नीचे खटिया पर पड़ा बुढ़ऊ खाँसता-खँखारता रहता है। चम्पा भी अपने डाग्दर की ड्यूटी में पहुँच गई होगी। आवाज लगाए या लौट जाए ? ज्यादा से ज्यादा यही तो होगा कि बूढ़ा खाँस-खँखार लेगा। असमंजस में कुछ क्षण बिताकर धौली उस्ताद बिना दरवाजा खटखटाए लौट ही जाना चाहते थे, कि फिर कुछ मन में आया और दरवाजे के निकट जाकर फुसफुसाया, 'मिसरी ?'

आशा नहीं थी कि कोई सुनेगा भी, पर आश्चर्य हुआ जब उन्हें मृदु कंठ सुनाई दिया 'कौन—'

चम्पा है। आज क्या डाग्दर बाबू की ड्यूटी नहीं है ?—औरत जात से धौली उस्ताद कतराते हैं, मन जाने कैसा-कैसा होने लगता है। जय बजरंगबली की, मन ही मन कहकर लौट ही जाना चाहते थे कि दरवाजा खुला और चम्पा ने झाँक कर कहा, 'कौन धौली भैया ?—बाहर क्यूँ खड़े हो ? मिसरी आता ही होगा। भीतर आओ न।'

आफत हो गई। न पुकारता तो ही अच्छा था। 'उसी से काम था। फिर चला आऊँगा।'

'जरा बाजार भेजा है। दद्दा के लिए तमाकू खतम हो गई न। दिनभर खाँसते रहते हैं पर तमाकू फाँके बिना चैन नहीं पड़ती। बैठो न। अभी आए जाता है। आजाए तो मैं भी जाऊँ।'

निस्तार नहीं है। दरवाजे की फाँक चौड़ी हुई और रास्ता बन गया। उन्हें बढ़ना पड़ा। बाप रे ! छोरी क्या गजब-गुजार बनी हुई है ! बजरंगबली को कभी ऐसी अपसरा से साबका नहीं पड़ा होगा। बेचारा डाग्दर किस खेत की मूली है ? बोले, 'आज इत्ती देर ?'

'निपटने-नहाने में देर हो गई। और आज जी सुबेरे से ही जाने कैसा हो रहा था।'

'क्यूँ ?—तबीयत तो ठीक है न ?'

'तबीयत तो ठीक है, पर मन ठीक हो तब न।'

'क्या हुआ मन को ?' नीची निगाह किए धौली उस्ताद ने पूछा।

'यह मिसरी बड़ा तंग करता है भैया ! उस दिन कान में कुछ दरद होने लगा था सो मैंने झुमके उतार कर आले में रख दिए थे। बिचारे डाग्दर बाबू ने गई जनम-गाँठ पर खरीद दिए थे। कल सूने कान देखकर पूछ लिया तो याद आई। घर आकर देखती हूँ तो नदारद ! सौ-डेढ़सौ की चीज थी। रोई-पीटी, तो मिसरी ने कबूला कि वो ले गया था। उसके दोस्त सत्परकाश की शादी में रुपयों की जरूरत थी सो बेच दिए।'

'अच्छा ! पर उसकी शादी में तो मँगरू ने मुझसे उधार दिलवाए हैं। कहा कि ब्याज सुद्धे लौटाएगा।'

'वोई दम-दिलासा तो मुझे भी दिया है भैया ! पर मैं जानती हूँ वो दईमारा सत्परकाश लाएगा कहाँ से पैसा ?—तुम्हीं बोलो न !—खड़े क्यूँ हो ?—बैठो न।'

चबूतरे पर धौली उस्ताद बैठ गया तो चम्पाही बोली, 'नौकरी करता हो, पर नई-नई शादी ठहरी। और तनखा भी कित्ती सी होगी ?—तुम्हारा कित्ता उधार है ?'

'दो सौ है। मँगरू कहता है कि उसकी देनदारी वो मास्टर चुकाएगा।'

'वो मास्टर जिसके घर में उसकी माँ बैठी है ?'

'वोई होगा।'

'पर, सुना कि मास्टर तो मास्टर, सत्परकाश अपनी माँ तक की सकल नहीं देखता। तब मास्टर से वो पैसे कैसे वसूल करेगा ?'

'मास्टर से नहीं चम्पा बाई ! विस मास्टर की एक ख़िस्तान लड़की से दोस्ती है, जो सत्परकाश की दुल्हन की माँ की छैली (सहेली) है, वो चुकाएगी सत्परकाश का करजा।'

तभी मिसरीलाल तम्बाकू लिए लौटा तो उसके साथ अहमद भी था। आते ही बोला, 'अरे धौली उस्ताद, तुम कब आए ?'

तम्बाकू का पुड़ा लेकर चम्पा ने मिसरीलाल से कहा, 'इत्ती क्या देर लगादी रे ?—मेरा डाग्दर गुस्सा नहीं करेगा ?—तेरा क्या, दोस्त मिल जाना चाहिए तुझे तो।' और अहमद के ऊपर एक कड़ी निगाह फेंकती हुई वह भीतर चली गई। धौली उस्ताद देखताही रह गया।

'बड़ी तरेर रई है उस्ताद, क्या बात है ?'

'एक बात तो तूने सुन ई ली। दूसरी सुनना है ? तूने साले, उसके झुमके क्यों चुराए ? घरमेंई डकैती ?—सात घर तो डाकन भी छोड़ती है साले।'

'अरे यार, उस साले सतुए को देने का वायदा करा था न।—कुछ न कुछ तो करनाई पड़ता।'

'पर मँगरू तो विसके वास्ते मुझसे दो सौ रुपल्ली जो ले गया है।'

'अच्छा !—और मुझसे भी तो मँगरू ने ई सुपारस करी थी।'

'पता नई इस साले मँगरू के मन में क्या है ? और वो मास्टर, वो क्यूँ देगा पैसे हमें ?'

'ये मत पूछो उस्ताद। तुम ठँरे बाल भ्रमचारी। वो मास्टर सत्परकाश की माँ पर मरता है।—नई जानते उस बखत पाँच हजार गिनकर छुड़ाया था सत्परकाश को ? सत्परकाश तब भी उसकी सकल तक नईं देखता था। अब क्या वो साला, हमेरे-तुमेरे पाँच सौ रुपए नहीं देगा ?—चलो, हो जाए आजई फैसला। जा रे एमद्या, जरा मँगरू को बुला ला तो।'

'ठँर वे कुँजड़े, सोच लेने दे कुछ ! ये जो तू कहता है मिसरी, सतुएको छुड़ाने के लिए विसने पाँच हजार गिन दिए थे। पर अब वो किस बात के देगा रे ?—सत्परकाश माँगेगा विससे ?'

अहमद बोला, 'उस्ताद विस स्साले सींकिए को अपनई कदी लाकर बंद करदें तो ?'

मिसरी बोला, 'अपनी अकल अपने पास ई रख। छुड़ाने के लिए तुमेरेको पाँच सौ देने के बजाए वो मास्टर तुमेरे को ई पुलिस के हवाले कर देगा। चक्की पीसना पड़ेगी जेल में साले।'

अहमद बोला, 'मँगरू दादा कह रियाथा कि वो मास्टर तो हिंया नई है आजकल।—हमेरे को पकड़ेगा कैसे हिंया है ई नईं तो ?'

'है ई नई तो बेटे, रुपए भी कौन देगा, तेरा बाप ?' मिसरी ने कहा। 'छुट्टी-उट्टी गया होगा कहीं। विसकी माँ तो साली हिंय ई है। गुड़ छोड़कर मक्खी और कहाँ भिनकेगी ?'

'और क्यूँ रे मिसरी, विस मास्टर की कोई ख्रिस्तान लड़की से मी रबत-जबत है ?'

'हाँ उस्ताद, और वो साली सत्परकाश पर मरे है।'

'सत्परकाश पर ?—मैंने तो सुना कि वो विस बमपिलास की छैली है।—अजब गोरखफन्दा है साला। वो साली बमपिलास, इस मँगरुए पर मरती

है तो विसकी छैली सतुए पर ।—होगी साली माँ बरोबर उमर की । क्या जमाना आ गया है बजरंगवली ?—कुछ भी हो मिसरी, अपनको तो तेरी इस चम्पा बेन का दरद नई देखा जाए । विचारी कित्ती मुस्किल से दो झुमके जुटा पाई, और तू हरामी उन्हें ही चम्पत कर गया ।'

'तुमेरी हमदरदी हुई उस्ताद,' अहमद बोला, 'तो कानों में ईं क्या विसके गले में भी कुछ झूमता मिलेगा ।–लो, वो मँगरू दादा भी आगिए । वड़ी लम्बी उमर है दादा तुमेरी ।'

मँगरू ने मुँह की बीड़ी फेंकते हुए भीतर प्रवेश किया और कहा, 'बुराई कर रहे हो न ?–तुमसे साले, और उम्मीद ही क्या है ?–पर उस्ताद, क्या तुम भी इन साले हरामियों में हो ?'

'इनमें क्यूँ नई होऊँगा भाई ? दो सौ रुपये मुझसे लिए और इससे अपनी वेन के झुमके चुरवाए । तेरा क्या ?–दूसरों के माल पर ऐस कर रिया है साले । पर याद रख लेना, पाई-पाई जो इसका और मेरा वसूल नई हुआ तो तेराई टेंटुआ धर दबोचूंगा बच्चू ! ये मत भूलना ।'

मँगरू ने हँसकर कहा, 'मेरे ऐस करने पर जलन हो रई हो उस्ताद, तो चलो न । अल्लाक़सम, वो माल दिलाऊँ कि जिनगी भर मँगरू का एसान मानोगे । दो सौ रुपल्ली तो हाथ का मैल है ।'

'देख बे मँगरू, मैं हूँ बाल-भ्रमचारी, ऐसी-वैसी बात जो मुँह से निकाली फिर···'

'तो आज चम्पा वेन पर इत्ती रहमत कहाँ से फूट रई है उस्ताद ?'

'अरे वो बिचारी औरत जात ठैरी । मरद बच्चों को रहम करनाई चहिए ।—पर तू बता, ये रुपये उस सतुए से कैसे वसूल करेगा ? एमद्या कह रिया है कि वो स्साला मास्टर भी हिया नई है । विसकी जमानत दे रिया था न ?'

'अरे उस्ताद, वो तुम्हारे रुपयों का इन्तजाम करने ई तो गया है ।'

'वो जानता है कि रुपया हमने दिया है सत्परकाश को ?' मिसरी ने पूछा ।

'जानता हो या नहीं जानता हो । अपनको तो अपने रुपये से काम है । क्यों उस्ताद, आम खाने से काम या पेड़ गिनने से ?'

'पर दो-चार सौ रुपल्ली के वास्ते ई विसे बाहर भागना पड़ेगा ?—मिसरी तो कह रिया था कि उसे थाने से छुड़ाने में विसने पाँच हजार हिंयई गिन दिए थे ?'

'और अब पाँच नहीं, चाहो उस्ताद, तो दस हजार गिनवा लेना। कारू का खजाना लेने गया है साला।' मँगरू बोला।

'कारू का खजाना ?' अहमद ने भौंहें चढ़ा कर पूछा।

'हाँ !—पाकिस्तान में साले की आलीशान कोठी थी। एक बहन दिल्ली में किसी वजीर की बीबी है। बतौर हरजाने के लाखों नहीं, तो भी हजारों रुपये मिलेंगे साले को। जैदाद रही हो कि नहीं रही हो, बहन तो साले की वजीर की बीबी है। क्या समझे ?'

'पर सत्परकाश को वो ये रुपये क्यूँ देगा रे ?'

'माले मुफ्त दिले बेरहम !—अपनी आशना को खुश करने के लिए जो जान की बाजी लगादे वो क्या पाँच-दस हजार नहीं कुरबान कर देगा उसकी खातिर ?'

धौली उस्ताद की चिकनी खोपड़ी में बात पैठी नहीं। बोले, 'मेरी समझ में तो वो सत्परकाश ई हम सबको मूरख बना रहा है। हुआ करे माँ उस मास्टर की आसना, पर वो तो अपनी माँ से भी तो कोई सलूक नहीं रखता। फिर रुपये ऐंठेगा किससे और कैसे ?'

मँगरू ने जवाब में केवल कंधे उछाल कर मिसरी की ओर देखा और मुँह बिचका दिया। मिसरी बोला, 'उस्ताद, बात यूं है कि वो जो सत्परकाश की माँ है न ! वो भी तो दारी एकही है।—नाटक चल रिया है उस्ताद, नाटक ! नई तो अपना भला सा घरबार और लोकलाज छोड़ कर विस मास्टर के घर में क्यूं बैठ जाती ? मास्टर जानता है कि सत्परकाश वस में आ जाए तो किल्ला फतह है।—क्यूं मँगरू ?'

'इत्ती सी बात धौली उस्ताद नहीं समझें तो क्या करें ? हफ्ता दस दिन बाद तो आ ही रहा है। वो जो टरेसा मेम है न, हमारी दिलफेंक नोरा मेम साब की साथिन, वो है दोनों के बीच में। मास्टर ने उसे भी तो पटा रक्खा है। चिट्ठीचपाती उसी के पास आती है।'

'देखें भाई, अपन को ये दाँव-पेंच नहीं सुहाते। अपने दाँव-पेंच तो अखाड़े में चलते हैं। क्या ठिकाना, साला मास्टर टरकाई दे। इससे अच्छी तो अपनी एक राय है।'

'क्या ?'

'वो कब लौटेगा, सो पहले से मालूम कर लेना होगा मँगरू। बस, घर पौंचे विस्से पहले रस्ते में ई हलका कर देना चाहिए विसे।'

'हाँ उस्ताद ! स्साला वो भी दो-दो हाथ अजमा ले। ये ई बढ़िया है।' अहमद ने उछलकर कहा।

'अबे कुँजड़े, देख किसी के कान में भनक भी पड़ गई तो साले को जिन्दा जमीन में गाड़ दूंगा।'

'वाह उस्ताद, ऐसी बात कदी जीभ पर लाई जाती है?—आप खातिर जमा रखिए।'

'बुला तेरी चम्पा बेन को मिसरी, उसे भी खातिर जमा करा दूँ कि मैं हूँ तब तलक विसे को ई फिकिर नई है। उसके झुम्के मुझसे आए।' धौली उस्ताद ने मिसरी को कहा।

आश्चर्य से मँगरू ने मिसरी की ओर देखा। मिसरी बोला, 'वो तो कदीकी डाग्दर बाबू के हिंया चली गई। कहा नई था विसने, कि देर हो रई है? मैं कह दूंगा विसे।'

'कब गई?—वो तो भीतर गई थी न?'

'भीतर से ई निकर गई उस्ताद! विधर भी तो दरवज्जा है।'

'अच्छा! उसका ये डाग्दर बाबू किधर रहता है रे?—एक दिन उसके दवाखाने भी जाना है।'

'विस विचारे ने क्या किया उस्ताद? मैं जानता हूँ विसका दवाखाना।' अहमद बोला।

मिसरी ने मँगरू की ओर देखकर कहा, 'हुआँ जाओगे उस्ताद, तो चम्पा बेन को तकलीफ होयगी। विसका काम तो डाग्दर बाबू से ई चलता है न? पगार भी अच्छी मिल जाती है, और बार-तेवार इनाम-इकरार भी। नौकरी छूट गई तो हम सभी भूखों मर जायेंगे।'

'तू समझता है तेरे डाग्दर बाबू से जोर अजमाने जाऊँगा?—तुम लोग तो साले, जैसे आप, वैसा ई दूसरों को समझते हो। मिसरी की बेन सो अपनी बेन। जय बजरंग बली की! ये तो आजकल कदी कदी अलसुबे उठने पर पीठ में दरद मालूम देता है, सोई बताना चाहता था। अच्छा भाई, चल दिए अपन तो। और मँगरू, उस मास्टर की खबर मिलतेई मुझे बताना मत भूलना।'

मँगरू ने मुस्करा कर कहा, 'नहीं भूलूंगा उस्ताद।'

खरामा खरामा धौली उस्ताद जैसे आए वैसे ही चले गए तो मँगरू ने कहा, 'इस साले का मन भी डोलने लग गया है क्या?—पर यार, कहता पते की है। मास्टर को रस्ते में ही हलका कर दिया जाए। बात तो मजे की है। इसमें कुछ लगेगा भी नहीं। सत्परकाश भी इसमें उजर नहीं करने का और साले मास्टर को पता भी नहीं लगेगा कि किसने लूटा है साले को।'

'पर विसके लौटने का ठीक बखत मालूम हो जाएगा क्या ?' अहमद ने पूछा।

'वो हो जाएगा। सत्परकाश को टरेसा मेम सब बता देती है। अरे साली, अब तो साड़ी-लहँगा छोड़ कुछ पहनती ही नहीं है। बिलकुल हिन्दू हो गई है। सत्परकाशकी दुल्हन का नाम तक बदल दिया है साली ने। तू जा रे कुँजड़े, जमना को बुलाला। सत्परकाश तो मिलेगा नहीं अभी। शादी क्या हुई साले की, उस कबूतरी में ही मगन रहता है। नौकरी पर जाता है तभी दड़बे से निकलता है। जमना से सलाह मश्विरा करके फिर उससे भी बात कर ही लेना चाहिए।'

'ये गया और ये आया मँगरू दादा !' चुटकी बजाकर अहमद ने कहा। 'बीड़ी-वीड़ी हो तो निकार न, मिसरी भैया।'

समय के न पाँव होते हैं न पंख ही, पेट भी नहीं होता। पर वह चलता है, बहता है, उड़ता है, और रेंगता है। क्लारा बदल कर कला हो गई, और उसका व्यक्तित्व चन्द्रकला की तरह ही बढ़ने लगा। सत्यप्रकाश के साथ अपने कमरे में ही उसकी गृहस्थि मजे से चलने लगी। टरेसा का सहयोग और निर्देशन सुलभ थे ही। दिन तमसा के भी बीतते ही गए। उसके स्वभाव में कभी कभी विचित्र परिवर्तन लक्ष्य किया जा सकता था। मानों वह एक नहीं, दो व्यक्ति थे, जो बारी बारी से उसके शरीर में निवास कर रहे हों। कभी तो वह मानसिक रूप से पूर्ण स्वस्थ लगती और तब उसका शरीर भी सहज कांति से उद्भासित लगता, किंतु एकाएक ही जब वह किसी अनजाने मानसिक तनाव से घिर जाती तो उसके शरीर का रंग उड़ जाता। सारा बदन ढीलाढाला, चमड़ी सूखी सुर्ख, मानो कुछ कहने के प्रयत्न में बुदबुदाते ओठ, जिन पर पपड़ियाँ जमी हुईं, और मन कहीं अन्यत्र, अनजानी गहराइयों पर मँडराता हुआ। कभी कभी दौरे भी पड़ जाते। पहले तो मदन घबरा उठता था, पर अब अभ्यस्त हो चला था। टरेसा से उसने सब हाल बता दिया। टरेसा प्रायः नित्य ही, और कभी कभी दो बार भी, आकर देख ज़ाती। महेश्वर का दिल्ली-प्रवास बढ़ता ही जा रहा था। वह आजाए तो सलाह करके किसी अच्छे चिकित्सक को दिखा दिया जाये तमसा को। इन्हीं विभिन्न धाराओं में बहते हुए तमसा दिन-दिन क्षीण होती जा रही थी, यह किसी भी देखनेवालों की आँखों से छिपा न रहता।

पहले तो उसका अधिकांश समय स्वाध्याय और अध्ययन में बीत जाता था—अंग्रेजी वह काफी कुछ इसी तरह पढ़ चुकी थी, किंतु अब तो पढ़ने में भी वह मन नहीं लगा पाती है। स्वस्थ रहती है तो सारा समय सोचने में ही बीत जाता है। उस रात की विभीषिका यदि स्मृति में कौंध जाती है तो चेतना पर मानो साँप लोट जाता है।—क्यों पड़ी हुई है वह इस प्रवंचना में? चली जाए, पर कहाँ?—बीसाजी की चाल में वह खोली अभी भी है। महेश्वर हर माह किराया चुका आता है। कला और सत्य के योग्य तो वह है नहीं।—कला, लड़की जरूर अच्छी है। समय आप उसे अपना स्वार्थ और अपना घर सम्हालने योग्य बना देगा।—न बने, तो वही क्या कर सकती है? किसी की चिन्ता किए बिना समाज तो बराबर आगे बढ़ता जा रहा है। तलाक भी तो प्रचलित और विहित हो गया है अब तो। सत्य और कला ही क्यों इस प्रगति के अपवाद हों? अपनी ही शर्तों पर सुखी होने का अधिकार क्यों नहीं हो उन्हें? टरेसा है ही पीठ पर। उस पर निर्भर रहा जा सकता है। तमसा हट जाए तो शायद सत्य के मन की महेश्वर की गाँठ भी खुल जाए।

महेश्वर—ओफ–क्यों आ पड़ी वह यहाँ उसकी शरण में? उसकी लोलुप-दृष्टि का अनुसंधान तो उसे देखने के पहले ही तमसा पा गई थी। तभी तो सत्य को सावधान किया था उसने! सावधान वही न रही। क्यों कर लिया था सहज विश्वास उसका? पुरुष की प्रकृति भूख से अपरिचित तो नहीं थी कभी वह! यह भी तो जानती है कि देवता होना हर किसी के लिए सम्भव नहीं है।—अपने आप पर विश्वास?—उस दृढ़ता की पोल भी तो उस एक रात खुल गई थी। तब भी क्यों बनी रही वह भेड़िये की माँद में?

—स्वप्न—निरा स्वप्न था वह?—तो सत्य क्या है?...और तब क्या यह जगत ही स्वप्न नहीं है? ये विधि-निषेध, पाप-पुण्य, अच्छा-बुरा, ये सब भी क्या स्वप्न नहीं हैं?...स्वप्न के राज्य में भी कर्मफल तो है। स्वप्न है तो इसीलिए न, कि मोहमाया की नींद घेरे हुए है, स्वप्न टूटे भी तो तब न, जबकि यह मोहनिशा भंग हो, माया की यह नींद, यह आवरण हट जाए।

इस में घर ही क्यों, सचमुच इस जगत में ही क्या प्रयोजन है उसका?—मृत्यु हाथ में क्यों नहीं है? आत्महत्या कहकर क्यों मान लिया जाए उसे पाप?—वासांसि जिर्णानि यथा विहाय—वस्त्र नित्य ही तो बदल लिया जाता है। आत्मा तो चिरंतन है, फिर वस्त्रों का परिवर्तन पाप कैसा?—और फिर इस स्थूल शरीर के नीचे एक सूक्ष्म शरीर भी तो है। कठोपनिषद के नचिकेता ने यम से मृत्यु का रहस्य जानना चाहा था न। यह मोहनिशा भंग हो, इस भ्रम-दुर्विपाक

से मुक्ति मिले तो।—साधना-मंदिर कहाँ रहा यह शरीर? शक्ति दी हो, प्रकाश दिया हो विधाता ने पर किस काम आया वह सबकुछ? घर के दिए से ही इस घर में आग नहीं लग गई? राख के नीचे वह तो अभी भी धू-धू करके जल रही है। क्या संजोए अब इस जलन से?—आग ही क्यों, खुद इस जीवन ने कम छला है उसे?—साधना हुई तो यही कि पिताका प्यार और आशीर्वाद बटोर सकी वह, पर कितना-सा?—पति का प्यार? प्यार था या कृपा थी वह?

छुटकारा कब नहीं चाहा है उसने जीवन से? विवाह की प्रवंचना वह ठीक न समझ पाई हो, भविष्य के नए अनुभव की उत्सुकता थी न मन में।—पढ़े-लिखे पति का, सचमुच ज्ञान के प्रकाश का साथ, सत्य के प्रकाश का वरदान–यह सन्तोष तो हुआ, किंतु ज्ञान के प्रकाश में रूपवती भार्या के प्रति संदेह की आग नहीं जलाती रही उसे? भस्म हो जाने का संकल्प पूरा नहीं हुआ! केवल सत्यप्रकाश के कारण वह नन्हा कोमल बन्धन नहीं तोड़ सकी, पर किस दिन के लिए? कितना निष्ठुर सावित हुआ है यह जीवन? उस अंधेरी बरसाती रात में जेल की दीवारों के बीच अपने ही पति को तिल तिल कर मरते देखना पड़ा है और बन्धु-वान्धव-हीन किसी अपरिचित जगह में अपने ही कंधों पर उसके शव को ढोना पड़ा है।।—ओह, स्मरण करके तो आज भी क्रदन में कँप-कँपी छूट जाती है।

पागलपन के दौर में पति के नौकरी से हाथ धो बैठने पर भी हिम्मत नहीं हारी थी उसने! मजदूरी करके, दूसरों का खाना बनाकर उसने घर चलाने का बीड़ा उठा ही लिया था। पर पुरुष के अहम् को जो उससे ठेस पहुँचती है।—गाँव में बाप-दादाओं के बनाए हुए घरौंदे को बेच देने की ठान बैठे, और मना करने पर भी चल ही तो दिए गाँव।—और वह मौसेरा भाई हरिनारायण?—मकान नहीं बिका तब तक तो भाई साहब, और बिक्री के रुपए हाथ आए कि पागल बनाते देर न लगाई! पैसा सटक कर ही छोड़ देता तो आज यह अवस्था तो न देखनी पड़ती। पर जगत में भाई की मर्यादा की दुहाई न फिर जाती?—और यदि कहीं दावा ही कर बैठे भाई तो?—पुलिस को सौंप देने मात्र से ही तो सब ओर से रक्षा हो गई। दुह लेने के बाद और अधिक दूध न दे सकने की हालत में गाय को कसाई के हाथ सौंप देने वाला भी तो मनुष्य ही है। और पुलिस क्यों दया दिखाए? बचा कर रखे गाय, तो कसाई क्या हुआ?

कितनी भयानक लग रही थी पुलिस-थाने की वह काल कोठरी उस अंधेरी रात में? चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा, उबकाई पैदा करने वाली वैसी ही काली बदबू से घिरा हुआ। कितने सहज भोलेपन से सिपाही ने कहा था,

'घबराओ मत ! मेहतर कुछ देर पहले ही साफ कर गया है। उठफिर नहीं सकता न ! बेचारा हाजत रफा और करे ही कहाँ ? अब तो पेचिश भी कम हो गई है।' और झटके के साथ ही दिमाग से सारी बदबू छँट गई थी। पति ही जब किसी गन्दगी में दिनरात बेबस पड़ रहा हो, तो उससे घृणा ? और तभी मानो वह सूचीमेद्य अंधकार भी तो छँटने लग गया था। एक कंबल पर दूसरे कंबल से ढका हुआ वह नरकंकाल मानो अँधेरा फोड़ कर उसे ही तो पुकार रहा था। उनके ज्ञान प्रकाश को उस अँधेरे में ही क्या, कहीं भी किसी भी अवस्था में पहचान लेती वह।

नीचे बैठकर जैसे ही उसने पति की पीठ पर हाथ रखा था, मानो बिजली छू जाने से वे कराह उठे थे। थानेदार ने कहा भी तो था कि पीठ में पसली टूट गई थी, तभी तो पेट के बल लेटे हुए थे। समझा भी हो, डॉक्टर होगा। जेलखाने के अहाते में डॉक्टर भी तो यमराज ही होता है। फिर पीठ की हड्डी ही क्यों, पैर की हड्डियाँ भी तो पट्टे में बँधी थीं। कितने करुण स्वर में बुदबुदाए थे वे, 'मैं बचूँगा नहीं तमसा...पुलिस ने मुझे बहुत मारा है, जाने किस जनम का बदला ले रहे हैं ?'

वही रात और दूसरे दिन ही तो सेवा कर सकी। शरीर को न हो, पर मन को कितनी राहत मिली थी उन्हें ? शाम तक अवस्था बिगड़ती गई, पेचिश फिर उभर आई थी। रात को डॉक्टर की जगह कंपाउण्डर ही आया था और नींद का मिक्स्चर कड़ा कर गया था। आधीरात तक तो साँस भी टूटने लगी थी। ओफ...वह कुछ समझ पाए उसके पहले ही गोद ही में तो उनके मुँह से झाग निकल आए थे। एक हिचकी ली थी...जीवन एक हिचकी के सिवा और है ही क्या ?

उसी हिचकी की कामना वह स्वयं भी तो कर रही है। नहीं, कष्ट क्या है ?—वह तो सब कष्टों का पूर्ण विराम है। उस शेष हिचकी के पहले कितनी शांति में सोए हुए थे वे उसकी गोद में ? साँस टूट रहा था, कि जकड़ रखनेवाले कष्टों के बन्धन टूट रहे थे ? क्या एक धुंधला-सा प्रकाश नहीं उस अँधेरे कैदखाने में फैल गया था ?—आत्मा का दिव्य प्रकाश ?—उसे देखने के लिए भी तो आँखें चाहिए।—शास्त्र कहते हैं न, शरीर से पृथक होकर जीव एक सूक्ष्म शरीर धारण करके उस शव के आसपास मँडराया करता है। कहाँ अनुभव किया उसने अपने को अकेली उस रात में ? ओह ! क्या आज भी उसके कानों में वह उत्तप्त श्वास रह-रह कर कुछ संदेश नहीं फूंक जाती ?—समझ नहीं पाती उस भाषा को तो क्या हुआ ?— शायद उसकी प्रतीक्षा में वे आज भी उसके इर्दगिर्द

ही मँडरा रहे हों।—पर तब क्यों रक्षा नहीं की उसकी संकट के उन क्षणों में जबकि महेश्वर का भाव उसे घेर लेना चाहता था, उस पर छा जाना चाहता था ?

स्वप्नका नियामक भी तो मन स्वयं ही है। इस दायित्व से कैसे इनकार किया जाए ? सत्यवादी हरिश्चन्द्र को इसीलिए तो स्वप्न की सत्ता स्वीकार करनी पड़ी थी। कर्तव्य की वल्गा मोड़ भी दे मन को कर्म के मार्ग पर, किंतु मन की प्रेरणा के किसी अन्य मार्ग की कल्पना भी तो स्खलन है ! —और यह मानव मनु का पुत्र ही तो है, इसी को शासन करने के लिए तो मनु को व्यवस्था देनी पड़ी थी; क्योंकि यह कुपथ में चल पड़ता है ! मृत्यु को इसे यूँ ही नहीं वरण करना पड़ा, वर्जित फल चखने का लोभ जो नहीं रोक सका यह !—लोभ ही से कामना जगती है, काम विकसित होता है। जागते रह कर नहीं, सोकर, छिपकर जिसे पाना पड़े, वह पापही तो है —आत्मा के साथ छल !—सोकर—वह भी तो मृत्यु है ! ...यह स्वप्न देखना कैसे बन्द हो ? महेश हो या ज्ञानप्रकाश, यह तो अद्वैत नहीं है ! कहां है कैवल्य ? कैसे प्राप्त हो वह ?—वह प्रकाश, सत्य और ज्ञान से भी आगे, महाप्रकाश ! जिसमें समर्पित, एकाकार, सायुज्य हो लिया जाए !—शरीर की साधना से मन जीता जाए, आत्मवृत्त कर लिया जाए ! शरीर की सत्ता तभी असत्य हो सकती है, मुक्ति का पथ तभी स्पष्ट हो सकता है। तमसाके लिए अन्यत्र मुक्ति नहीं है।

उस दिन संध्या को जब टरेसा आई तो तमसा इन्हीं विचारों में खोई हुई थी। संध्या का सद्यस्नात स्वच्छ, किंतु भीगा हुआ रूप, तमसाके कक्ष की अपूर्व सादगी, और किसी अतीन्द्रिय लोकमें पहुँची हुई तमसाकी मुखच्छबि ! टरेसा अपने आपको भूल ही गई। वह मानो किसी मन्दिर में किसी अद्भुत देव-विग्रह के सम्मुख पहुँच गई है। वह अभिभूत होगई और विना कुछ खयाल किए नीचे वैठकर उसके चरणों में अपना सिर टिका दिया। तमसाका ध्यान भंग हुआ और देखकर बोली,

‘अरे टरेसा, यह क्या करती हो बहन ?’

‘देवदर्शन से अपना जीवन सफल कर रही हूं बहन !’

‘तो देवता का आशीर्वाद लो। तुम्हें तुम्हारा प्राप्य वर शीघ्र मिले !’

टरेसाने मुस्कराकर कहा, ‘पर उसके पहले भक्त की पूजा तो ग्रहण करो वहन ! इस कलियुग में बिना पहले पूजा ग्रहण किए भगवान भी वर नहीं देते !’

‘यह जो प्रणिपात किया तुमने, यह क्या कम पूजा है इस कलियुग में ? तुम जैसी पढ़ीलिखी, पाश्चात्य संस्कृति में सनी हुई, इतनी श्रद्धा कहां से ले आई ?’

'तुमसे वहन ! और पाश्चात्य संस्कृति की बात तुमने खूब कही । पाश्चात्य क्या, कोई संस्कृति हो भी ? तितली के पंख लगाकर डाल-डाल पर फुदकते फिरना क्या कोई संस्कृति है ? तुमने भी तो अंग्रेजी साहित्य पढ़ा है, उसमें सवकुछ क्या यही छिछलापन है जो तुम हमलोगोंमें देखती हो ?'

तमसाने मुस्करा कर कहा, 'यह अतिरेक है वहन ! शरीरको जैसी आदत होजाती है वह उसी में सुख मानता है । उसी तरह मनकी भी आदत हो जा सकती है, और वह भी अपनी आदत के पथ में ही सुख माने तो उसमें रोष करने की बात तो नहीं ! तुम आगई, अच्छा हुआ । मैं खुद ही आज तुम्हारी कामना कर रही थी टरेसा !'

'मेरा सौभाग्य वहन ! पर क्या कोई नई बात है ?'

'नई बात तो नहीं है ! —मैं यहाँ से चली जाना चाहती हूं !'

'चली जाना चाहती हो ?—कहाँ ?'

'कहीं दूर, बहुत दूर; तीर्थयात्रा पर !'

'तीर्थयात्रा पर ?—पर जहाँ तुम हो वहीं पर तो तीर्थ है ! —संतों के जहाँ पैर पड़ें—'

'यह तुम्हारा मत हो सकता है टरेसा, सबका नहीं !'

'मैं सबके वाहर नहीं हूं बहन ! और तुम वाहर क्यों चली जाओगीं, जबकि हम सबको तुम्हारी आवश्यकता हो ?—भगवान भी भक्तों की उपेक्षा नहीं करते वहन !'

'भगवान न करते हों । मैं तो हाड़-मांस की बनी अबला हूं टरेसा । मुझे ही इतनी सी स्वाधीनता नहीं होगी ?'

'स्वाधीनता तुम्हें क्यों नहीं है ? इच्छा होते हुए भी किसी ने अटका तो नहीं रखा है तुम्हें !'

'किसी की इच्छा भी तो वन्धन हो सकती है पगली ।' मुस्कराकर तमसा ने कहा । 'यह व्यर्थ का मोह है । मेरा अव यहाँ प्रयोजन भी तो नहीं रहा !'

'तुम्हारा न सही, हमारा प्रयोजन तो है ।'

'क्या है तुम्हारा प्रयोजन ?'

'कहते डर लगता है बहन, लेकिन मन ही मन तुम न जानती होओ सो भी मैं नहीं मानती । इसलिए हठ ही कहूँगी उसे । कह सकती हो, तुम जैसी संस्कारशील नहीं हूँ मैं । कहना यही चाहती हो न, कि सत्यप्रकाश का व्याह हो चुका है और अपनी गृहस्थिको लेकर संसारधर्म निभाने लग गया है । माता-पिता

को और क्या चाहिए ?—पर क्या नारी-जीवन का यही सब कुछ है ? अपने निज के लिए उसका क्या कोई महत्व नहीं है ?'

'महत्व क्यों नहीं है ? उसी की साधना के लिए तो मैं जाना जाहती हूँ ! इस जन्म का तो सब कुछ हो गया, अब आगे के लिए भी तो कुछ किया जाए !'

'संसारधर्म क्या नारी के लिए नहीं है ?—क्या नारी की चरम उपलब्धि यही वैधव्य है कि जिसे पाकर स्त्री और कुछ पाने की कामना ही न करे ?—तब तो फिर···'

'नहीं टरेसा, वैधव्य नहीं, और मातृत्व भी नहीं। अपने आप में भी नारी कम महत्वशील नहीं है। विकास के क्रम में वह पुरुष से आगे की कड़ी है, उसकी भूलों का सुधार। जो यह कहते हैं कि वह पुरुष को बाँधती है, वे भूल जाते हैं कि मुक्ति के लिए अपने आपको सब तरफ से समेटने के लिए किसी एक से बँधना ही पड़ता है। तुलसीदास या विल्वमंगल का उदाहरण पर्याप्त नहीं है ?'

'लेकिन तुम···'

'बँधी मैं भी थी टरेसा, तभी तो एकात्म होने का संकल्प जुटा सकी हूँ। मैंने अपने पति की गृहस्थि में कम नहीं बाँधा था अपने आपको।'

'तब भी बहन, कुछ महान आत्माएँ अपने नहीं, दूसरों के प्रयोजन के लिए अवतार लेती हैं। रत्नावली या बिल्वमंगल की प्रेयसी न सही, ईश्वर स्वयं भी तो दूसरों को मुक्ति दिलाने के लिए अवतार लेता है।'

'बहस में तुमसे जीतूंगी नहीं टरेसा। तुम्हारी जैसी शिक्षा कहाँ है मेरी ? किन्तु तुम कहना क्या चाहती हो ?—स्पष्ट कहो न।—मुझसे अब किसी का क्या बनता-बिगड़ता है ?'

'और किसी का मैं नहीं जानती। पर एक व्यक्ति तो तुम्हें ईश्वर ही समझता है।'

तमसा ने हँसकर कहा,—'सौभाग्य का वर तो दिया है तुम्हें। और यह भी विश्वास दिला सकती हूँ बहन, कि मेरे अदृश्य होते ही सशरीर वर भी तुम्हें प्राप्त होगा !'

'क्या कहती हो बहन ?—मैं अपनी नहीं, जिनकी बात कह रही थी उनके जीवन की सार्थकता—'

'मैं जानती हूँ महेश्वर के जीवन की सार्थकता क्या है। वह मुझे पाने में नहीं, तुम्हें पाने में है। और जब तक मैं यहाँ उसके सामने हूँ, मैं जानती हूँ, उसकी दृष्टि किसी ओर नहीं जाएगी। मैं इसीलिए उसकी दृष्टि से ओझल होना चाहती हूँ ! और तुम्हें इसमें सहायता देनी होगी।'

'दृष्टि से दूर हो सकती हो बहन, पर उनके मन से कैसे दूर होओगी ?'

'दृष्टि से दूर मैं होती हूँ, मन से दूर तुम करोगी । सफल हम दोनों होंगी । तुम न भी हो सको एकाएक, तो भी मुझ पत्थर के हटते ही उसके रुद्ध प्रेम का झरना तुम्हें आत्मसात कर लेगा ।'

'लेकिन···' क्या कहे टरेसा आगे, कुछ समझ नहीं पाई ।

'कहो टरेसा, क्या कहना चाहती हो ?—क्या तुम्हें अपने प्रेम पर विश्वास नहीं है ?'

हाथों से अपना मुँह छिपाकर टरेसा बोली, 'अपने प्रेम का विश्वास न होता तो इस तरह क्या मैं कभी पागल होती ?—लेकिन विवाह ?—म् म् मैं क्या कभी उनके योग्य हूँ ?' और उसने तमसा की गोद में अपना मुँह छिपा लिया ।

प्यार से उसकी पीठ सहलाते हुए तमसा ने कहा, 'क्यों नहीं हो तुम उसके योग्य ?'

'मेरा अतीत जो मेरे साथ चिपटा पड़ा है ।'

'वह बीत चुका है टरेसा ।'

'पर मैं तो अभी बीती नहीं । मेरा यह अपवित्र झूठा शरीर···'

'गृहस्थि शरीर से नहीं, मन से बसाई जाती है पगली बहन; और मन शरीर से बहुत ऊपर है । शरीर तो साधन भर है । फिर तुम्हारे इस शरीर का वह भी तो स्वामी रह चुका है ।'

'पर इसका तो मैंने सौदा भी किया था ।'

'वह तुम्हारी विवशता थी । न भी रही हो, तब भी वह बात बीत गई है । अपनी अपवित्रता का बहम छोड़ दो बहन ! स्त्री अपवित्र अपने मन से ही होती है, शरीर से नहीं । यदि इस तरह विचार किया जाए तो पवित्र नाम की वस्तु जगत में कोई नहीं रहेगी । शास्त्र तक कह गए हैं 'न स्त्री दुष्यति जारेण' । जल, अग्नि और पृथिवी के समान स्त्री सदा पवित्र हैं ।'

'पर वे इस रूप में स्वीकार करेंगे ?'

'जब तक मैं हूँ, शायद नहीं करे । मेरी मृगतृष्णा उसे सदा उलझाए-भरमाए रह सकती है !'

तमसा की गोद से उन्मुक्त होकर टरेसा ने कहा, 'यदि ऐसा है बहन, तो तुमसे अधिक उपयुक्त और कौन है उनके लिए ? शरीर की अखंड पवित्रता में अगर तुम्हारा विश्वास है, तो तुम इस वैधव्य का कवच क्यों ढोए जा रही हो अपने ऊपर ?'

तमसा ने कोई उत्तर नहीं दिया, किन्तु खिड़की के वाहर घने काले दिगन्त में उसने दृष्टि गड़ा दी। शरीर और मनका कितना खँडहर रौंध कर आज वह यहाँ तक पहुँच पाई है, आज की भौतिक शिक्षा में पली यह भोली युवती क्या समझ सकेगी ? लेकिन टरेसा ने कुछ और ही समझ कर कहा,

'तुम्हें तो वे प्राणों से भी अधिक चाहते हैं न बहन, भक्ति ही तो करते हैं। इतनी गहराई से कोई किसी को प्यार कर सकता है, यह यहीं देखा है। तुम्हें पाकर उनका जीवन तो धन्य हो ही उठेगा, तुम्हारी...'

बात काट कर तमसा ने कहा, 'नहीं टरेसा, मेरे परमात्मा यह नहीं चाहते। मेरी वात छोड़ो। शरीर की आसक्ति से मुझे उपराम हो चुका है। क्या यही चाहती हो कि जिस कीचड़ से निकल चुकी हूँ, फिर उसी में फँसूँ ?'

'तो मुझे ही ऐसा उपदेश क्यों देती हो ?'

'इसलिए कि नारी जीवन की सार्थकता पाना तुम्हें शेष है। नारी अपने आपको पूर्ण करती है पति-पुत्र-घर-परिवार आदिको पाकर ही। मुझे यह पूर्णता मिल चुकी है, उसमें से बढ़कर ही मैं आज यहाँ तक पहुँच पाई हूँ। मेरे जीवन का लक्ष्य तो अब पूर्णमिदं परब्रह्म ही है।'

'अगर यही नारी की पूर्णता हो तो मुझे भी ले चलो न अपने साथ ?—मुझे भी जीवन का कुछ लाभ मिल जाए !'

'पुरुष को पाए बिना नारी अधूरी जो है। ब्रह्म को पाने का लक्ष्य तो पूर्ण मानवता का ही है। उसे पाने के लिए व्यक्ति को पहले प्रकृति का उद्देश्य सिद्ध करके समर्थ होना पड़ता है, प्रकृति का उद्देश्य यानी वंशवर्द्धन।'

'तो क्या परब्रह्म और प्रकृति के बीच कोई विरोध है ?'

'नहीं, विरोध नहीं, बल्कि प्रकृति परब्रह्म का एक आयाम ही तो है। विकास की दृष्टि से एक क्षेत्र में प्रकृति का लक्ष्य है वंशवर्द्धन। उसके बाद का क्षेत्र है चरम-लक्ष्य मुक्ति का। वह परमात्मा की खोज का क्षेत्र है—खोज का ही नहीं, उसे पाने का, पाकर उसमें खोजाने का, तत्त्वमसि होने का।'

टरेसा से कुछ जवाव नहीं वन पड़ा तो बोली, 'लेकिन इसका क्या ठीक है कि मैं माँ वन ही जाऊँगी ?'

'मैं तुम्हें पुत्र ही नहीं, पुत्रवधू भी दिए जा रही हूँ बहन !'

'तुम्हारे आशीर्वाद से उन्हें तो मैं अनायास ही पागई हूँ, इसे अस्वीकार नहीं करूँगी ! लेकिन उन्हें पतिके रूप में पाना ?— हाथ में सरसों जमाना चाहती हो बहन ! आज उनका पत्र आया है !'

'महेश का ? कब आ रहा है वह ?' और अकस्मात ही उसका कलेजा धड़क उठा !

'आज आधीरात की गाड़ी से। दिल्ली से आज सवेरेकी गाड़ी से चल पड़े होंगे !'

'मैं तो चाहती थी कि उसके आने के पहले ही निकल जाऊँ ! पहले क्यों नहीं बताया टरेसा ?'

'पत्र भी आजही तो आया है। आजाना चाहिए था उन्हें एक हफ्ते पहले ही, पर अपनी नई पाई हुई सम्पत्ति की लिखा-पढ़ी में इतना और रुक जाना पड़ा है उन्हें !'

'लिखा-पढ़ी ?'

'वे तुम्हें बहुत चाहते हैं बहन ! इतना चाहते हैं कि अगर तुम उन्हें न मिलने को ही अपना सुख समझती हो तो वे इसे भी स्वीकार कर चुके हैं !—पता नहीं, उनके मन में क्या है, पर उनके बाद तुम्हें किसी तरह का कोई कष्ट नहीं हो इसके लिए अपनी सम्पत्ति की वसीयत कर डाली है !'

'टरेसा !' और तमसा के चेहरे का रंग उड़ गया। भावुकता में टरेसा भी इतनी खोई हुई थी कि उसने लक्ष्य नहीं किया, और कहती रही अपने हाथ के बैग में से एक अभिलेख-सा निकालती हुई, 'यह देखो। बहनों के हिस्से के बाद भी काफी बड़ी रकम उन्होंने पाई है, और लगभग सारी ही सम्पत्ति उन्होंने तुम्हारे नाम लिख दी है !' और उसने तमसा की ओर दृष्टि उठाई !

यह क्या ?– तमसा का सारा शरीर काँप रहा है, आँखें फट कर एकदम शून्य दृष्टि से उसे ही ताक रही हैं, ओठ रह रह कर काँप रहे हैं, और वह कुछ समझे कि वह गिरी, वह गिरी !– झपट कर सम्हाल लिया टरेसा ने, वरना संभव था कि सिर फर्श पर टकरा जाता ! मदन शायद घर में नहीं है। तमसा को बड़े यत्न से नीचे सुला कर वह उठी, तख्त पर से तकिया खींचकर तमसा का सिर उस पर रखा। पासके कमरे से एक गिलास में पानी भर लाई। और पानीके छींटे मुँह पर छिड़कने लगी। कुछ समय बाद तमसा ने आँखें खोल दीं।

टरेसा ने ही कहा, 'मुझे नहीं मालूम था बहन, कि तुम्हारे मनको इस खबर से चोट पहुँचेगी। जो कुछ उन्होंने किया है, शायद सत्य के लिए किया है ताकि तुम उसकी ओर से निश्चिन्त हो सको।'

'मुझे तो और भी चिन्तामें डाल दिया है उसने ! और क्या लिखा है पत्र में ?– पत्र है ?'

'पत्र तो मैं सत्य को दे आई हूँ बहन !'

'सत्य को ?– क्या उसको तुमने इस वसीयत की बात बता दी ?'

'नहीं, वह बात नहीं बताई। वह तो तुम खुद ही बताना बहन, ताकि उसके मनसे उनके प्रति दुर्भावना हट जाए !'

'किंतु पत्र जो दे दिया है तुमने उसे ?'

'इसलिए कि अगर हो सके तो रात स्टेशन जाकर उन्हें लिवा लाए !– पत्र में तो केवल यही लिखा है कि सम्पत्ति का प्रबंध करने में देरी होगई ! बस !'

'तो सत्यको इस वसीयत की बात मालूम नहीं होने देना टरेसा। इस वसीयत को नष्ट करना होगा। यह अच्छा ही है कि मैं चली नहीं गई !—किंतु सत्य क्या उसे लेने जाएगा स्टेशन ?—मुझे भय लग रहा है टरेसा। वह कहीं उसका अपमान न करदे। तुम उसे नहीं जानती ! बल्कि तुम क्यों नहीं चली जाती स्टेशन ?'

जाने का टरेसा का इरादा तो था, किंतु आते ही क्या उसके साथ उसे ही तमसाके सामने नहीं आना पड़ता ? उसने कहा, 'तुम भी चलोगी ?'

'मैं ?' और वह फीकी हँसी हँस दी। यह विडंबना भी वदी है ? प्रकट में उसने कहा, 'अगर सीधा यहीं आया तो सबेरे मिलती ही। पर तुम जाओ, और उसे अपने साथ ही लिवा ले जाना। इस वसीयत को यहीं छोड़ जाओ। कल तुम्हारे सामने ही उससे बात करूँगी !'

'मेरे जानेकी भी क्या जरूरत है बहन ?—बल्कि अगर तुम्हें आपत्ति न हो तो रात मैं तुम्हारे यहीं पड़ी रहूँगी !'

'आपत्ति होगी तो यही कि इस कमरे में तुम्हें कष्ट होगा। उस कमरे में या अध्ययन के कमरे में तो सो ही सकती हो !–और अगर मेरी ही पहरेदारी करनी हो तो कह चुकी हूँ कि उससे बातचीत किए बिना यह वसीयत भी तो मुझे जाने नहीं देगी !' और वह किंचित मुस्करा दी।

'पहरेदारी यूँभी एकदम गैरजरूरी नहीं है बहन ! तुम्हारे चेहरेका रंग जो मजबूर कर रहा है !'

'रंग होगा तो आता-जाता रहेगा ही ! सच ही कभीकभी लगता है, इस शरीरसे निकल कर कहीं चली गई हूँ !–कहाँ, कुछ याद नहीं पड़ता ! पीड़ाके गुजर जाने पर जैसे उसकी केवल याद ही रह जाती है न, तड़प की अनुभूति नहीं ! उसी तरह !–पर मन उसके पहले ही खो जाता है टरेसा !–आज मन अपनी जगह पर है ! मेरी ओरसे निश्चिन्त होकर घर जाओ, और यही चाहो तो स्टेशन से उसे यहीं ले आना। पर में मिलूंगी सवेरे ही !'

'तो मदन को भेज दिया जाए स्टेशन ?—मैं नहीं जाऊँगी !'

'उससे सत्यकी भावना पर अंकुश नहीं लगेगा बहन ? और आजतो वह अपनी मौसीके यहाँ जाने की कह गया है ! शायद अब लौटे नहीं ।'

'वह नहीं लौटेगा तो मैं यहीं रहूँगी । तुम्हें हो, लेकिन मुझे सत्यकी तरफ से कुछ भय नहीं है !'

'तुम्हारी इच्छा ! पर इस कमरे में नहीं, तुम उधर ही सोओगी !'

'नहीं, यह भी नहीं होगा । उधरसे दरी खींच लूँगी, मुझे कोई कष्ट नहीं होगा !'

'बहन जो हो, तुम्हारा हठ ही सही । पर कुछ खा-पी जरूर लो । मेरे तो व्रत हैं, पर रसोई में सबकुछ है, तुम जानती ही हो ! या मैं बना दूँ ?'

'भूख मुझे भी नहीं है । पर चलो, दूध गरम कर लेती हूँ । वह तो व्रतमें भी चलता है न !'

किसे कितनी नींद आई, यह जानते हुए भी, एक दूसरे से निपट अनजान दोनों अपने में ही खोई सारी रात लेटी रहीं ! समय-असमय किसीने आकर उन्हें जगाया नहीं । आदत के अनुसार सवेरे ही उठकर तमसा स्नान से निपट पूजा में बैठ गई । सावधान-सतर्क टरेसा भी जागती हुई करवटें बदल रही थी । काफी सवेरा हो जाने पर बाहर खटखटाहट हुई तो उत्कर्ण टरेसाने उठकर शीघ्र ही दरवाजा खोल दिया । सामने कला को देखकर उसे आश्चर्य हुआ । महेश्वर नहीं सत्यप्रकाश भी नहीं ! कला को भेजना उचित समझा उन्होंने ?

कला पहले भी आ चुकी है इस घर में । भीतर प्रवेश कर उसने टरेसा के पाँव छुए और पूछा, 'रात कब आए वे लोग ?'

'यहाँ तो कोई नहीं आया रात !—वहाँ नहीं पहुँचे ?—सत्य भी नहीं ?'

'यही जानने के लिए तो आई हूँ । रात भर राह देखती रही । बारह बजे गए वे स्टेशन, पर अभी तक कोई नहीं लौटा । गाड़ी तो डेढ़ बजे पहुँच जाती है न ?—अगर लेट भी रही हो—'

'रात शायद स्टेशनके वेटिंग रूम में ही ठहर लिए हों । सोचा होगा आधी रात क्यों किसीको तकलीफ दी जाए ! अच्छा हुआ तू आ गई डीयर —'

'माँजी कहां हैं ?'

'वे पूजामें बैठी हैं । उनकी तबीयत रात कुछ वैसीही देखी, तो मैं यहीं रुक गई !'

'क्या हुआ उन्हें ?'

'कुछ खास नहीं !—देखती हूं, बाथ-वाथ से निपट आई है ! गुड ! तू जरा किचन में देख ! रात मदन भी अपनी मौसीके यहां चला गया ! मैं नहा आती हूं । तवतक बहनकी पूजाभी निपट लेगी । अब तो वे लोग ब्रेकफास्ट लेकर ही आएँगे । बट लेटअस कीप एव्हरी थिंग रेडी !'

लेकिन ब्रेकफास्ट की तैयारियाँ धरी ही रहीं, किसीको अवकाश नहीं मिला । कुछ ही समय बाद अखवारों के द्वारा और स्थानीय रेडियो समाचार से सारे शहरमें खबर फैल गई कि रात गाड़ी से उतरा एक मुसाफिर जव स्टेशन से शहर की ओर आ रहा था तो कुछही दूर अँधेरे में कुछ गुंडों के द्वारा घेर लिया गया । सहायता के लिए जब उसने शोर मचाया तो उन्होंने उस पर हमला कर दिया और घायल करके सामान छीनने लगे । लेकिन शोर सुनकर रेलवे धुलिस घटना स्थल पर पहुँच गई । और गुंडे तो भाग गए पर एक लड़का पकड़ा गया है । मुसाफिर को तत्काल अस्पताल पहुँचाया गया है, जहां उसकी अवस्था संकटजनक बताई गई है !

और जरा सी सक्रियता से ही टरेसा ने पता लगा लिया कि घायल मुसाफिर और कोई नहीं, स्वयं महेश्वर है, तथा पकड़ा हुआ हमलावर स्वयं सत्यप्रकाश !

अनस्तित्व का अस्तित्व

●

घाव सांघातिक थे, और वहुत अधिक रक्त वह जाने से बेहोशी भी गहरी थी। भीड़ ने तो समझ लिया था कि अभागा शिकार समाप्त हो गया, किन्तु अस्पताल पहुँचने पर पता लगा कि प्राण शेष हैं, और चेष्टा करने पर बचाए भी जा सकते हैं। महेश्वर को शीघ्र ही उपचार गृह में ले जाया गया, और तात्कालिक चिकित्सा के बाद ही रोगी को ऑक्सीजन पहुँचाना शुरू कर दिया गया। टरेसा और तमसा जब अस्पताल पहुँचीं तो वह उपचार गृह में ही था। डॉक्टर, नर्सें आ-जा रहे थे। घायलको बचाने की प्राणपण से चेष्टा की जा रही थी। स्थिति संकटापन्न तो है ही, बच जाए तो भी स्वस्थ होने में कुछ समय तो लगेगा ही।

आपरेशन गृह के सामने ही दोनों ने दिन बिता दिया। कान और आँखें दरवाजे पर ही लगी रहीं। दरवाजा खुलते ही टरेसा प्रश्नाकुल दृष्टि से आगन्तुक को पूछती, और उसी अनिश्चितता का उत्तर इशारे में ही उसे मिलता। घावों की सफाई और मरहम पट्टी में ही बहुत समय लग गया। बेहोशी भी बराबर बनी रही, बल्कि रोगी चेत में आकर कहीं पीड़ा न अनुभव करे, इसके लिए उसे सुलाए ही रक्खा गया। रक्त वह जाने से दुर्बलता बहुत अधिक हो गई थी।

टरेसा जितनी सक्रिय थी तमसा उतनी ही जड़ बनी हुई थी। वह या तो खुलते-बन्द होते हुए दरवाजे की ओर देख लेती, या टरेसा की ओर, जब कभी वह इधर-उधर किसी काम से आती-जाती। टरेसा से भी कुछ पूछने का साहस मानो उसमें नहीं रह गया है। लेकिन टरेसा की सब ओर दृष्टि है। आवश्यकतानुसार सारी सूचना देकर वह तमसा का उत्साह बनाए रखने की चेष्टा भी करती है और दूसरे अन्य आवश्यक कर्तव्य भी पूरा करती जा रही है। आते ही अधिकारियों से मिल कर उसने एक अलग केबिन की व्यवस्था कर ली है, ताकि रोगी को सीधे वहीं पहुँचाया जाए। यद्यपि दोनों वहाँ रहकर बराबर उपचार करेंगी, किन्तु एक प्रशिक्षित नर्स की भी सारे समय रहने की व्यवस्था हो गई है। बीमार को पूर्ण

विश्राम आवश्यक है। पुलिस अधिकारी भी बिना डॉक्टर की अनुमति के कोई पूछताछ नहीं कर सकेंगे। बाहर के किसी व्यक्ति से मुलाकात नहीं होगी। तमसा और टरेसा को भी देखकर यदि रोगी किसी तरह की प्रतिकूल प्रतिक्रिया प्रकट करे तो उन्हें भी वहाँ से तत्काल हटा दिया जाएगा।

जगह-जगह सारे शरीर में पट्टियों से लिपटे महेश्वर को जब स्ट्रैचर पर लाद कर केबिन में लाया गया तब भी वह अचेत ही था। उसे पहचान पाना भी असंभव था। चिकित्सकों ने सतर्क कर दिया था कि चेत में आने पर भी बीमार से न कोई बोलेगा, न उसे ही बोलने के लिए प्रेरित करेगा। नर्स ने टरेसा और तमसाको भी उपचार का काम समझा दिया। उसका काम काफी हलका हो गया।

चिकित्सक बार-बार आते-जाते रहे। कुछ समय तक तो उनकी चेष्टाओं से कुछ भी अनुमान नहीं लगाया जा सका। प्रश्न करते हुए भी भय लगता। किन्तु संध्या तक लगने लगा कि डॉक्टरों को अपने प्रयत्न पर संतोष होने लगा है। यद्यपि सुधार की गति बहुत धीमी है, पर उपचार अनुकूल दिशा में चल रहा है।

तमसा के मूक व्यवहारको टरेसा समझती है। टूट तो तमसा पहले से ही रही है। इस दुर्घटना से भी उसे आघात पहुँचा है। इस सारे कांड में सत्यप्रकाश की जो भी भूमिका रही हो, उसके लिए वह स्वयं को शायद उत्तरदाई समझती हो तो आश्चर्य नहीं। फिर भी वह जो अपने को संयत किए हुए है, वह उसकी प्रबल इच्छाशक्ति ही का प्रमाण है। बीमार की सुश्रूषा में वह एकदम खो गई है। मानो किसी यंत्र से चलाई जा रही हो। ऊपर से दिखाई देनेवाली उसकी अनासक्ति और भावहीनता ही प्रमाणित करती है कि उस भावकी व्याप्ति की न तो कहीं थाह है और न ही है कहीं उसकी सतह। सभी ओर केवल वह भाव ही भाव है अतल, अछोर।

लेकिन इसके विपरीत टरेसा की सक्रियता उतनीही प्रखर और अर्थपूर्ण है। अस्पताल, घर, बाहर, पुलिस-थाना, अदालत, सब ओर उसकी दृष्टि है। कहाँ-कब-क्या हो रहा है, इससे बेखबर रहनेसे तो काम चलेगा नहीं। ठीक घटनास्थल पर तो पुलिस ने केवल एक ही आसामी गिरफ्तार किया था, कोई अखाड़ेबाज पहलवान धौली उस्ताद, जो खुद घायल हो जाने से भाग नहीं सका था। उसी ने दूर छिपे सत्यप्रकाशका पता दिया था और अन्य साथियों के नाम भी बता दिए थे। दो और आसामी अहमद और जमना रेलगाड़ी में भागते हुए दूसरे दिन गिरफ्तार किए गए थे। एक मिसरीलाल और दूसरा मँगरू अभी फरार थे। गिरफ्तार आसामियों को एक साथ नहीं रखा जाता, ताकि उनके अलग-अलग बयान लिए जा सकें, और एक को दूसरे के खिलाफ उभारकर सही

स्थितिका पता लगाया जा सके। सत्यप्रकाश ने पहले तो अपना निपट अज्ञान प्रकट किया था, किंतु जब उसे बताया गया कि उसके अन्य साथियों ने सत्यप्रकाश की प्रेरणा से ही हमला करने की बात कही है तो उसे कहना पड़ा कि अपनी निर्दोषिता प्रमाणित करने का उसके पास कोई प्रमाण नहीं है। बाद में तो समाचारपत्रों में यह भी छप गया है, कि अपने विवाह के अवसर पर सत्यप्रकाश ने काफी कर्ज ले रखा था जिसे उतारना जरूरी था। सत्यप्रकाश को यह मालूम हो गया था कि महेश्वर इसी बीच एक अच्छी सम्पत्ति का मालिक हो गया है और दिल्ली से जब लौट रहा है तो उसके पास काफी पैसा होना ही चाहिए। अच्छे लाभांशका लोभ देकर उसने ही अपने साथियों को प्रवृत्त किया है। कहा गया है कि सत्यप्रकाशने सब कुछ स्वीकार कर लिया है।

लेकिन टरेसाको विश्वास नहीं हो रहा है कि सत्यप्रकाश इतना नीचे गिर सकता है। तो भी प्रत्यक्ष से तो आँखें मूँदी नहीं जा सकतीं। कल्पना भी नहीं थी कि महेश्वर के साथ विवाह की वेदी पर बैठ कर गृहस्थि बसानेका सौभाग्य पा सकेगी वह, किंतु उसी शाम तो तमसाने स्पष्ट कहा था कि यह संभव ही नहीं, निश्चित है। और उस सौभाग्य की प्रतीतिका अनुभव हो उसके पहले ही यह प्राणांतक दुर्घटना ?—उसी संपत्तिको लूटने के प्रयास में सत्यप्रकाश, जिसका कि प्रकारान्तर से वह स्वयं मालिक होने वाला हो ?—यह भाग्य का उपहास, समस्त व्यापार कितना असाधारण, फिर भी कितना सहज और कितना वास्तविक ?—इस असाधारण नाटक में यदि अनायासही उसे एक भूमिका ग्रहण करनी पड़ गई है तो क्या रंगमंच से भाग वह खड़ी हो ?—नहीं, उसे धैर्य के साथ सारे व्यापार को देखना-समझना होगा, और हो सके तो अपनी भूमिका से घटनाक्रमको कुछ सार्थक मोड़ देना होगा, ताकि उसके निरर्थक आत्मकेन्द्रित जीवनमें कुछ क्षण तो सार्थक हों। सारे जीवन में ये दो-तीन व्यक्ति ही तो मिले हैं उसे, जिन्होंने उसके प्यार की कसौटी प्रस्तुत की है। कौनसा मूल्य है जो वह चुका नहीं देगी अपने प्रयत्न से उन्हें सुख पहुँचाने में ?

महेश्वर की अवस्था कुछ और सुधर जाए तो सत्यप्रकाश से थाने पर जाकर मिलना होगा। अपने रूपका प्रभाव वह जानती है, मिलने में उसे कठिनाई नहीं होगी। मिलकर ही तो उसके लिए जमानत की व्यवस्था की जा सकती है!—महेश्वर की अवस्था सुधर रही है, पर धीरे-धीरे। अब उसे पीड़ा की अनुभूति भुलाए रखने के लिए नींद की गोलियाँ नहीं दी जातीं, उसका स्वयंका ही आग्रह था। दवा के सहारे अचेत पड़े रहनेकी अपेक्षा स्नेह और सौंदर्यकी दो-दो मूर्तियों के दुलार भरे यत्न से अपने उपचार को प्रत्यक्ष अनुभव करते रहना

उसे अधिक उत्साहजनक और लाभदायक लगा है। कभी वह कृतज्ञताभरी आँखें खोलकर उनके अथक परिश्रम को निहारता है, कभी आँखें वंद करके अपने पीड़ित शरीर पर उनके रोमांचक स्पर्श से पुलक अनुभव करके मन ही मन इस दुर्घटनाको एक अवसर समझता है। बोलनेकी अभी भी उसे मनाही है। हमले के समय हाथापाई में उसका नीचे का जबड़ा फट गया था। चम्मच से दिए गए द्रव भोजनको भी हलक में उतारना उसे कष्ट देता था।

तमसाका व्यवहार उसीतरह यंत्रचालित-सा जड़ और निर्विकार है, बल्कि महेश्वरकी अवस्था में सुधार के अनुपातमें उसकी जड़ता बढ़ती जा रही है। टरेसाने तमसाको स्वयं सत्यप्रकाशकी इस कांड में लिप्सा के संबंध में कुछ बताया नहीं था, किंतु इससे क्या वह सत्यप्रकाश की भूमिका से अनजान होगी?—कहीं इसीलिए तो नहीं तमसाका अव्यक्त मन आक्रांत हो उठा हो? सत्यप्रकाश को बचाना ही होगा, चाहे सचमुचही वह इस कांडमें सक्रिय रूप से सहयोगी रहा हो! घृणा और प्रेम, उसके रंगीन व्यक्तित्व में एकही सिक्के के दो पहलू हैं, और घृणाकी भावना यदि अपनी चरमावस्था तक पहुँच चुकी है तो आगेका मार्ग प्रेम ही का तो होगा!—और, अब जबकि महेश्वरकी अवस्था संकट से बाहर है तो सरलता से वह किसी भी रात जाकर मिल आ सकती है। किसी को खबर देनेकी भी क्या जरूरत है?

मिलने के लिए जब टरेसा थाने के लॉक-अप के सामने पहुँची तो सत्यप्रकाश सोनेकी तैयारी कर रहा था। देखतेही बोला, 'अरे मौसी, तुम यहाँ?' चेहरे पर आश्चर्य और ग्लानि भी छा गई।

'तुम यहाँ हो तो मैं क्यों नहीं आ सकती प्रकाश?'

'आ-जा तो तुम सब जगह रह सकती हो मौसी, पर तुम जानती हो मैं तो हत्यारा हूँ।'

'हत्यारे?—किसके हत्यारे हो तुम?'

'तुम्हें नहीं मालूम उन मास्टर साहबका, महेश्वरजी का?—बाहर कुछ भी खबर नहीं फैली?—स्टेशन से लिवा लानेके लिए गया था न मैं?'

'पर यह किसने कहा तुमसे कि उनकी हत्या हो गई?—आहत वे जरूर हुए हैं, अभी भी अस्पताल में हैं पर उनकी हालत पहलेसे अच्छी है, और सुधार बराबर बना हुआ है।'

सुनकर सत्यप्रकाश मौन रहा। खुशी या रंज, कोई रंग नहीं चेहरे पर। दृष्टि उसने सामने मटमैली दीवार पर फैलादी। अवश्य ही सम्वाद महत्वपूर्ण है, जीवनकी धाराही मुड़ जा सकती है। पर—खुश हो इस खबर से या नाराज ?

पहरे के सिपाही ने, जो टरेसाको यहाँ लाया था, लॉक-अप का ताला खोल दिया। सींखचे वाला दरवाजा खोलकर टरेसा भीतर चली आई और बोली, 'तुम्हें यह खबर किसीने नहीं दी ?'

'नहीं। किसीने नहीं दी, और अचेत होकर उन्हें जमीनपर गिरते हुए जो देखा था मैंने !—बैठोगी नहीं ?—यहाँ तो यह कंबल ही है।' और कुछ हटकर उसने जगह करदी। बे-तकल्लुफ टरेसा बैठ गई तो सिपाही ने दरवाजा भिड़ा दिया और बाहर पहरा देने लगा।

टरेसा ने पूछा, 'क्या इसीलिए सारा अपराध तुमने अपने सिर ले लिया है ?'

'लेनेका सवाल ही कहाँ उठता है मौसी ?—वह तो सिर पर आ ही पड़ा है। सवाल हो तो उसे उतारनेका ही हो सकता है। पर उतार फेंकना क्या सरल है ?'

'क्यों नहीं। अब तो तुम जान ही गए हो कि वे जीवित हैं।'

'उससे क्या अंतर पड़ जाता है ? वे बच गए तो मेरे भाग्य से नहीं, उन्हीं के भाग्य से बचे हैं।—छोड़ो इन बातों को। क्लाराका क्या हाल है ?'

'उस बेचारीका तो जीना मुश्किल हो गया है। एक तरफ तुम्हारा दुःख, दूसरी ओर उसकी माँ के ताने। खाना-पीना तक हराम हो रहा है।'

सत्यप्रकाशने एक लंबी साँस ली, 'मेरे पल्ले पड़कर सचमुच उसे दुःख ही तो उठाना पड़ा है। उसकी माँ सचही तो कहती है। मेरी ओर से कहना मौसी उसे कि वह और ज्यादा मेरी ओर से कष्ट न उठाए। मुझे सजा हो जाए तो उसके लिए तलाक की राह तो खुलही जाएगी।'

'अपना पथ वह खूब समझती है प्रकाश ! पर तुम इतने निराश क्यों हो रहे हो ?—वे बचतो गए ही हैं, हमला चाहे जिस इरादे से किया गया हो उनपर। और तुमने तो बयान में कहा है न, कि आरोप से अपने बचावका तुम कोई सबूत नहीं पाते ? '

'सबूत ही तो चाहिए। और सबूत हैं इस बातके कि मैंने अपने लाभके लिए साथियों को बाकायदा इकट्ठा करके उनपर कातिलाना हमला किया था !'

'एक बात कहूं ?—तुम्हें मालूम नहीं है। उस पत्रसे तुम्हें इतनाही तो मालूम हुआ था कि अपनी नई पाई हुई सम्पत्तिकी व्यवस्था करने में ही उन्हें वहाँ इतनी देर होगई। यदि कहो कि उस व्यवस्थाका भी तुम्हें ज्ञान है तो तुम इस हमलेमें प्रवृत्त हो ही नहीं सकते ! तुम्हें यही कहना होगा।

'पर वह व्यवस्था क्या है ?'

'वह व्यवस्था है उस सम्पत्तिकी वसीयत तैयार करना, जिसके अनुसार उनके बाद इस समग्र सम्पत्ति की वारिस तुम्हारी माँ होगी, यानी प्रकारांतर से तुम ! और वे कागज मेरे पास हैं !'

'कहती क्या हो मौसी ?'

बोली टरेसा, 'अपनी ही सम्पत्ति को लूटने के लिए कैसे तुम किसी को प्रेरित कर सकते हो ? तुम्हें यही बयान देना होगा कि तुम तो उन्हें स्टेशन से लिवा लाने के लिए ही गए थे !'

सत्यप्रकाश ने टरेसा के चेहरे की ओर देखा और कहा, 'क्या यह मेरे खिलाफ ही सबूत नहीं होगा मौसी ? कह नहीं सकते वे, कि इसलिए जल्दीसे उन्हें मौत के घाट उतार कर तुरन्त सारी सम्पत्ति का मालिक बन जाऊँ ?'

'वह दूरकी कल्पना है प्रकाश ! अगर तुम सहयोग दो तो मैं बैरिस्टर भार्गवसे बातचीत करूँ !'

सत्यप्रकाश अभिभूत होता जा रहा था। उसकी आँखें डबडबा आईं, बोला, 'मुझ जैसे अनजान, अभागे, आवारा लड़के के लिए यह सब क्यों जरूरी है मौसी ? मुझे अब जीवित रहने की इच्छा नहीं रही। यह जीवन असफलताओं की लम्बी जोड़ के सिवा हुआ ही क्या ? अब आत्मीयों को इसमें घसीट लाकर उनके ही दुर्भाग्यका कारण क्यों बनता जाऊँ ?'

'कर्मठ व्यक्ति उन असफलताओं को सफलताकी सीढ़ी बना लेते हैं !'

'मेरा भाग्य वह नहीं है मौसी। अच्छा काम सफल न हो, पर बुरा काम भी तो मेरा सफल नहीं होता ! यही देखो, इतना होने परभी मास्टरजी बच ही तो गए !'

टरेसा ने चौंक कर सत्यप्रकाश की ओर देखा, लेकिन सत्यप्रकाश को भी मानो कहीं से ठोकर लग गई ! यह क्या निकल गया मुँह से ?—सचमुच यह क्या मिथ्या नहीं है ? क्या दैव ही उसे नष्ट कर देने को तुला हुआ है ?—एक लंबी साँस उसके सीने को दबाकर निकल गई और वह बोला, 'कितने खूंखार दैत्य मन के कोने में ही घात में छिपे बैठे रहते हैं मौसी, किसी भले विचार को पनपने भी नहीं देते। तुम्हें चोट पहुँची है न ? पहुँचना ही चाहिए ! सचमुच तुमसे पत्र पाते ही मैंने मँगरू को

बताया था कि वे उसी दिन रात गाड़ी से आ रहे हैं। यदि मन में दुर्भावना न होती तो उसे वताता ही क्यों? और फिर सभी साथियों को ले, छिपकर उनका मार्ग भी तो रोका था! इतना सब कुछ कर लेने के बाद कैसे कहूं और कौन विश्वास करेगा कि ठीक हमले के समय ही मनमें एक दुर्निवार ग्लानि पैदा हो गई थी और अनायास उस हमले का मैंने विरोध कर डाला था!—विरोध सफल नहीं हुआ तो कौन विश्वास करने लगा उसका?—उन्हें मर गया जानकर आत्मा ने वहुत धिक्कारा है। और यही तो अवसर रह गया है प्रायश्चित करने का!—अच्छा ही है मौसी!'

'विरोध का क्या प्रयत्न किया था तुमने?' उत्सुक होकर टरेसा ने पूछा।

'कौन विश्वास करेगा मौसी? जो कुछ हुआ उसका जब मूल कारण मैं ही था, तो और कुछ कहने से क्या लाभ?—बल्कि जब तुमने उनके बच जाने की खबर सुनाई तव भी मनकी वह धिक्कारकी भावना तो नहीं मिटी न!—वहुत चेष्टा की है मैंने, कि उन्हें श्रद्धा करूँ, सर्वथा इस योग्य हैं वे। कितने एहसान हैं उनके मुझपर? और...मनके भीतर ये दैत्यही मैदान क्यों मार ले जाते हैं?—बेकार है सबकुछ मौसी! मैं तुम्हारा ऋण कभी नहीं भूलूंगा। तुम्हारे प्रेम में मुझे क्या नहीं मिला? कला मुझे तुमसे ही मिली है, उसे तुम्हें ही लौटाता हूं! उसे वह मार्ग सुझा देना मौसी, जिससे वह कष्ट न पाए भविष्य में मेरी ओर से! तुम अनायास मेरी मां बन गई, लेकिन मैं तुम्हें वह गौरव नहीं दे सका!' और उसका कंठ अवरुद्ध हो गया।

टरेसा ने सत्यप्रकाश को अपने पास खींच लिया और उसकी पीठ पर हाथ रख कर सहलाने लगी। उसकी भी आँखें नम हो गई थीं। कुछ समय इसी तरह नीरवता में बीत गया। कुछ प्रकृतिस्थ हुआ तो सत्यप्रकाश ही बोला, 'पहले शायद होता भी, पर अब तो जीवित रहने का साहस नहीं होता मौसी! यह काला मुँह देखने के लिए मास्टर जी जीवित हैं, यह क्या कम कष्टकर है? जब पहले पहल हमारी मुलाकात हुई थी, उन्होंने सोचा था कि देवता न सही, मुझ में एक मनुष्य को तो विकसित देख सकेंगे। अब क्या शैतान बना हुआ मैं उनके सामने हो सकूंगा? संभव है अपने उपकारों की कड़ी में एक बार और वे अपने बयान से मुझे बचा लें, पर तब तो और भी कालिख नहीं पुत जाएगी मुँह पर? बल्कि उनसे कहो मौसी, कि मुझे अपने पाप का प्रायश्चित करने दें। धौली उस्ताद ने आखिर जो कुछ कहा है वह बेबुनियाद तो नहीं है।'

'पर मनके दूसरे कोने में जो साधू बैठा हुआ है उसे ही क्यों झुठलाते हो? गुजरे हुए को भूलकर नए सिरे से सब कुछ क्यों नहीं प्रारम्भ किया जाए?'

'कोई कर पाए, पर मुझमें साहस नहीं है! इस पर ही कौन विश्वास करेगा

कि ठीक हमले के समय ही मैंने मास्टर जी को बचाने की चेष्टा की थी, चाहे अनजाने ही सही ?'

'सच होगी तो कोई क्यों विश्वास नहीं करेगा ?' टरेसा ने कहा।

'मैं ही नहीं कर पाता तो कोई क्यों करने लगा ? धौली के साथ जब उलझ ही पड़ा तो अच्छा होता वही मुझे ठिकाने लगाने में सफल हो जाता।'

'धौली तुम्हें ठिकाने क्यों लगा देता ?—वह तो तुम्हारे दल में था न ?'

'तकदीर ही तो है। धौली ने देखा कि जिसके लिए चोरी करो वही कहे चोर, तो दल का कैसे हुआ ? मास्टर जी पर जब वह लपका तो एक आघात कर चुका था ! मास्टर जी ने शोर मचाया और जब संभावना हुई कि लोग दौड़े आएँगे तो उसने छुरा निकाल लिया ! बस, न जाने क्यों और कैसे मैंने लपक कर उसके पाँव पकड़ लिए। छूटने की चेष्टा में विफल होकर उसने मुझ पर ही छुरा तान दिया। शायद आप ही शरीर ने बचने की चेष्टा कर डाली। छुरा उससे छीन तो लिया, पर कुहनी नहीं बचा सका। और उस हालत में अगर मैं छुरे से उसके पैर को आहत न कर देता तो क्या वह मास्टरजी को छोड़ता ?—तुम उसे नहीं जानती मौसी, ताकत में राक्षस है पूरा। दोनों हाथों से किसी का गला धर दबोचे तो साँस क्या, शिराएँ फूट कर बाहर निकल पड़ें।'

'और तुमने ये सब बातें पुलिस को नहीं बताईं ?'

'कहा न, पुलिस विश्वास करेगी ? सुनाया तो कहा कि बहाने कर रहा हूँ। यही तो है भाग्य का परिहास !—अगर मैं धौली को आहत नहीं करता तो उसे सम्पत्ति भी मिल जाती, और हम दोनों भी भाग जाने में सफल हो जाते।' फिर कुछ क्षण की मौन के बाद बोला, 'पता नहीं, मास्टरजी को कितना कुछ मालूम है। न मालूम हो तो ही अच्छा है। मुझे नफरत ही करते रहें, खूब गहरी नफरत तभी मुझे शान्ति मिलेगी मौसी।'

'पर तुमने तो उन्हें बचाया है प्रकाश !'

'आग लगाकर बुझाने दौड़ा हूँ न ! बुझ गई हो, पर आग लगाने का गुनाह तो हो गया ! और लोग तो यही कहेंगे न कि कपड़ों पर खून छिटक कर शहीद बनना चाहता हूँ। आखिर धौली, जमना, मंगरू, इन लोगों को ही मास्टरजी से क्या दुश्मनी है ?'

'दुश्मनी नहीं, पर सम्पत्ति का लोभ तो था न ! और तुम्हें नहीं था, क्योंकि सम्पत्ति तुम्हारी है।

'वह तो अभी की बात है। पर तब भी मन ही मन इस गिरोह से मैं नफरत करता रहा हूँ मौसी, मास्टर जी जानते हैं, इस मंगरू ने ही मुझे मारा-

पीटा है। क्या करूँ, एक चक्कर में फँस गया था। कला को फँसाने के लिए इन्होंने ही मुझे पार्लरका मार्ग पकड़ाया था। कला फँस गई, पर सचमुच तो मैं ही फँस गया उसके पाश में। और तब मुझे उसको बचाने की जिम्मेदारी लेनी पड़ गई। व्याह भी जल्दी मुझे इसीलिए करना पड़ा। यह बात भी कम नहीं खटकी है इन्हें। कला की माँ को भी देखा होगा तुमने, आजकल वह मंगरू से मेल-जोल कम करती जा रही थी। मां को लेकर मास्टरजी के प्रति मेरे विद्रोह को इन लोगों ने उकसाया ही। हमले की योजना में तो मैं था भी नहीं। कहीं निकल न भागूँ इसलिए साने रहे मुझे। लेकिन अस्वीकार नहीं करूँगा कि अगर मन का चोर ही मुझे न ढकेल देता तो ये लोग कभी इतना आगे न बढ़ पाते—'

—तभी एक 'खट' की आवाज हुई। बाहर गश्त लगानेवाले सिपाही ने एँड़ी मिलाकर सामने से आ रहे इंस्पेक्टर को सलाम किया। पास आकर नवयुवक थानेदार ने मुस्कराकर कहा, 'साढ़े दस बज रहे हैं डियर। मुझे बाहर जाना है। यू हैव टु लीव्ह नाउ।'

'यस, आइ हैव ऑल्सो फिनिश्ड। थैंक्यू।' और टरेसा ने उठ खड़ी होकर सत्यप्रकाश से कहा, 'कोई यकीन करे या न करे, तुम्हें सब सच बात बता देनी चाहिए प्रकाश! आगे क्या करना है, दैट वी विल सी।' और फिर थानेदार की ओर अभिमुख होकर बोली, 'बड़ा अजीब लड़का है। फ़ैक्ट्स आर क्वाइट डिफरंट, और सबूत नहीं होने से ही उन्हें नहीं बताना चाहता। एनी वे, आयेम श्योअर, ही वुड बी ओ. के. विथ यू।'

'वी विल टेक केअर।'

और थानेदार के साथ ही साथ टरेसा भी बाहर चली आई। सिपाही ने ताला बंद कर दिया। सत्यप्रकाश देखता ही रहा निर्निमेष!

दूसरे दिन दुपहर को पथ्य लिए जब टरेसा उपस्थित हुई तो महेश्वर ने कुछ इशारे से और कुछ अस्फुट स्वर में तमसा की अनुपस्थिति का कारण पूछा। प्रायः सभी समय तमसा और टरेसा दोनों वहीं बनी रहती हैं, किंतु केबिन से बाहर का काम तमसा नहीं करती, और इस तरह महेश्वर की आँखों के सामने सदैव तमसा ही रहती है। उसे पथ्य देने का काम तो तमसा ने अपने लिए ही कर रखा था, कभी टरेसा देती भी तो तमसा पास ही खड़ी बराबर दृष्टि रखती है।

महेश्वर की जिज्ञासा समझ कर टरेसा ने सहज भाव से कहा, 'विश्राम तो दूर, इन दिनों उनका नहाना-धोना भी तो ठीक तरह नहीं हुआ। यू आर नाउ

बेटर, इसलिए आज मैंने उन्हें घर जाकर कुछ विश्राम कर लेने को तैयार किया है।—कोशिश करूँगी कि सेवा में कुछ भूल न हो।'

बहुत धीमे ओठों ही ओठों में महेश्वर ने कहा, 'ठीक किया तुमने डियर, पर विश्राम की तो तुम्हें भी जरूरत है न।—सारा मुँह सूख रहा है।'

'सूख गया है?' मुस्कराकर टरेसा ने कहा, 'लोग तो कहते हैं कि इतनी रौनक मेरे मुँह पर पहले कभी नहीं थी। रूज-पाउडर से पुता चेहरा ही देखते रहे हो न! अब मेरे अपने सच्चे रंग में देखने का अभ्यास करना होगा। बुरी लगूँ तो कहना, निगाह से ओझल हो जाऊँगी।'

'बुरी लगोगी तुम?—तुम दोनों ही तो मेरी आँखें हो, तब यह जगत ही कैसे अच्छा देख पाऊँगा टरेसा!' और उसने टरेसा के हाथ को अपने शिथिल हाथ की मुट्ठी में दबा लिया।

टरेसा ने दूसरा हाथ महेश्वर के सिर पर रख कर कहा, 'आइ नो! एण्ड नो मोअर टॉक्स! आँखें बन्द करके सोने का प्रयत्न करो अब!' और उसने हथेली से उसकी पलकें सहला दीं।

महेश्वर के स्वास्थ्य में अच्छी प्रगति हो रही है। नर्स भी अब बराबर नहीं बनी रहती। तमसा और टरेसा दोनों ही सबकुछ सम्हाल लेती हैं। कल टरेसा ने तमसा को अनुरोध करके घर भिजवा दिया था कि वह रात घर लौट जाए और काफी विश्राम करके सबेरे नहा-धोकर निश्चिन्त हो जाए तब आए। कह तो दिया था टरेसा ने, पर मन ही मन समझ रही थी कि उसके आग्रह की उपेक्षा करके तमसा संध्या के पहले ही लौट आएगी। महेश्वर को अकेली टरेसा के भरोसे छोड़ना उसके लिए सहज न होगा। किंतु रात दस बजे तक वह न लौटी तो टरेसा के मन पर से सहज बोझ उतर गया। उसके अनुरोध की कोई अपने आत्यंतिक स्नेह के बावजूद रक्षा करता है, टरेसा को आत्मसम्मान बढ़ाने वाली यह नई अनुभूति हुई। इसी अनुभूति में संतोष मानकर वह लेट तो गई, पर नींद कहाँ? न आकर तमसा ने उचित तो किया है, पर यदि चली ही आती, तो भी अनुचित कुछ न होता। बल्कि यह टरेसा की आशंका नहीं, आशा के अनुकूल ही होता।—कहीं नाराज तो नहीं हो गई वह? टरेसा के अनुरोध में किसी अभिसंधि की कल्पना तो नहीं कर ली उसने? ईर्ष्या का भाव तमसा में भी कभी पैदा हो सकता है क्या?

और दूसरे दिन दुपहर तक भी तमसा नहीं लौटी तो टरेसा को चिन्ता ने आ घेरा। महेश्वर ने भी जिज्ञासा की, पर आवश्यकतानुसार उचित उत्तर देकर टरेसा ने उसे टाल दिया। दुपहर के बाद जब कि महेश्वर कुछ सो रहा था, टरेसा ने

नर्सको बुलाकर कहा कि वह जरा घर की ओर जाना चाहती है, जल्दी लौट आएगी। तबतक वह महेश्वर का ख्याल रक्खे।

फ्लैट पर पहुँची तो दरवाजे पर ताला मालूम कर उसे बड़ी हैरानी हुई। मदन कहीं मटरगश्ती के लिए बाहर चला भी जाए, पर तमसा तो इस समय कहीं बाहर निकलती नहीं। अस्पताल लौट गई हो तो राह में कहीं तो दिखाई देती। अपने पुराने घर तो जाने ही क्यों लगी? सत्य की खोज में कहीं थाने पर तो नहीं पहुँच गई? तमसा की कहानी उसने सुनी है, पुलिस या थाना उसके लिए हव्वा नहीं है। तो क्या थाने पर जाकर खोज करे?

निराश होकर लौट ही रही थी कि सामने से मदन आता दिखाई दिया। बहुत आजाद हो गया लगता है। मालिकों में से कोई नहीं है न घर पर! इसी बीच उसकी मौसी भी भानजे की खबर के साथ जाने क्या-क्या और नहीं ले गई होगी? टरेसा को देखते ही मदन ने पूछा,

'अरे दीदी, आप?—कबसे आई हैं?'

'कहाँ था रे?—कबसे आई हुई हूँ! तमसा बहन कहाँ हैं?

'कहाँ हैं?—सो तो आपही जानती होंगी।' और ताला खोलकर उसने दरवाजा खोल दिया।

'मैं जानती होती तो तुझसे पूछती?' और भीतर प्रवेश करते करते कहा, 'कल जो यहाँ के लिए चली, उसके बाद देखा ही कहाँ है?'

'देखा नहीं! क्या कहती हैं आप?—वे तो कल शाम ही को लौट गई थीं। कल इसी समय आईं नहाई-धोईं, शाम को मन्दिर गईं, और वहाँ से लौटकर कपड़े समेटे और लौट गईं।'

'कहाँ लौट गईं?'

आगे बढ़कर अध्ययन-कक्ष खोलकर मदन ने कहा, 'और कहाँ लौटेंगी, अस्पताल ही तो लौटेंगी। मैं इक्के तक पहुँचा कर आया हूँ।'

'कपड़े समेटे तूने कहा। क्या कपड़े वगैरह भी साथ ले गईं?'

मदन ने स्वीकृतिसूचक सिर हिलाया तो टरेसा ने पूछा, 'क्या क्या कपड़े ले गईं?'

'वही अपने पहनने-ओढ़ने के!—कह रहीं थीं, रोज रोज तो आना हो नहीं सकता, जाने कित्ते दिन अस्पताल में रहना पड़े। पर आप तो ऐसे पूछ रही हैं जैसे—' उसने पीछे मुड़कर देखा, टरेसा दरवाजे पर ही खड़ी थी, उसके मुँह का रंग उड़ चुका था। मदन ने वाक्य पूरा किया, 'क्या वे अस्पताल नहीं पहुँचीं?'

'नहीं ।—घर से शाम कितनी बजे निकली थीं ?'

'यही आठ बजे होंगे !—आप खड़ी क्यूँ हैं ?—चलिए, बैठिए न ।'

टरेसा ने पूछा, 'इक्का क्या तूने खुद अस्पताल का करके दिया था ?'

'नहीं दीदी, मैंने तो नहीं दिया । जो इक्का आगे सबसे पहले खाली दिखाई दिया, उसीको रोककर बैठ गईं ।'

'जाते समय कुछ कह गईं तुझसे ?'

'नहीं, मुझसे तो कुछ भी नहीं कहा उन्ने ।'

'घरपर उनसे मिलने या उनके बाद कोई आया था ?'

'मन्दिर से आई तब उनके साथ एक औरत थी, कुछ लँगड़ाती थी, जैसे एक अंग में लकवा हो ।'

लँगड़ी औरत ? टरेसा नहीं समझ पाई । लौटकर वह तमसा के कमरे की ओर मुड़ गई । धक्का देते ही दरवाजा खुल गया । धड़कते दिल से टरेसा भीतर घुसी, मदन भी पीछे-पीछे भीतर चला आया । सारा कमरा पहले जैसा ही था, कहीं कोई परिवर्तन नहीं दिखाई देता । सामने अलमारी में उसी तरह बालकृष्ण की सजी हुई मनोज्ञ मूर्ति आने वाले की ओर हाथ फैलाए सतृष्ण नेत्रों से देख रही है । फर्श पर वही चटाई उसी तरह बिछी हुई, पर सिरहाने पड़े कम्बल नहीं थे । कुछ साड़ियाँ खूंटी पर टँगी हुई हैं, मानो अभी स्नान घर से तमसा आ ही रही होगी । कमरे में इतना सामान कभी था ही नहीं, कि चला जाए तो पता न लगे ।

भीतर ही भीतर टरेसा काँप रही थी । तो क्या सचमुच ही तमसा नगर छोड़ कर चली गई ? यह दुर्घटना न घटी होती तो शायद तभी चली जाती ।—तो क्या महेश्वर को संकट से बाहर देखकर ही उसने अपना यहाँ का प्रयोजन समाप्त समझ लिया ? अभी महेश्वर पूरी तरह ठीक हुआ कहाँ है ? और सत्यप्रकाश का संकट क्या किसी प्रकार की चिन्ता का विषय नहीं ?—एक अनजान पराए पुरुष के लिए तो इतनी चिन्ता, और अपने ही पुत्र के प्रति इतनी विरक्ति ? सत्यप्रकाश को तो माँ की आवश्यकता जितनी आज है उतनी पहले कब थी ?—और वह लँगड़ी औरत कौन थी ? टरेसा से छिपकर चली जाने का इरादा तो तमसा का था नहीं । कैसे पता लगाया जाए ? इसी शहर में हो, तो कहाँ हो सकती है ?—किस किससे परिचय था उसका यहाँ ?—और महेश्वर को क्या जवाब देगी टरेसा ?

मानो अपनी व्यथा का समाधान सम्मुख अलमारी में रखी उस देवमूर्ति से ही मिल सकता हो, उसने विह्वल-करुण दृष्टि से उस ओर देखा और देखती ही रह

गई। कितनी भव्यमूर्ति है! घुटनों के बल चलकर मानो माँ की गोद में ललक पड़ने को आतुर! एक हाथ ऊपर उठा हुआ है मानो सामने खड़ी माँ अंक में उठा लेने को ललचा रही हो। तमसा ने कृष्ण के इसी रूप की भक्ति की है, यही क्या उसके हृदय की अजस्र ममता का प्रमाण नहीं है? टरेसा अपने को रोक नहीं सकी, और अधिक निकट से देखने के लिए अनायास ही मूर्ति के पास खिंची चली आई।

और मानो देवता ने उसकी पुकार सुन ली। आसन पर टिके उनके दूसरे हाथ के नीचे एक पत्र दबा पड़ा है। मानो टरेसा को देख कर ही पत्र सरकाए हुए घुटनों के बल रेंगकर माँ के सामने आ पहुँचे हैं। अत्यन्त भावाविष्ट टरेसा ने अमित स्नेह के साथ उस मूर्तिको उठाकर हृदय से लगा लिया। पत्र नीचे आ गिरा। उठाकर देखा तो सिरनामे पर उसी का नाम लिखा हुआ था, 'आयुष्मती टरेसा'।

टरेसा सब कुछ भूल गई, अपने निज के अस्तित्व को भी। स्नेह-विगलित परवश होकर उसने मूर्ति को चूम लिया और फिर उसे अपने अंक में लेकर नीचे चटाई पर बैठ गई। एक कोने में खड़ा मदन निर्वाक् सब कुछ देखता रहा कि टरेसा ने बड़े मनोयोग से पत्र खोला और पढ़ने लगी है।

तमसा की लिखावट टरेसा ने पहले कभी देखी नहीं थी। यह आशा स्वाभाविक थी कि तमसा जैसी विदुषी की लिखावट वैसी ही सुन्दर होगी। किन्तु नहीं, वह तो एकदम टेढ़ी-मेढ़ी उबड़-खाबड़ है, जैसे किसी अपढ़ ने बना-बना कर लिखा हो। लेकिन भाषा की प्रांजलता और भावों का सौष्ठव तो उस जैसा ही था। अपने को संयत करके टरेसा ने पत्र पढ़ा।

'आयुष्मती बहन टरेसा, मेरे अत्यन्त प्यार का आशीर्वाद ग्रहण करो। अपने जीवन का यह पहला पत्र तुम्हें लिख रही हूँ, शायद अन्तिम भी। इस लिखावट जैसा ही मेरा जीवन भी टेढ़ा-मेढ़ा, ऊबड़खाबड़ रहा है। पत्र लिखने की जरूरत मुझे कभी नहीं हुई। अच्छा-बुरा, मेरा जीवन शब्दों का कभी नहीं रहा, कर्म की सीमा में सब कुछ हाथों की पहुँच के भीतर ही तो मेरा संसार रहा है। पढ़ना सीखकर भी जीवन में लिखने का अवसर मैंने कभी आने नहीं दिया। आज जब कि मैं दूर हो रही हूँ, तुम लोगों से ही नहीं, सत्यप्रकाश और शायद अपने आप से भी, इसीलिए इस पत्र की जरूरत पड़ गई है। न लिखती तब भी चल जाता। यह विश्वास है कि गलत तुम मुझे कभी समझोगी नहीं, पर अपनी ही वासनाओं से तो मुझे भारमुक्त होना है, और यह तुम अवश्य जानती हो कि ये वासनाएँ भी अपने को लेकर नहीं हैं।

'क्यों जा रही हूँ यह तुमसे छिपा नहीं है। तभी चली जाती, पर इस दुर्घटना ने रोक लिया। महेश को एकदम स्वस्थ देखजाने का लोभ कम न था। सम्भव होता तो यह साध भी थी कि तुम दोनों की युगलमूर्ति वेदी पर एक साथ देख लूँ—अब वह कल्पना में देख लूँगी। सत्य का प्रकरण, जिसे तुम अबतक बड़ी सतर्कता के साथ मुझसे छिपाती आ रही हो, मेरे लिए बड़ा लज्जाजनक हो रहा है। मुझमें किसी को मुँह दिखाने की पात्रता नहीं रही, महेश को तो बिलकुल नहीं। जब यहाँ और अधिक बने रहने का प्रश्न ही नहीं रहा, तो आज संध्या की गाड़ी से ही क्यों न चली जाऊँ ?

'भाग्य ही की बात है कि जन्म लेने के लिए सत्य को मेरी ही कोख मिली। माँ बनने को नारी आतुर तो हो जाती है, किन्तु नहीं जानती कि कितना बड़ा दायित्व उसे उठाना है ? यदि सन्तान को वह समाज में प्रतिष्ठा से जीवित रहने योग्य व्यक्तित्व न दे सके तो क्या यह उसके साथ वैर नहीं हुआ ? सत्य को मैं वह नहीं दे सकी। प्रायश्चित के लिए जब वह आज सीखचों में बन्द फाँसी के फन्दे की प्रतीक्षा कर रहा हो तो, अपने आप को दोष देने के सिवा कर ही क्या सकती हूँ ? और इसे माँ सहे भी तो कैसे ? इसीलिए जा रही हूँ, दूर, कि अपना कहने को कुछ न रहे।

'कुछ न रह जाए यह तो संभव है, पर भूलना कहाँ संभव है?—पर भूलना तो होगा ही। भूले बिना मुक्ति कहाँ है ? इन उपग्रहों के आकर्षण में उलझी रहने से ही तो चेतना अनस्तित्व के चिन्मय प्रकाश को देख नहीं पाती ! समस्त मानवता के परम लक्ष्य का पता मुझे नहीं है। व्यक्ति के अन्तर्मन में जो चेतना का प्रकाश है, वह उसी के मार्ग का तो दीपक हो सकता है। शास्त्र कहते हैं अन्तर्मन की यह चेतना उसी परम-प्रबुद्ध प्रकाश का अंश है। न भी हो, पर मार्ग है तो कहीं ले ही जाता है। और ज्यों-ज्यों हम आगे बढ़ते हैं, अपना सब अतिरिक्त झड़ता-छँटता चला जाता है। महाप्रस्थान के समय जैसे एक-एक कर पांडव-परिवार के सक्रिय अंग ही गलते चले गए थे न !

'मैं गलने नहीं जा रही हूँ लेकिन। शरीर बंधन तो है, पर वह आत्मा की धरोहर भी तो है। जिसने दी है वही लेगा। इसीलिए तो उसकी पवित्रता बनाए रखने का यत्न किया है। मेरा शत्रु, रूप, अभी भी साथ है। सोचा भी था कि अगर यह साथ नहीं छोड़ता तो मैं ही इसे झटक चलूँ। उस दिन अस्पताल में उबलता पानी जो चेहरे पर नहीं गिरा, वह उस नर्स की सतर्कता का ही तो दण्ड है, वरना इसका खेद भी नहीं रहता। कौन जानता था कि दरवाजा ठेलकर नर्स उसी समय आ पहुँचेगी ? पूछा तो क्या कहा, जानती हो ?—उम्र तो कच्ची ही है,

पर सेवा की शिक्षा कितनी पूर्ण है उसकी ? कहती थी, यह रूप तो मानवता की उपलब्धि है। इसे निहार-निहार कर ही तो पशु अपनी हिंस्र भावना पर काबू पाकर मनुष्य हो पाया है। उसकी तो रक्षा करनी चाहिए, नष्ट नहीं।—हँसू या रोऊँ इस भावना पर ? नारी को इसीलिए इस भारत में आम्रपाली नहीं, नगरवधू बनना पड़ा था। और मैं ?—मेरे पति किसी अंग्रेज कवि की उक्ति कहा करते थे, सौंदर्य दृष्टि के लिए है, स्पर्श के लिए नहीं।

'लड़की के साथ सहज स्नेह हो चला था। कितनी लगन और आस्था के साथ सेवा करती हैं वे रोगी की ! सिस्टर कहते हैं न उन्हें ?—सिस्टर नहीं, मदर कहना चाहिए उन्हें। और उस दिन वह ले आई थी न अपनी उस मदर सुपीरियर को। कहती थी कि अगर नर्स का काम सीखना चाहूँ, तो वह अपने देश भेजकर व्यवस्था कर सकती है। इसाई धर्म की वकालत तो थी ही। कहती थी ईसा की शरण जाने से सब भयों से मुक्ति मिल जाएगी। जैसे मैं भयों से ग्रस्त होऊँ, जैसे मुझे मेरे बालकृष्ण का आश्रय न हो, विश्वास न हो।

'तुम्हारा यह धर्म उदार है, शक्ति है इसमें त्रस्त मानवता को सांत्वना देने की। ईसा का चरित्र अद्‌भुत है। समस्त पापों का भार अपने ऊपर लेकर मानव को पीड़ामुक्त करने के लिए प्रसन्नता से स्वयं सलीब पर चढ़ जाना और उस समय भी अत्याचारियों के लिए प्रार्थना करना कि 'प्रभू, तू उन्हें क्षमा कर दे। वे नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं !' अन्य धर्मों में अवज्ञा करने पर नर्क का या जन्मांतर में कठोर यातनाओं का विधान है। यही आश्चर्य है कि इतनी आन्तरिक गहराई वाले धर्म के अनुयायियों में अध्यात्म के स्थान पर इतना भोगवाद कैसे है ? धर्म के प्रति उनमें इतनी अरुचि क्यों है ? शायद इसका कारण यह है कि इस शताब्दि में सभ्यता के भौतिक पक्ष की पश्चिम में विलक्षण प्रगति हुई है, जिसकी चकाचौंध में वह, सर्कस के कमाल देखने में खानापीना भी भूल जाने वाले बच्चे समान, बहक गया है। मैं उन्हें दोष नहीं देती। बुद्धि और तर्क के बल पर जो विश्वास जागृत होता है, उसे आस्था और भावना के बल पर पराजित नहीं किया जा सकता।

'मानव के लिए ज्ञानके अन्ततोगत्वा दो ही तो मार्ग हैं। एक चिन्तन और मनन के द्‌वारा आत्मबोध, और दूसरा नितांत तार्किक और प्रायोगिक। इस देशके मनीषियोंने पहले मार्गका ही अनुसरण करके वेदांत जैसे दर्शनों को स्पष्ट किया है, जहाँ कर्मफल के रूपमें कारणवाद को मान कर ही बहुत पहले विकासवादकी पुष्टि की गई है। मानव-योनि पाकर जीव मृत्यु के बाद किसी निम्न योनिमें नहीं जाता। वेश बदलकर या तो वह स्थूलरूपमें वासनाओं के इर्दगिर्द पहलेकी तरह

मँडराता हुआ सुखदुख अनुभव करता है या फिर उच्चतम भावलोक में पहुँचकर कैवल्य प्राप्त करता है। मेरी तो कम से कम यही शिक्षा है, विश्वास है, और है इस जन्म का संबल।

'—तीर्थयात्रा, सम्पूर्ण जीवन अगर तीर्थयात्रा नहीं तो और क्या है?—जीवकी यात्रा, बन्धन से मुक्ति की ओर। उस अनाद्यन्त प्रकाशपुंज के लीलोल्लास में एक कणने छिटक कर काल को आयाम दिया और वही सृष्टि हो गई। उसी सूत्रमें बँधकर जड़ और चेतनके नानाविध रूपाकारों में लुढ़कता-पुड़कता यह जीव कहाँ आ पहुँचा है?—तुमतो पढ़ती हो न अंतरिक्षकी इन यात्राओं का इतिहास! ये क्षितिज के संकेत, चुम्बकों के अयन, खिसकती मरीचिकाएँ, धूमकेतुओं के सेतु, उल्काओं के पत्तन, ब्रह्मांड रश्मियाँ, ये आकर्षण-विकर्षण, ये सब क्या हैं?—क्या ये सब उस महा तीर्थयात्रा के मार्ग में शिविर नहीं हैं?—और मंजिल? उस कृष्ण-कोटर का आकर्षण क्या अनुभव नहीं किया जा रहा है, जो इतने अनन्त गौरव का स्वामी, प्रकाश को भी अपने भीतर खींच लेने वाला, समस्त रहस्यों का पुंज कृष्ण बना बैठा है? वही खींच रहा है टरेसा मुझे। रुकूँ तो कैसे? कानों में उसकी मुरलीका स्वर जो गूँज उठा है!

'किंतु यह सब तो मेरी अपनी बात है बहन! जबतक यहाँ हूँ, यहाँकी बात भी तो करनी ही होगी। नहा-धोकर मन्दिर चली गई थी पूजा चढ़ाने के लिए। महेश को स्वास्थ्य प्रदान कर उन्होंने लाज जो रख ली थी मेरी। वहीं दर्शनके लिए आई हुई मेरी पहले की एक पड़ोसिन मिल गई। बेचारी को भरी जवानी में लकवा मार गया था, पर बच गई। कुछ लँगड़ाकर चलती है और माँ बनने की उसकी क्षमताको आँच नहीं आई। उसके बाद दो बच्चोंकी माँ बन चुकी है। सत्यप्रकाश का सारा हाल कहते कहते वह यहाँ आ गई थी। कहती थीं, सभी बातें तो अखबार में निकल चुकी हैं।

'सत्यप्रकाश ने अपना अपराध स्वीकार करके अच्छा ही किया है। अपने स्वास्थ्य के बहाने ही सही, महेशने उसे फिर बचाही लिया है फाँसीके फन्दे से तो। उस वसीयतकी बात सत्य न जानने पाए। उसे मैंने जला डाला है। महेशके अहसानों की बात कहकर अपना ऋण कम नहीं करूँगी। मेरी लज्जा तो यही है कि मैं उसे मुँह दिखाऊँ तो कैसे? अबतक जो उसकी आँखोंके सामने बनी रही वह मेरी निर्लज्जता थी। सत्यप्रकाशकी भूमिका का ज्ञान जो नहीं था मुझे। महेश के लिए मेरा एकही अनुरोध हैं कि वह मुझे भूल जाए, और मुझे भूलना तभी संभव होगा जबकि वह तुम्हें अंगीकार कर लेगा। मेरे लिए अगर उसे तनिक भी ममता है तो उसी के नाम पर मैं उससे भीख माँगती हूँ कि वह मेरी बहन

टरेसा को मेरे लिए अंगीकार करले। सचमुच बहन, तुम्हारे ऊपर बहुत भार छोड़कर जारही हूँ। इस कोमल अवस्था में महेश को तुम्हें सौंपा है। उसे तुम जानती हो, मुझसे अधिक ही। मेरा तो उससे भावना का ही संबंध रहा है। आज यदि वह न भी समझे तो रुष्ट होकर उसे छोड़ मत देना। उसकी आत्मा तुम्हारे लिए आतुर है, व्याकुल है। मेरी चकाचौंध में वह कुछ भटक गया है। मेरे हटते ही वह तुम्हें प्राप्त होगा। मेरा आशीर्वाद है बहन, प्राप्तिका तुम्हारा वह दिन दूर न हो।

'पापका दंड भोगकर एक दिन सत्यप्रकाश जेलसे छूटेगा ही। मां को स्मरण करे तो तुम हो ही। विवाह उसका हो गया है, पर इस दुर्घटना के बाद भी वह कायम रहे, इसकी आशा कैसे करूं? पर इसकी चिन्ता हम क्यों करें? अब तो उन्हें अपना ही जीवन जीना है। चिन्ता सत्य को लेकर नहीं है। कुछ है तो कला को लेकर। स्त्री को एकाएक पथ नहीं मिलता, चाहे वह किसी धर्म या जातिकी क्यों न हो। कला तो अभी नितांत बच्ची है। पता नहीं, आवश्यकता पड़ने पर उसकी माँ कितना और कैसा सहारा बन सकेगी! खैर, तुम तो होही। कहना यही चाहती थी कि अनजाने ही उस पराई बेटी के प्रति ममता हो गई है! और नारी की अलग जाति ही कहां है?

'मेरी चिन्ता मत करना। करो ही क्यों? चन्द्रलोक पहुँचकर भी मनुष्य कहीं खोया नहीं! जाकर भी जाऊँगी कहां? मां की जाति, धरती की जाति की हूं। हम सत्यप्रकाश को जन्म देती हैं, उन्हें आभास और विश्वास देती हैं, कि वे सत्य का प्रकाश बनें। चाँद ही क्यों, यह असीम आकाश उनकी सीमा है, बाहर और भीतर भी! और तब, मर्त्यलोक-वासी हम, जीवित या मृत, स्मृति में दूर कहाँ हो पाते हैं? आँखें खोलकर देखने से यदि दिखाई न दें, तो बन्द करके देखने से हमें क्या नहीं दिखाई दे जाता? और जाना तो है ही हमें! धरतीकी गोदके आकर्षण से मुक्त होकर अनन्त अन्तरिक्ष की ओर बाहर, या जड़-प्रकृतिके गर्भ में भीतर अनन्त चैतन्यकी ओर, यह यात्रा तो महाकाल तक असीम है। देख तो नित्य ही रही हो—जड़ से प्राण, प्राण से शरीर, शरीर से बुद्धि, बुद्धि से मनन, मनन से मन और फिर आत्मा का वह चिन्मय प्रकाशक्षेत्र! वहां पहुँचकर तो खो जाना ही पड़ता है बहन!

'जाने क्या क्या अनर्गल और असम्बद्ध लिखे जा रही हूं। लिखने को अवश्य अब और कभी नहीं मिलेगा। इतना भावुक-प्रबुद्ध सुनने वाला भी कहां मिलेगा?—और सच तो, इसी बहाने मेरे मनकी जड़ गाँठें भी तो अनायास खुलती गई हैं! मेरी यात्रा कितनी सहज हो रही है इस भारमुक्ति से? यह दीपक लिए मैं किसी भी अँधेरे में बेधड़क जो अग्रसर हो सकती हूँ!—और यात्री तो हम सब हैं बहन!

यह भी होता है, कि हमारे पथ भी बहुत कुछ दूरीके लिए मिल जाते हैं। मंजिलभी कभी एक हो जाए, किंतु पैरों तो अपने ही चलकर मार्ग तय करना पड़ता है। तब आज बिछोह पर खेद क्यों ?

'लिखती ही रहूं तो जीवन बीत सकता है. और मुझे संध्याकी गाड़ी पकड़ लेनी है। यदि गैर कुछ लिखगई हूं तो गैर नहीं हो तुम, कि गैर समझ लोगी। जरूरत समझो तो पत्र महेश को दिखा देना। अगर वह दुःख पाए तो मैं कभी कहीं भी सुख नहीं पासकूंगी; इतना तो उसे स्वयं समझना ही चाहिए।

'और अब बिदा दो बहन मुझे !'

मदन निर्वाक कोने में खड़ा देखता रहा आश्चर्य से अभिभूत, कि यह ख्रिस्टान मेम लड़की आज इन हिन्दुओं के भगवान को गोद में लिए तन्मय बैठी है ! और क्या है ऐसा इस खत में कि उसकी आँखों से आँसू थमते ही नहीं ? टरेसा ने पत्र तह करके अपने ब्लाउज में रखकर गोद में रखी बालकृष्ण की मूर्ति को अपने हृदय से लगाया मानों वह जीवित शिशु हो। उठकर उसे अलमारी पर रखने लगी तो मदनने पूछा,

'यह चिट्ठी क्या दीदी की है बहन ?'

'हाँ !'

'क्या लिखा है ?'

'तीर्थयात्रा गई हैं !—तू नहीं समझेगा सब बातें ! अच्छा, मैं अस्पताल चलती हूं। देर होरही है और इस तरह तू कहाँ घूमता-फिरता है ?—कोई अनजाना आदमी घरमें घुस जाए तो ?'

उलहना निरर्थक और बेतुका था, वह खुद भी समझ गई। पर उसका मन ठिकाने कहां है ? और बिना अधिक समय लगाए वह अस्पताल के लिए रवाना होगई। मदन मुँह बाए देखता ही रहा।

●

धरती की गंध

●

अस्पताल की दिशा में चली तो टरेसा के पैर नहीं उठ पा रहे थे। मन और भी भारी चट्टान हो कर बैठा जा रहा था।—यात्रा-यात्रा, जीवन मानो किसी को कहीं दिखाई ही नहीं देता। खाली पैरों का ही बना तो यह शरीर नहीं है। सेंटीपॉड्स, सौ पैर वाले जानवर भी ढोते शरीर ही हैं, और सरीसृपों को तो पैर होते भी नहीं।'—अजगर न जाने कब तक चिपटा रहता है अपने आवास के ही साथ! क्या गजब हो गया कि कवि कह गए हैं चरैवेति—चलते रहो, चाहे अकेले ही चलते रहना पड़े। न हो यह जीवन मंजिल, तो क्या हुआ! शिविर तो है! कितना सुंदर, कितना मोहक? जहाँ मार्ग की श्रांति-क्लांति मलय समीर का पुलक स्पर्श पाकर सो जाती है सुनहरे सपनों से भरी गहरी-मीठी नींद में! रास्ते के धूलिकण, परवलीय-अतिपरवलीय हिचकोले, कण-कण-विकीरण, इन सबकी अपेक्षा जीवको धरती के गंधभीने गुरु आकर्षण में ही क्यों न सना रहने दिया जाए? परमात्मा को लेकर कोई क्या करेगा, जबकि आत्मा को ही नहीं सम्हाला जा सकता? मुक्ति, मुक्ति, पर किससे?—प्रेम-स्नेह-वात्सल्य, क्या नहीं है इनमें जिसके लिए परमात्मा को ढूँढ़ा जाए? महेश्वर का स्वप्न देखना छोड़ दूँ?—यह धरती, यह धूप, चन्द्रिका स्नात यह आतप!—आओ तमसा, अगर इस महाकाश की अति-वायवी शून्यता में ही अपने भटकाव की सार्थकता पाना चाहती हो! मुझे उसका लोभ नहीं है! धरती की इस ठोस पीठको ही मेरे पैर पहचानते हैं। शरीर की यह उग्र गंध ही मुझे तृप्ति दे सकती है। तुम्हारा आशीर्वाद ही सही! देखती हूँ तुम्हारे महेश का स्वप्न कितना गहरा है! जगाना तो होगा ही उसे इस स्वप्न से, जब कि इस धरती की गंध में लिप्त उसे छोड़कर तुम अनन्त असीम की यात्रा पर निकल पड़ी हो। यही आशीर्वाद दो बहन, कि वह जाग उठे जल्दी ही, तुम्हारा मोह-पाश भंग कर के!

अस्पताल पहुँची तो नर्स ने संवाद दिया कि पुलिस अधिकारी के साथ डॉक्टर आया था! देखकर डॉक्टर ने कह दिया है कि बीमार की अवस्था अब

अच्छी है और उनका बयान लिया जा सकता है। जाँच के कारण थक कर वे सो गए हैं। वयान कल तीसरे पहर लिया जाएगा ! सो रहे हैं तो जगाना उचित नहीं है। तमसा के समाचार—क्यों उत्तेजित किया जाए? कल भी तो सुनाए जा सकते हैं !

कल बयान होगा, क्या कहेंगे वे बयान में ?—दुर्घटना के बारे में उनका स्वयं का ज्ञान क्या है ? आँखों के सामने जो घटता है और जब कि अपने ही ऊपर घटता है, तो उन सघन क्षणों में वस्तुस्थिति को सही परिप्रेक्ष्य में समझने का सुयोग रहता है क्या ? सत्यप्रकाश की भूमिका के बारे में उनका क्या मत है ?—परदे के पीछे जो कुछ घटा हो वह भी उन्हें कैसे मालूम होगा ?—सत्यप्रकाश से सुनी सब बातें बता दे उन्हें ? कहीं यह तो न समझ बैठेंगे कि उन्हें प्रभावित करने के लिए ही ये सूचनाएँ गढ़ी जा रही हों ?—बयान दें इसके पहले क्यों न तमसा का पत्र दिखा दिया जाए ? सत्य का भविष्य, उसका सारा जीवन उनके बयान पर ही निर्भर करता है ! तथ्य तमसा भी कहां जानती थी ?—कोई नारी, उनको इस अवस्था में छोड़कर चली जाए, कहीं इसका विपरीत प्रभाव तो नहीं पड़ जाएगा उनके स्वास्थ्य पर ? पत्र से स्पष्ट है कि सत्य ने ही उन्हें जान से मार देने का षड्यंत्र किया था ! यदि उनके मन में ऐसी ही कोई पूर्व धारणा हो तो क्या इस पत्र से उसे बल नहीं मिलेगा ? टरेसा स्थिर नही कर पाई कि क्या करे !—उद्वेग, आशंका, चिन्ता और परिश्रांति, सबने मिलकर उसकी चेतना को मानों कील दिया !

रात तो किसी तरह बीत गई। महेश्वर गहरी नींद में सोया रहा। उसके शरीर की आधी से अधिक पट्टियाँ खोल दी गई थीं। जकड़े हुए शरीरको इससे आराम ही मिला था। रातको एकाध बार नींद खुली भी, तो उसने किसीको जगाना उचित नहीं समझा, करवट बदलकर फिर लेट गया। टरेसा ने भी अपनी ओर से कोई प्रयत्न नहीं किया, यद्यपि महेश्वरका करवट बदलना उससे छिपा न था। गहरी दूर, सामान्य नींद भी उसे सबेरे ही कुछ आ पाई।

चाय पी चुका तो महेश्वर ने ही पूछा: 'तमसा क्या हुई डार्लिंग ? परसों से ही दिखाई नहीं देर ही है। तुमने कहा था कि जरा विश्राम करने गई है। तबीयत तो ठीक है न ?'

'हाँ, तबीयत तो ठीक ही है।' धड़कते दिल से उसने कहा, और आगे के प्रश्न से बचने के लिए कप उठाकर चलने लगी तो महेश्वर ने ही रोक कर कहा,

'कब आ रही है वह ?—मुझे उससे कुछ जरूरी बातें करनी हैं।—नहीं,

रोक नहीं सकती तुम, डॉक्टर ने भी इजाजत देदी है। आज तो पुलिस अधिकारी मेरा बयान भी लेने वाले हैं।'

परीक्षा की घड़ी आ पहुँची, टरेसा का मुँह उतर आया। बहलाने की नीयत से उसने कहा, 'तबीयत अगर कुछ वैसी हो तो डॉक्टर से कहलाए देती हूँ, बयान फिर कभी ले लिया जाएगा।'

'नहीं। अब तो पीठ की सिर्फ यही पट्टी रह गई है। आजकल में टाँके खोलकर इसे भी हटा दिया जाएगा। बयान आगे पीछे देना ही है, टालने से क्या लाभ?'

'तमसा से क्या जरूरी बातें करनी हैं डीयर?—मुझे नहीं कही जा सकतीं?'

महेश्वर ने मुस्कराकर कहा, 'तुमसे क्यों?—जिसकी बात उसी से कहना चाहिए न! नहीं, ईर्ष्या की बात नहीं है। बात है केवल कृतज्ञता-ज्ञापन की। कृतज्ञ दोनों का हूँ। एक की कृतज्ञता दूसरे को कैसे दी जा सकती है?'

'मेरे प्रति कृतज्ञता का प्रश्न उठता है क्या?'

'सो तो तमसा के प्रति भी शायद नहीं उठता।' और उसने टरेसा का हाथ पकड़कर अपने गाल से छुआते हुए कहा, 'कितनी निकट आ गई हो इस दुर्घटना से तुम मेरे? प्राप्ति का मार्ग ध्वंस के भीतर से ही निकलता है न! इस अर्थ में तो मेरे लिए यह दुर्घटना वरदान ही सिद्ध हुई है। नहीं तो मेरा स्वार्थ, तुम्हारा स्वार्थ कैसे हो जाता?'

'पर सेवा तो तमसा बहन की ही फलवती हुई है।'

'इसीलिए तो! और तब, जब कि उसका कोई स्वार्थ ही नहीं था। वह मेरी नहीं है, शायद किसी की नहीं है। तब भी कितना पाया है मैंने उससे? और जो कुछ कहना है उससे, वह केवल इस कृतज्ञता की बात ही नहीं, और भी अधिक महत्वपूर्ण बात है मेरे लिए।'

टरेसा ने कोई उत्तर नहीं दिया तो मुँह फेरकर महेश्वर ने उसकी ओर देखा। टरेसा के चेहरे पर उद्विग्नता छाती जा रही थी। महेश्वर ने पूछा, 'क्या बात है टरेसा?'

'कहाँ?' किंतु अपने आपको रोक न पाने के कारण उसके गाल पर आँसू की बूंद लुढ़क पड़ी।

'अरे, तुम रो रही हो?—क्या बात है? मुझसे कुछ अपराध हुआ है तुम्हारे या तमसा के प्रति?'

'अपराध ! —कहते क्या हो ?'

'तो सब बात साफ-साफ क्यों नहीं बताती ?—अच्छा, सत्यप्रकाश कहाँ है ? बता सकती हो ?'

'तुम्हें नहीं मालूम ?'

'कहाँ से मालूम होगा ? दिखाई तो एकबार भी नहीं दिया यहाँ। अगर नाराजगी अब भी है मेरे प्रति, तो मुझ पर उसने वह उपकार ही क्यों किया ?'

टरेसा के दिल की धड़कन सौ गुना बढ़ गई। उपकार ?—क्या बच गए इसके लिए व्यंग कस रहे हैं ? उत्तर नहीं मिला तो महेश्वर ने ही कहा, 'बुलवा दो न उसे किसी दिन टरेसा। अगर कोई गलतफहमी अब भी पाल रहा हो वह, तो उसे साफ कर देना होगा।'

'उसे तो उसी दिन गिरफ्तार कर लिया गया था।' साहस करके टरेसा ने कहा।

'गिरफ्तार ?—कहती क्या हो टरेसा, उसे गिरफ्तार क्यों किया गया ?'

टरेसा और अपने आप को रोक नहीं सकी। उसने तमसा का पत्र निकाल कर महेश्वर को थमा दिया, और कहा, 'इसे पढ़ लो।'

पत्र हाथ में लेकर महेश्वर ने पूछा, 'किसका है ?'

'तमसा बहन का !'

'तमसा का ?—उसने पत्र लिखा है ? क्यों ?—नाराज है न मुझसे ? होना ही चाहिए। सत्यप्रकाश अगर गिरफ्तार हुआ है तो मेरी वजह से ही न। इस बीमारी ने प्रतिविधान करने से रोक दिया हो तो भी क्या हुआ ? नहीं, आज ही इसका उपाय करना होगा टरेसा, तुम डॉक्टर से कहलवा दो, मैं अभी अपना बयान देना चाहता हूँ।'

पत्र तो पढ़ लो।'

'पत्र पर सिरनामा देखकर महेश्वर ने कहा, 'पर यह तो तुम्हारे नाम है टरेसा।'

'मेरा और तुम्हारा स्वार्थ अलग है क्या ?'

किन्तु तब तक महेश्वर ने पत्र पढ़ना आरम्भ कर दिया था, और शीघ्र ही एक ही साँस में वह पूरा पत्र पढ़ भी गया। एकाएक ही पलंग पर उठ बैठते हुए उसने कहा, 'क्या तमसा चली गई ?'

'अरे ! उठ क्यों बैठे ?—अभी तो पीठ की पट्टी भी खुलना बाकी है।'

महेश्वर ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। खुले पत्र के पन्ने उसके हाथ में ही थे, और वह बोला,

'सब झूठ है ! यह किसी परम लक्ष्य की खोज का प्रयास नहीं है, केवल एक भ्रम, मिथ्या-भ्रम की ग्लानि है । वह मुझे इस तरह दंड नहीं दे सकती, और उसकी प्रतारणा में मैं पलंग पर इस तरह निष्क्रिय नहीं पड़ा रह सकता । कब गई है वह ?—कहाँ गई है, कुछ जानती हो ? जरूर जानती होगी । क्या तुम भी इस षड्यंत्र में शामिल हो ? मैं सावित्री से कबूल करवा लूंगा । यह नहीं होने का ।'

कहीं उठ खड़ा न हो, इस भय से टरेसा ने महेश्वर को थामे रक्खा और कहा, 'धीरज रखो डीयर । तुम्हें विश्वास करना होगा, मैं इस बारे में बिलकुल नहीं जानती । हम उन्हें मिलकर खोज लेंगे । इस समय तुम्हारे लिए किसी भी प्रकार की उत्तेजना खतरनाक हो सकती है । उन्होंने जो कुछ तुम्हारे लिए किया है, उस पर पानी फेरना तो तुम भी नहीं चाहते होंगे । वी विल थिंक ओव्हर इट एंड फाइंड हर आउट । लेटस फर्स्ट थिंक ऑफ सत्यप्रकाश ।—हू नोज...'

'तमसा को किसने कहा कि सत्यप्रकाश दोषी है ?—क्या वह गिरफ्तार हो गया इससे लोगों ने समझ लिया कि वह दोषी है ?—उसने ही सत्य बात क्यों नहीं कही ? उसकी ही वजह से तो मैं बच पाया हूँ । अगर ठीक समय उसने उस राक्षस जैसे गुंडे को पैर में चाकू मारकर घायल न कर दिया होता तो उसका छुरा मेरे कलेजे के पार हो गया होता । गिरते-गिरते भी उसने सत्यप्रकाश के ऊपर वार किया था । पता नहीं उस वार का क्या हुआ ?–इसीलिए तो मैं अपने आपको अपराधी महसूस कर रहा हूँ, कि मेरी वजह से कहीं उसे करारी चोट न लगी हो । अपराध क्या स्वीकार किया है उसने ?'

'उन गुंडों के बयान की ताईद, कि तुम पर हमला उसकी ही प्रेरणा से किया गया था ।'

'झूठ, बिलकुल झूठ ।—सत्यप्रकाश को इससे लाभ ही क्या था ?'

'मान लो उसे तुम्हारी वसीयत का पता लग गया हो ? तुम्हें मारकर जल्दी ही वह नहीं मालिक हो जाता उस दौलत का अपनी माँ के द्वारा ? तमसा के पत्र में नहीं पढ़ी वसीयत की बात ?'

'पर वह उसके पास पहुँची कैसे ? उसे जला देने से ही क्या होगा ?—रजिस्ट्री हो चुकी है उसकी । और अब तो भला चंगा मैं जो मौजूद हूँ ।'

'यह बाद की बात है । तुम्हें जान से मार कर इस संभावना को मिटा देना ही उनका लक्ष्य रहा हो ।'

'यह सब मिथ्या कल्पना है टरेसा ! तुमने समझाया क्यों नहीं उसको ?'

महेश्वर ने इतने ऊँचे स्वर में कहा कि बाहर बैठी हुई निश्चिन्त नर्स भी चौंक पड़ी । भीतर दौड़ी आई तो जो कुछ उसने देखा उससे उसे कम हैरानी नहीं

हुई। महेश्वर की पीठ में जो सिलाई हुई है उसके टाँके अभी कच्चे हैं। बैठना उसके लिए अभी विहित नहीं है। बैठ क्यों गया वह? उसने कहा, 'व्हॉट इज़ दिस? आप बैठ क्यों गए? जानते नहीं अभी पीठ में स्टिचेस लगे हैं?'

सचमुच बहुत अधिक उत्तेजना से महेश्वर क्लांत हो गया था। उसने नर्स की ओर दृष्टि फिराई तो महसूस हुआ कि उसकी पीठ में भयानक जलन पैदा हो गई है। दर्द से दुहरा होकर वह पलंग पर पड़ रहा। नर्स ने देर न की। टटोल कर देखा तो दो टाँके टूट चुके थे। कच्चे घाव से रक्त की बूँदें पट्टी पर छलक आई थीं। रक्त देखकर टरेसा के हाथ के तोते उड़ गए। व्याकुल दृष्टि से उसने पूछा, 'अब क्या होगा सिस्टर?'

'मैं डॉक्टर को बुलाती हूँ। लेकिन घबराने की बात नहीं है। एकाएक ये एक्साइटेड क्यों हो गए?'

'आज इनका बयान लिया जानेवाला है न, उसी सिलसिले में कुछ बातें बताते हुए आवेश हो आया।'

'क्या बात थी ऐसी?'

'सत्यप्रकाश नाम का जो लड़का गिरफ्तार हुआ है, वह वास्तव में इन्हें बचाने गया था। और उधर उस लड़के ने अपना अपराध स्वीकार किया है, यह जान कर इन्हें नैचरली कुछ शॉक लगा है!'

'अच्छा!—लेकिन उस लड़के ने तब कनफेस क्यों किया?' देखकर नर्स फिर पट्टी लपेट रही थी।

'वह लम्बा किस्सा है सिस्टर! अभी तो, बेटर यू कॉल द डॉक्टर।'

'आइ विल! लेकिन कोई खास बात नहीं है। दो ही टाँके टूटे हैं और घाव काफी हील-अप हो गया है। पट्टी बदल देने से ही काम चल जाएगा। मेंटल शॉक जरूर है। हो सके तो आज बयान टाल देना चाहिए। वेट, लेट मी गिव्ह हिम ए स्टिमुलंट।' और नर्स ने एक बोतल से ब्रांडी का हलका डोज़ बनाकर महेश्वर के गले में उतार दिया।

टरेसा पास ही पलंग पर बैठ गई और महेश्वर का हाथ उसने अपने हाथ में ले लिया। उसे अनुभव हुआ, मानो बालकृष्ण की उसी मनोज्ञ मूर्ति का हाथ अपने हाथ में थामे हुए है वह। आँखें बन्द करके न जाने कबतक उसी ध्यान में खोई रही। आँखें खोलीं तो देखा कि नर्स डॉक्टर को बुलाने चली गई है। वह देखती रही महेश्वर के थके हुए चेहरे को। और अनायास उस पर झुक आई। महेश्वर की साँसोंका तप्त वाष्प उसके कपोलों से जा टकराया। टरेसा अपने आपको और संयत नहीं कर सकी। और झुककर उसने अपने कपोल महेश्वर के कपोल से सटा लिए। महेश्वर की पलकें भी हिलीं। बाहर गहरा नीला आकाश भी धरती की श्याम पलकों पर झुक आया था।

कल्याणी रेग्मी स्मा...
पुस्तकालय
956X

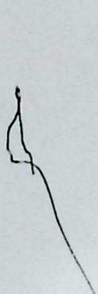

८९१.४३२
मो२मा

मासूम चाँदनी:
क्षितिज के स्वर